South Asian Retrospective Material India

Filmed by
The Library of Congress Office
New Delhi, India

1991

Available from
Photoduplication Service
Library of Congress
Washington, D.C. 20540

Micro-fiche 91/61160

Sālinātha.
[Rasamañjarī. Hindi & Sanskrit]
Rasamañjarī [microform] / Śrīvaidyanāthatanayaśālināthanirmita ; Miśrakulāgragtaṇyapaṇḍitanārāyaṇaprasāda-mukundarāma Bāṁsabarelī tathā Lakhīmapuranivāsikṛtabhāṣāṭīkāsahita. -- Mumbaī : Gujarātī Priṇṭiṅga Presa, 1907.
2, 6, 197 p. ; 22 cm.
Hindi and Sanskrit.
Verse work, with Hindi translation, on the therapeutic uses of metals, etc., according to

CONTINUED ON NEXT CARD

Sālinātha. -- Rasamañjarī [microform] ... 1991.
(Card 2)

the ayurvedic system in Indic medicine.
Microfiche. New Delhi : Library of Congress Office ; Washington, D.C. : Library of Congress Photoduplication Service, 1991. 3 microfiches ; 11 x 15 cm.

ap 1/15/91 00 uk HIN

श्रीः ।

श्रीवैद्यनाथतनयशालिनाथनिर्मित

रसमंजरी ।

मिश्रकुलाग्रगण्यपण्डितनारायणप्रसादमुकुन्दराम बाँसबरेली तथा लखीमपुरनिवासिकृतभाषाटीकासहित

जिसमें

नानाप्रकारके रसोंके बनानेकी विधि (रसायनविद्या) अच्छी प्रकार कही है.

उसका

हरिप्रसाद भगीरथजीने

मुम्बईमें

" गुजराती " प्रिंटिंग प्रेसमें छपवाकर, प्रसिद्ध किया.

विक्रमसं० १९६४, सन १९०७.

निवेदन.

प्रियवर महाशयो ! भगवद्वतार श्रीधन्वन्तरिजी महाराजने आयुर्वेदका उद्धार किया अर्थात् अनेक ग्रन्थ वैद्यकविद्याके निर्माण किये, कि जिन ग्रन्थोंके उपदेशसे मनुष्य आरोग्य रहकर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, इन चारों पदार्थोंका भागी होता है. उन ग्रन्थोंका सार लेकर प्राचीन वैद्योंने भी अनेकानेक ग्रन्थ रचना किये हैं परन्तु संस्कृतमें होनेके कारण असंस्कृतज्ञ पुरुषोंका पूर्णतः उपकार न जानकर आधुनिक वैद्योंने भाषामें समस्त ग्रन्थोंका प्रकाश करना उत्तम समझा. उनमेंसे अनेक छोटे बड़े ग्रन्थोंका भाषांतर होगया, और होता जाता है. परंतु रसायन ग्रन्थोंका भाषांतर अभीतक नहीं हुआ. उनमें बृहद्ग्रन्थ रसरत्नाकर, रसेन्द्रचिंतामणि, रसरत्नसमुच्चय, रसेंद्रसारसंग्रह, रसार्णव, रसकल्पद्रुम आदि हैं; और रसलहरी, रसमंजूषा, रसतरंगिणी, रसमंजरी, आदि छोटे ग्रन्थ हैं. अब इनमेंसे प्रथम छोटे २ ग्रन्थोंका भाषांतर करना आवश्यक जानकर परमोपकारिणी, रससारप्रकाशिनी, श्रीरसमंजरीनामक ग्रंथका श्लोकांकसमेत भाषांतर किया है, जिसको भिषग्वर्य्य श्रीशालिनाथजीने समस्त रसायनग्रन्थोंका सारांश लेकर बनाया है. जिससे यह छोटासा ही ग्रन्थ समस्त जनोंका उपकारी होगया. ग्रन्थकर्ताने इस रसमंजरीमें १२ अध्याय कहे हैं, तहां–

१ अध्यायमें पारेका शोधनमारणप्रकार है.

२ अध्यायमें रसोंका शोधनमारणप्रकार है.

३ अध्यायमें उपरस तथा हीरा, मोती, मणि आदिकोंका शोधन मारण प्रकार है.

४ अध्यायमें विषका शोधनमारण प्रकार है.

५ अध्यायमें आठौ धातुओंका शोधनमारणप्रकार है.

६ अध्यायमें अनेकानेक रसोंके बनानेकी क्रिया वर्णित है.

७ अध्यायमें रसायनाधिकार और वाजीकरणसंबंधी रस हैं.

८ अध्यायमें अनेक नयनामृतांजन आदि अंजन हैं.

९ अध्यायमें वीर्यस्तंभन तथा स्त्रीवशीकरणादि अनेक प्रकार वर्णित हैं.

१० अध्यायमें बालतंत्र (बालचिकित्सा) वर्णित है.

११ अध्यायमें कालज्ञान वर्णित है.

१२ अध्यायमें छायापुरुषलक्षण वर्णन किया है.

एवं यह १२ अध्यायोंसे विभूषित पुस्तक आप सज्जनोंको निवेदन करता हूँ और इस पुस्तकके छापनेका सब हक पंडित **हरिप्रसाद भगीरथजी** जो कि आज बंबईमें प्राचीन पुस्तकोंके प्रकाश करनेमें कटिबद्ध हैं, उनको दिया है. लीजिये ! इस पुस्तकको पढ़कर और विचार कर रसोंके बनानेमें प्रवृत्त हूजिये, कि जिन रसोंके द्वारा समस्त जनोंका उपकार होवै, तथा हमारा परिश्रम सफल कीजिये.

आप समस्त सज्जनोंका हितैषी,

पण्डित नारायणप्रसाद मुकुन्दरामजी.

अथ

रसमंजरीकी अनुक्रमणिका.

अनुक्रमणिका.

ॐपरब्रह्मणे नमः ।

अथ रसमंजरी ।

भाषाटीकासहिता ।

भाषाकारकृतमंगलाचरण ।

धन्वंतरिं नमस्कृत्य नमस्कृत्यौषधीपतिम् ।
नारायणेन क्रियते भाषायां रसमंजरी ॥ १ ॥

भाषार्थ–श्रीमद्वैद्यराज धन्वंतरि भगवानको प्रणाम करके तथा ओषधीपति (चन्द्रमा) को नमस्कार करके, पं. नारायणप्रसाद-नाम जो मैं तिसकरके रसमंजरी वैद्यक भाषामें कीजातीहै ॥ १

ग्रन्थकारकृत गणेशस्तुति ।

यद्गण्डमण्डलगलन्मधुवारिबिन्दुपानाऽलसातिनि-
भृता ललितालिमाला । सद्गुञ्जितेन विनिहन्ति नवे-
न्द्रनीलशंकां स वो गणपतिः शिवमातनोतु ॥ १ ॥

अन्वयः ॥ स गणपतिः (गणेशः) वः (युष्माकम्) शिवम् (कल्याणम्) आतनोतु । कथंभूतः सः, यद्गण्डमण्डलगलन्मधुवारिबिन्दुपानालसा (यस्य मंड एव मंडलं यद्गंडमंडलं यद्गंडमंडलेगलंतश्च ते मधुवारिबिन्दवश्च 'यद्गण्डमण्डलगलन्मधुवारिबिन्दवः तेषांपानेनाऽलसा यद्गण्डमण्डलगलन्मधुवारिबिंदुपानालसा) अतिनिभृता (अत्यन्तविनीता) ललिता (सुन्दरा) (अलिमाला) (भृंगपंक्तिः) सद्गुंजितेन (उत्कृष्टगुंजारवेण) नवेन्द्रनीलशंकां (नूतनेन्द्रनीलमणिसन्देहं) विनिहंति ॥ १ ॥

भाषार्थ–सो श्रीगणेशजी तुम सबका कल्याण करें कैसे श्रीगणेशजी हैं कि जिनके गण्डमण्डल कहिये कपोलस्थलमें बहतेहुए मधुके जलकी बुंदोंको धीरे २ पान करतेहुये अत्यन्त शान्त, सुन्दर भ्रमरोंकी पाँति अपने अच्छे गुंजार शब्दकरके नवीन इन्द्र नीलमणिकी शंकाको नाश करती है. भावार्थ–यह कि जिन श्रीगणेशजीके कपोलोंमें बहतेहुए मधुवारीबिन्दुओंको तृप्तिपर्यन्त पान करतेहुए भ्रमरगण, इन्द्रनीलमणिकी शोभाको प्राप्त हुए परन्तु अच्छे गुंजार शब्दसे इन्द्रनीलमणिकी शंकाको दूर करते हुए. इसप्रकार भ्रमरगणोंकी शोभासे युक्त श्रीगणेशजी तुम सबका कल्याण करें ॥१॥

श्रीशारदास्तुति ।

इन्दीवरीभवति यच्चरणारविन्दद्वन्द्वे
पुरन्दरपुरस्सरदेवतानाम् ।
वन्दारुतां कलयतां सुकिरीटकोटिः
श्रीशारदा भवतु सा भवपारदा वः ॥ २ ॥

अन्वयः–यस्याश्चरणारविन्दद्वन्द्वे वन्दारुतां कलयतां, पुरन्दरपुरस्सरदेवतानां (इन्द्रप्रभृतिवृन्दारकाणां) सुकिरीटकोटिः इन्दीवरी (कमलपुष्पोपहारी) भवति सा शारदा वः (युष्माकं) भवपारदा (संसारोत्तारिणी) भवतु ॥ २ ॥

भाषार्थ–जिस भगवतीके दोनों चरणकमलोंमें शिर नवातेहुए इन्द्रादि संपूर्ण देवताओंके सुन्दर जो किरीट तिनकी जो पाँति सो इन्दीवर (कमल) के समान जो शोभा है उसको प्राप्त होरही है. ऐसी जो श्रीशारदा (भवानी) सो तुमको संसारसागरसे पार करनेवाली हो ॥ २ ॥

---

१ यच्चारुतां, इति पाठांतरम ॥

ग्रन्थप्रारम्भवर्णन ।

श्रीवैद्यनाथतनयः सुनयः सुशीलः
श्रीशालिनाथ इति विश्रुतनामधेयः ।
तेनावलोक्य विधिवद्विविधान्प्रबंधा
नारभ्यते सुकृतिना रसमंजरीयम् ॥ ३ ॥

अन्वयः–श्रीवैद्यनाथतनयः सुनयः (नम्रगुणयुक्तः) सुशीलः (सुष्टुशीलसमेतः) श्रीशालिनाथइतिविश्रुतनामधेयः (आसीत्) तेन सुकृतिना शालिनाथेन विधिवद्विविधान्प्रबन्धानवलोक्य इयं रसमंजरी आरभ्यते ॥ ३ ॥

भाषार्थ–श्रीवैद्यनाथनामक वैद्यके पुत्र विनयगुणयुक्त और शीलस्वभावसे अलंकृत श्रीशालिनाथजी इस नामकरके प्रसिद्ध हुए; उन सुकृती श्रीशालिनाथ करके अनेकप्रकारकी रसक्रियाओंको विधिपूर्वक देखकर, यह रसमंजरी प्रारंभ की जाती है॥३॥

सन्मधुव्रतवृन्दानां सततं चित्तहारिणी ।
अनेकरसपूर्णेयं क्रियते रसमंजरी ॥ ४ ॥

भाषार्थ–अच्छे भ्रमरगणोंके निरन्तर चित्त हरनेवाली और अनेकरसोंसे भरीहुई यह रसमंजरी निर्माण कीजाती है ॥ ४ ॥

पारदप्रशंसा ।

हरति सकलरोगान्मूर्छितो यो नराणां
वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन ।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितं शंभुबीजं स
यजनि भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ–मूर्छित (मरा हुआ) पारा, मनुष्योंके सम्पूर्ण रोगोंको हरता है, और बद्ध कहिये बँधाहुआ पारा (गोलीदार) निश्चयकरके वेगसे आकाशमें गमनशक्ति देता है, तथा सम्पूर्ण देवता और मुनीश्वरोंसे वन्दित ऐसा जो शम्भुवीर्य (पारा) सो जयको करै और संसारसागरसे पारको देता है ॥ ५ ॥

तेजो मृगांकमौलेः सोढुं यन्नैव तेजसा पुंजैः ।
अजरामरतां वितरति कल्पतरुं तं रसेश्वरं वन्दे ॥६॥

भाषार्थ–मृगांक (चन्द्रमा) है मस्तकमें जिनके ऐसे जो श्रीमहादेवजी, उनका वीर्य (पारा) तेजोंके पुंजोंसे सहन करनेको समर्थ नहीं है, और वह शिववीर्य अजरता तथा अमरताको करता है, उस कल्पवृक्ष सब रसोंका ईश्वर (पारदेश्वर) को नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

यो न वेत्ति कृपाराशिं रसं हरिहरात्मकम् ।
वृथा चिकित्सां कुरुते स वैद्यो दास्यतां व्रजेत् ॥७॥

भाषार्थ–जो वैद्य कृपाकी राशि साक्षात् हरिहरकी मूर्तिरूप ऐसे रस (पारा) को नहीं जानता है, सो वृथा चिकित्सा (इलाज) करता है, अर्थात् उसकी की हुई चिकित्सा वृथा होती है और वह वैद्य (हकीम) हँसीको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

शुष्केन्धनमहाराशिं यद्वद्दहति पावकः ।
तद्वद्दहति सूतोऽयं रोगान्दोषत्रयोद्भवान् ॥ ८ ॥

भाषार्थ–जैसे सूखे ईंधनकी बड़ी राशि (ढेर) को अग्नि जलाकर, भस्म करती है तैसे ही दोषत्रय (वात पित्त कफ) इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न रोगोंको यह पारा नाश करता है ॥ ८ ॥

गुरुसेवाविना रसोंकी क्रियाका निष्फलत्ववर्णन ।

गुरुसेवां विना कर्म यः कुर्यान्मूढचेतनः ।
स याति निष्फलत्वं हि स्वप्नलब्धं यथा धनम् ॥९॥

भाषार्थ–जो मूढचित्तवाला वैद्य गुरुसेवाके विना रसादि बनानेकी क्रियाको करता है वह निश्चय निष्फलताको प्राप्त होता है जैसे स्वप्नमें प्राप्त हुआ धन निष्फल होता है ॥ ९ ॥

विद्या ग्रहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मबलादिना ।
न तेषां सिध्यते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥ १० ॥

भाषार्थ–जो कोई चोरी, छल और बलसे विद्याग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं उनके रत्न और मंत्र तथा औषधादिक कुछभी सिद्ध नहीं होते ॥ १० ॥

गुरुलक्षण ।

मंत्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ।
देवीभक्तः सदा धीरो देवतायागतत्परः ॥ ११ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः कुशलो रसकर्मणि ।
एतल्लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ १२ ॥

भाषार्थ–अब रसकर्ममें योग्य गुरुके लक्षण कहते हैं कि जिसको मंत्र सिद्ध हो, महाबलवान् हो, जितेन्द्रिय हो और शिवजीका और देवीजीका भक्त हो, सदा धैर्यवाला हो, देवताओंके यज्ञमें तत्पर, ॥ ११ ॥ सम्पूर्णशास्त्रोंका अर्थतत्त्व जाननेवाला, रसोंके बनानेमें निपुण, इन लक्षणोंसे युक्त रसविद्याका गुरु होता है ॥ १२ ॥

शिष्यलक्षण ।

शिष्यो निजगुरोर्भक्तः सत्यवक्ता दृढव्रतः ।
निरालस्यः स्वधर्मज्ञो देव्याराधनतत्परः ॥ १३ ॥

भाषार्थ-अब शिष्यके लक्षण कहते हैं कि जो शिष्य अपने गुरुका भक्त हो, सत्यवादी हो, दृढप्रतिज्ञावाला हो, आलस्य रहित हो, अपने धर्मका जाननेवाला हो, और देवीके आराधनमें तत्पर इन लक्षणोंसे युक्त रसकर्ममें शिष्य हो ॥ १३ ॥

पारदनाम ।

शिवबीजं सूतराजः पारदश्च रसेन्द्रकः ।
एतानि रसनामानि तथाऽन्यानि शिवे यथा १४

भाषार्थ-अब पारेके नाम कहते हैं कि शिवबीज, सूतराज, पारद, और रसेन्द्र, ये पारेके नाम हैं तथा अन्य भी नाम हैं. जैसे शिवजीके अनेक नाम हैं तैसेही पाराके नाम बीजसहित जानना, शंभुबीज, हरबीज, महेश्वरबीज, आदि ॥ १४ ॥

पारदलक्षण ।

अन्तः सुनीलो बहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्न-
सूर्येऽप्रतिमप्रकाशः । शस्तोऽथ धूम्रः परि-
पांडुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ ॥१५ ॥

भाषार्थ-अब पाराके लक्षण कहते हैं कि जो पारा भीतर सुन्दर नीलवर्ण हो और बाहर उज्ज्वल (चमकीला) मध्याह्नके सूर्यसमान प्रकाशवाला हो तो वह पारा श्रेष्ठ है, तथा जो पारा धूम्रवर्ण (धुमैला) और पांडुरवर्ण (पीतवर्ण) और चित्रविचित्र-वर्ण हो तो वह पारा रसकर्मके योग्य नहीं उसको रस सिद्ध कर-नेमें नहीं लेना ॥ १५ ॥

दोषमुक्तो यदा सूतस्तदा मृत्युरुजापहः ।
साक्षादमृतमेवैष दोषयुक्तो रसो विषम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ-जो पारा दोषोंसे रहित है वह मृत्यु और रोगोंका नाश करनेवाला साक्षात् अमृतहीके तुल्य गुण देनेवाला होता है और दोषयुक्त पारा विषके समान है ॥ १६ ॥

पारदमें दोषवर्णन ।

नागो वंगोऽग्निचांचल्यमसह्यत्वं विषं गिरिः ।
मलान्येते च विज्ञेया दोषा पारदसंस्थिताः॥१७॥

भाषार्थ-नाग (शीशा), वंग (राँगा), अग्नि, चांचल्य, असह्यत्व, विष, गिरि (पाषाण), मल, इतने दोष पारामें स्थित हैं सो जानना ॥ १७ ॥

जाड्यं कुष्ठं महादाहं वीर्यनाशं च मूर्छनाम् ।
मृत्युं स्फोटं रोगपुंजं कुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम् १८

भाषार्थ-शीशेके दोषसे जड़ता, राँगके दोषसे कुष्ठ, अग्निदोषसे दाहकी अधिकता, चपलता, दोषसे वीर्यनाश, और असह्यत्व दो-षसे मूर्छा, विषदोषसे मृत्यु, गिरिदोषसे फोड़ा, मलदोषसे रोगोंका समूह होजाता है. ये दोष क्रमसे मनुष्योंके इन, जडता आदि-कोंको करते हैं ॥ १८ ॥

अन्यच्च ।

भुक्तः कुष्ठकरः शिलोच्चयभवो जाड्यैककु-
न्मृद्भवो वातात्यंतकरस्तथातिमलिनो तौ
नागवंगौ ध्रुवम् । दोषौ द्वौ गलगण्डगुल्म-
जनकौ तस्मादशुद्धं रसं नो देयं गदितानि
पूर्वमृषिभिः कर्माणि चाष्टादश ॥ १९ ॥

भाषार्थ-पाषाणदोषयुक्त पारा भक्षणसे कुष्ठ करता है, मृद्भवदोषवाला पारा जडताको करता है, तथा अतिमलिन पारा अत्यंत वातविकारको करताहै, और निश्चय करके नाग, वंग, इन दोनों दोषोंसे युक्त पारा गंडमाला और गुल्मरोगको उत्पन्न करता है. इसकारण अशुद्ध पारा नहीं देना योग्य है और इन दोषोंकी शांतिके अर्थ पूर्व ऋषियोंने अठारह संस्कार वर्णन किये हैं. जो आगे लिखते हैं ॥ १९ ॥

पारदशोधनविधि ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पारदस्य च शोधनम् ।
रसो ग्राह्यः सुनक्षत्रे पलानां शतमात्रकम् ॥ २० ॥

भाषार्थ-यहांसे अब पाराशोधनविधि कहते हैं कि प्रथम अच्छे नक्षत्रमें सौ पल (४०० तोला) पारा लेवै ॥ २० ॥

पंचाशत्पंचविंशद्वा दशपंचैकमेव च ।
पलादूनं न कर्तव्यं रससंस्कारमुत्तमम् ॥ २१ ॥

भाषार्थ-पचास पल, वा पचीस पल, एवं दश, वा पांच, अथवा एक पल, पारा लेकर उत्तम प्रकारसे संस्कार करे और एक पलसे कम पाराका संस्कार नहीं करै ॥ २१ ॥

फलत्रयं चित्रकसर्षपाणां कुमारिकन्याबृहतीकषायैः ।
दिनत्रयं मर्दितसूतकस्तु विमुच्यते पंचमलादिदोषैः

भाषार्थ-त्रिफला (आंवला, हर्र, बहेरा,) चीता, सरसों, घीग्वारका पाठा, भटकटैया इन औषधियोंके काढासे तीन दिन मर्दन किया पारा मल आदि पांच दोषोंसे रहित हो जाता है अर्थात् पारेके मलादि पांच दोष छूट जाते हैं ॥ २२ ॥

इष्टिकारजनीचूर्णैः षोडशांशं रसस्य च ।
मर्दयेत्तं तथा खल्वे जम्बीरोत्थद्रवैर्दिनम् ॥ २३ ॥

भाषार्थ-ईंट और हलदीका चूर्ण पारेसे सोलहवां अंश लेकर, मर्दन करै तथा उसको खरलमें डाल जंभीरीके रसमें एक-दिन घोटै ॥ २३ ॥

कांजिकैः क्षालयेत्सूतं नागदोषं विमुंचति ।
विशालां कोलचूर्णेन वंगदोषं विमुंचति ॥ २४ ॥

भाषार्थ-फिर पारेको कांजीसे धोवै तो पारा नागदोषको छोड़ता है अर्थात् पारेमेंसे नागदोष दूर हो जाता है, और जंभीरीका अर्क मिलाय विशाल (इंद्रायन) और कोल (कंकोल)के चूर्णसे मर्दन करै तो वंग कहिये रांगका दोष दूर होवै ॥ २४ ॥

राजवृक्षो मलं हन्ति पावको हन्ति पावकम् ।
चांचल्यं कृष्णधत्तूरस्त्रिफला विषनाशिनी ॥ २५ ॥

भाषार्थ-राजवृक्ष (अमलतास) मलदोषको हरता है, और पावक (चीता) अग्निदोषको नाश करता है, और काला धतूरा चांचल्यदोषको दूर करता है, तथा त्रिफला विषदोषको नाश करती है ॥ २५ ॥

कटुत्रयं गिरिं हन्ति असह्यत्वं त्रिकंटकः ।
प्रतिदोषं पलांशेन तत्र सूतं सकांजिकम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ-त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) गिरि (पाषाण) दोषको दूर करता है और त्रिकंटक (गोखरू) असह्यदोषको नाश करता है और प्रत्येक दोष दूर करना हो तहां प्रत्येक पल पारेमें एक एक पल कांजी मिलावै ॥ २६ ॥

सुवस्त्रगालितं खल्वे सूतं क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ।
उद्धृत्य चारनालेन मृद्भांडे क्षालयेत्सुधीः ॥२७॥

भाषार्थ-फिर पारेको सुन्दर गाढ़े वस्त्रसे छान, खल्वमें रखकर, खरल करै और मिट्टीके बर्तनमें निकाल,जलमें धोवै. इसप्रकार सुन्दर बुद्धिमान् जन करै ॥ २७ ॥

सर्वदोषविनिर्मुक्तः सर्वकंचुकवर्जितः ।
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मसु ॥ २८ ॥

भाषार्थ-तो यह पारा सब दोषोंसे रहित सप्तकंचुकहीन शुद्ध होता है. यह पारा सब रसकर्मोंमें लेवै ॥ २८ ॥

रसस्य दशमांशं तु गंधं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥
जम्बीरोत्थद्रवैर्यामं पात्यं पातनयंत्रके ॥ २९ ॥

भाषार्थ-पारेसे दशवां अंश गन्धक मिलाकर, जंभीरीके अर्कमें एक प्रहरपर्यंत मर्दन करे पश्चात् पारदको निकाल, पातनयंत्रमें पातन करै ॥ २९ ॥

पुनर्मर्द्यं पुनः पात्यं सप्तवारं विशुद्धये ।
युक्तं सर्वस्य सूतस्य तप्तखल्वे विमर्दनम् ॥ ३० ॥

भाषार्थ-फिर मर्दन करै और पातन करे. इसप्रकार सातवार खल्वमें मर्दन करनेसे पारा शुद्ध हो जाता है और सब कार्यमें लानेयोग्य होता है फिर तप्त खल्वमें डाल मर्दन करै ॥ ३० ॥

तप्तखल्वप्रकार ।

अजाशकृत्तुषाग्निं तु भूगर्भे त्रितयं क्षिपेत् ।
तस्योपरि स्थितं खल्वं तप्तखल्वमिदं स्मृतम् ॥३१॥

भाषार्थ-बकरीकी मेंगनी, और भूसी, अग्नि, इन तीनोंको पृथ्वीमें गढ़ा खोदकर भर दे उसपर खरलको रखदे. इसीको तप्तखल्व कहते हैं ॥ ३१ ॥

पारदशोधनमें द्वितीय प्रकार ।

कुमार्याश्च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् ।
पातयेत्पातनायंत्रे सम्यक् शुद्धो भवेद्रसः ॥३२॥

भाषार्थ-घीग्वार और हलदीका चूर्ण, इन दोनोंमें पारदको एक दिन मर्दन करै फिर पातनयंत्रमें पातनकर्म करै तो वह पारा अच्छे प्रकार शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥

तथा अन्यप्रकार ।

श्रीखण्डं देवदारुं च काकतुण्डीजयाद्रवैः ।
कर्कोटीमुशलीकन्याद्रवं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥३३॥
दिनैकं मर्दयेत्पश्चाच्छुद्धं च विनियोजयेत् ।
एवं च शुद्धसूतोऽयं योजयेत्सर्वकर्मसु ॥ ३४ ॥

भाषार्थ-सपेद चन्दन, देवदारु, कौआटोंडी, हड़ककोटी, मुशली, और घीग्वराका रस इन सब औषधियोंमें पारेको एक दिन मर्दन करै. पीछे पातनयंत्रमें पातन कर, शुद्ध हुआ पारा सब कामोंमें युक्त करै अर्थात् सब रसकामोंमें लावै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तथा च ।

अथवा हिंगुलात्सूतं ग्राहयेत्स निगद्यते ।
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितं हिंगुलं दिनम् ॥ ३५ ॥
ऊर्ध्वपातनयंत्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ।
कंचुकैर्नागवंगाद्यैर्विमुक्तो रसकर्मणि ॥ ३६ ॥

विनाकर्म कृतेनैव सूतोऽयं सर्वकार्यकृत् ।
सूतराजमिदं ज्ञेयं कथितं शंभुना पुरा ॥ ३७ ॥

भाषार्थ–अथवा शिंगरफसे पारा निकाले सो विधि कहते हैं, प्रथम सिंगारफको जंभीरीके रसमें मर्दन कर टिकिया बनावै परंतु एक दिनभर मर्दन करै ॥ ३५ ॥ फिर ऊर्ध्वपातन (डमरू) यंत्रसे पातन करनेमें निर्मल पारा निकलता है. सो ग्रहण करनेयोग्य होता है, वह पारा सातो कुंचकी और नागवंगादिदोषोंसे रहित होकर, रसकर्मोंमें ॥ ३६ ॥ अठारहो संस्कारके विनाही किये यह पारा सब कार्य करता है. यह सूतराज जानिये. पूर्व महादेवजीने कहा है ॥ ३७ ॥

सर्वसिद्धमतमेतदीरितं सूतशुद्धिकरमद्भुतं परम् ।
अल्पकर्मविधि भूरिसिद्धिदं देहलोहकरणे हि शस्यते

भाषार्थ–सम्पूर्ण सिद्ध महात्माओंके मतसे यह पारेके शोधनेका बहुत अद्भुत प्रकार कहागया. इसमें थोड़ी ही क्रियाविधिसे बहुत सिद्ध देनेवाला रस जानना और देहको लोहसमान करनेमें अत्यंतही श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य
करोति बाधाम् ॥ देहस्य नाशं विविधं च कुष्ठं
कष्टं च रोगान् जनयेन्नराणाम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमत्पंडितवैद्यनाथतनयशालिनाथ-
कृतायां रसमंजर्यां रसशोधनं नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भाषार्थ–निश्चय करके संस्काररहीन कहिये विना शोधेहुए पारेको जो मनुष्य सेवन करता है उसको अनेक बाधा करता है और देहका नाश तथा नानाप्रकारका कुष्ठरोग, और कष्ट देता है और मनुष्योंके शरीरमें अनेक रोगोंको उत्पन्न करता है॥३९॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतरसमंजरीभाषाटीकायां
रसशोधनप्रकारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

षट्त्रिधरसज्जारण ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसजारणमुत्तमम् ।
अजीर्णं च अबीजं च सूतकं यस्तु घातयेत् १
ब्रह्महा स दुराचारी मम द्रोही महेश्वरि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जारितं मारयेद्रसम् ॥ २ ॥

भाषार्थ–श्रीशिवजी महाराज पार्वतीजीसे कहते हैं कि हे महेश्वरि अब इसके उपरांत रसजारणप्रकार उत्तमतासे कहता हूं, कि जो मनुष्य चंचल और अबीज पारेको मारता है ॥ १ ॥ वह मनुष्य ब्रह्महत्यावाला और दुराचारी तथा हमारा द्रोही है इसकारण सब यत्नोंसे पारेको जारणकर, मारण करै ॥ २ ॥

षट्गुणजारणविधिः ।

प्रक्षिप्य तोयं मृत्कुंडे तस्योपरि शरावकम् ।
सचूर्णं मेखलायुक्तं स्थापयेत्तस्य चान्तरे ॥ ३ ॥

भाषार्थ–अब पारदजारणविधि कहते हैं कि एक मृत्तिकाके कुंडमें पानी भरकर, उसके ऊपर शराव (प्याला मिट्टीका) रख देवे फिर उसके मध्यमें गोल मेखलासमान आढ बनाकर, सरावके बीच पारा रख दे ॥ ३ ॥

रसं क्षिप्त्वा गन्धकस्य रजस्तस्योपरि क्षिपेत् ॥
समभागस्ततो दद्याच्छसवेणापि धापयेत् ॥४॥
लघीयसीं भस्ममुद्रां ततः कुर्याद्भिषग्वरः ।
आरण्योपलकैः सम्यक् चतुर्भिः पुटमाचरेत् ॥५॥
एवं पुनः पुनर्गन्धं दत्त्वा दत्त्वा भिषग्वरः ।
सम्यक् कुर्वीत सूतस्य देवि षड्गुणजारणम् ॥६॥

भाषार्थ–पारा रखकर पारोके बराबर गन्धकका चूर्ण उसके ऊपर छोडे फिर दूसरे सरावसे ढक देवै और दोनों सरावोंकी संधिको किसीसे जोड़ बन्द करदेवे ॥४॥ फिर थोड़ी भस्मसे उसको भिषग्वर (अच्छा वैद्य) लेप करै और वनके उपलोंसे अच्छे प्रकार चार पुट देवे इसप्रकार आंच दे ॥ ५ ॥ और वारवार गंधक उसके ऊपर गेरता जाय. शिवजी कहते हैं कि हे देवि ! इसीप्रकार करनेसे पारेका षड्गुणजारण होता है ॥ ६ ॥

सुवर्णोपाधिकरसजारण ।

सास्यो रसः स्यात्पटुशिग्रुतुत्थैः
सराजिकैर्व्योषणकैस्त्रिरात्रम् ।
पिष्टस्ततः स्विन्नतनुः सुवर्ण-
मुख्यानयं खादति सर्वधातून् ॥ ७ ॥

भाषार्थ–सैंधालवण, सहँजनेके बीज, तूतिया, राई, सोंठ, मिर्च, पीपळ, इनमें तीन दिन पारेको मर्दन करे तो सुखसहित और स्वेदितशरीर पारा होता है फिर यही पारा सुवर्णादि मुख्य मुख्य धातुओंको भक्षण करता है ॥ ७ ॥

तथा च ।

अथवा विडयोगेन शिखिपित्तेन लेपितम् ।
चरेत्सुवर्णं रसराट् तप्तखल्वे यथासुखम् ॥ ८ ॥
निर्दग्धशंखचूर्णं च रविक्षीरेण संयुतम् ।
पुटितं शतशो देवि प्रशस्तं जारणं विदुः ॥ ९ ॥
स्वर्णाभ्रसर्वलोहानि यथेष्टानि च जारयेत् ।
अनेन विधिना सूतं चतुःषष्ट्यंशकादिना ॥१०॥
द्वात्रिंशत्षोडशांशेन जारयेत्कनकं बुधः ।
इत्येतत्कनकं ज्ञेयं जारणं रसकर्मणि ॥ ११ ॥

भाषार्थ–अथवा खारीलवण, मोरके पित्तासे लेपन करे और तप्त खल्वमें यथाकाल मर्दन करनेसे यही रसराज (पारा) सुखपूर्वक सुवर्णको खाता है ॥ ८ ॥ और जलाहुआ शंखका चूर्ण मंदारके दूधमें मिलाय सौ पुट देनेसे शिवजी कहते हैं कि हे पार्वति देवि ! उत्तम जारण जानिये ॥ ९ ॥ एवं सुवर्ण, अभ्रक, लोहा आदि सब धातुओंको यथेष्ट रीतिसे जारण करै. इस विधिसे सिद्धमें पारा चौसठवां अंश ॥ १०॥ वा बत्तीसवां अंश अथवा सोलहवां अंश मिलाकर, सुवर्णको जारणरीतिसे बुद्धिमान् जन जारण करै. रसकर्ममें यह इसप्रकार सुवर्णजारण जानिये ॥ ११ ॥

रसमारणम् ।

द्विपलं शुद्धसूतं च मृतार्धं शुद्धगंधकम् ।
कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं निरन्तरम् ॥ १२ ॥

भाषार्थ-शुद्ध पारा २ पल, और पारासे आधा शुद्ध गन्धक घीग्वारके पाठाके रसमें एक दिनपर्यंत निरन्तर मर्दन करके ॥ १२ ॥

रसभस्मविधि ।

रुद्धा तद्भूधरे यंत्रे दिनैकं मारयेत्पुटात् ।
भुजंगवल्लीनीरेण मर्दितं पारदं दृढम् ॥ १३ ॥
कर्कोटीकन्दमृन्मूषासंपुटस्थं पुटे गजे ।
भस्म तद्योगवाहि स्यात सर्वकर्मसु योजयेत्१४

भाषार्थ-भूधरयंत्रमें रखकर, एक दिनमें पुट देकर, उड़ाय ले, भुजंगवल्ली (पान) के अर्कमें पारेको अच्छेप्रकार मर्दन करै ॥ १३ ॥ फिर उस पारेको कर्कोटीके कंदसे संपुट देके मिट्टीकी घड़ियोंमें रखकर, गजपुटमें फूंकदे. इस विधिसे भस्म किया पारा योगवाही अर्थात् जैसा संयोग पावै वैसा कार्य करे फिर इस पारेको सब कामोंमें युक्त करै ॥ १४ ॥

द्वितीयप्रकार ।

श्वेतांकोलजटावारि सूतो मर्द्यो दिनत्रयम् ।
पुटितश्चान्धमूषायां सूतो भस्मत्वमाप्नुयात् १५
प्रत्यहं रक्तिकाः पंच भक्षयेन्मधुसर्पिषा ।
को वा तस्य गुणान् वक्तुं भुवि शक्नोति मानवः१६

भाषार्थ-सपेद अंकोलकी जटाओंके अर्कमें पारेको तीन दिन मर्दन करै. उपरांत अंधमूषाके बीच रख संपुटकर, गजपुटमें फूंकनेसे पारा भस्मको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ प्रतिदिन पांच रत्ती शहत घीके साथ खाय तो उसके गुण वर्णन करनेको पृथ्वीपर कौन मनुष्य समर्थ है अर्थात कोई नहीं ॥ १६ ॥

रससिन्दूरकरण ।

पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रं सुगंधकं ।
विधिवत्कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधाङ्कुरवारिभिः॥१७॥
भावनात्रितयं दत्वा स्थालीमध्ये निधापयेत् ।
विरच्य कवचीयंत्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥ १८॥
दद्यात्तदनु मन्दाग्निं भिषग्यामचतुष्टयम् ।
जायते रससिन्दूरं तरुणारुणसंनिभम् ॥ १९ ॥
अनुपानविशेषेण करोति विविधान्गुणान् ।

भाषार्थ-१ पल शुद्ध पारा, उतनाही गंधक मिलाय विधिपूर्वक कज्जली करके बड़के अंकुरोंके जलसे तीन भावना देकर, थालीमें रखदेवे फिर एक हांडीमें रखकर, कवचीयंत्रमें धर, बालूसे पूर देवे ॥ १७ ॥ १८ ॥ पश्चात् मंद मंद आंच चार प्रहरपर्यन्त भिषक् (वैद्य) देवे तो वह रससिन्दूर तरुणसूर्यके समान रक्तवर्ण चमकीला होवे ॥ १९ ॥ और विशेष अनुपानसे अनेक प्रकारके गुणोंको करै है ॥

अन्य प्रकार ।

गन्धकेन समः सूतो निर्गुण्डीरसमर्दितः ।
पाचितो वालुकायंत्रे रक्तं भस्म प्रजायते ॥ २० ॥

भाषार्थ-गंधक बराबर पारा लेके संभालूके रसमें मर्दन करै फिर वालुकायंत्रमें धरकर, पचावै तो रक्तवर्ण भस्म पाराकी होवै॥

तथा च ।

सूतार्धं गन्धकं शुद्धं माक्षिकोद्भूतसत्वकम् ।
गन्धतुल्यं विमर्द्याथ दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः ॥ २१ ॥

स्थापयेद्वालुकायंत्रे काचकूप्यां विपाचयेत् ।
अंधमूषागतं वाथ वालुकायंत्रके दिनम् ॥ २२ ॥
पक्कं संजायते भस्म दाडिमीकुसुमोपमम् ।

भावार्थ–पारासे आधा गंधक शुद्ध, गंधकके तुल्य सोना-माखीका सत इन तीनोंको संभालूके अर्कमें एकदिनपर्यन्त मर्दन करके ॥ २१ ॥ फिर वालुकायंत्रमें रक्खै. काचकी कुप्पीमें भर-कर फिर आग लगाय दे, अथवा अंधमूसाका नाम यंत्रमें धरकर, वालुकायंत्रमें एक दिनपर्यन्त आंच दे तो अनारके फूलके समान वर्ण पारदकी भस्म होती है ॥ २२ ॥

तथा अन्यप्रकार ।

पृथक् समं समं कृत्वा पारदं गन्धकं तथा ॥ २३ ॥
नवसारं धूमसारं स्फटिकीं याममात्रकम् ।
निम्बुनीरेण संमर्द्य काचकूप्यां विपाचयेत् ॥ २४ ॥
मुखे पाषाणपटिकां दत्त्वा मुद्रां प्रलेपयेत ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैः पृथक् संशोष्य वेष्टयेत् ॥ २५ ॥
सच्छिद्रायां मृदः स्थाल्यां कूपिकां संनिवेशयेत् ।
पूरयेत्सिकतापूरैरागलं मतिमान् भिषक् ॥ २६ ॥
निवेश्य चुल्ल्यां दहनं मंदमध्यखरं क्रमात् ।
प्रज्वाल्य द्वादशं यामं स्वांगशीतलमुद्धरेत् ॥ २७ ॥
स्फोटयित्वा पुनः स्थालीमूर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत् ।
अधःस्थं रससिन्दूरं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २८ ॥

भावार्थ–पारा तथा गन्धक बराबर बराबर अलग अलग लेकर ॥२३॥ नौसादर, धूमसार, फटकरीसे प्रहरभर मर्दन करके, नींबूके रसमें घोटै फिर कांचकी कूपीमें भरै ॥ २४ ॥ और कुप्पीके मुखको पाषाणके टुकड़ेसे बंद करदे फिर सातपर्त मिट्टी और कपड़ासे कुप्पीको लपेटकर, सुखावै ॥ २५ ॥ फिर एक मिट्टीकी हांडीमें जिसके पेंदेमें छिद्र किया हो उसमें कुप्पीको धर-कर, कुप्पीके गलेतक वालू भरै. इसप्रकार बुद्धिमान् वैद्य॥२६॥ उस हांडीको चूल्हेपर चढ़ाय प्रथम धीमी फिर मध्यम फिर तेज आंच क्रमसे अग्नि जलाय, बारह प्रहर देवै जब स्वांगशीतल हो जावै ॥ २७ ॥ तब चूल्हेपरसे उतार, कुप्पीको थालीमें फोड़. ऊपर लगीहुई गन्धकको त्याग दे और नीचे पेंदीमें लगाहुआ जो रससिन्दूर है उसको सब कामोंमें नियुक्त करै ॥ २८ ॥

अन्यच्च ।

गंधकं धूमसारं च शुद्धं सूतं समं समम् ।
यामैकं मर्दयेत्खल्वे काचकूप्यां निवेशयेत् ॥ २९ ॥
रुध्वा द्वादशयामेषु वालुकायंत्रगं पचेत् ।
स्फोटयेत्स्वांगशीतं तमूर्ध्वस्थं गंधकं त्यजेत् ३०॥
अधःस्थं मृतसूतं च सर्वयोगेषु योजयेत् ।

भावार्थ–गंधक, धूमसार, और शुद्ध पारा बराबर २ लेके खरलमें डाल, एक प्रहरपर्यंत मर्दन करै फिर काचकी कुप्पीमें धरै ॥ २९ ॥ अनन्तर उसका मुख खामके, बारह प्रहर वालुका-यंत्रमें पकावै. शीतल होनेपर शीशीको फोड़कर, ऊपर उड़ी हुई गंधकको त्याग देवै ॥ ३० ॥ और नीचे लगेहुए पारेको लेकर, सब कामोंमें युक्त करै ॥

तथा अन्यप्रकार ।

भागौ रसस्य त्रय एव भागा गंधस्य भागं पवनाशनस्य । संमर्द्य गाढं सकलं सुभांडे तां कज्ज्वलीं काचकृते विदध्यात् ॥३१॥ संवेष्ट्य मृत्कर्पटकैः खटां तां मुखे सचूर्णां खटिकां च कृत्वा । क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा तां वालुकायंत्रगतां ततः स्यात् ॥३२॥ बंधूकपुष्पारुणमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु । निजाऽनुपानैर्मरणं जरां च निहन्ति वल्लक्रमसेवनेन ॥३३॥

भाषार्थ–२ भाग पारा, ३ भाग गन्धक, ३ भाग लहसुन, इन सबको गाढ मर्दन कर, कजली करे फिर उस कजलीको कांचकी कुप्पीमें भरकर ॥ ३१ ॥ खरिया मिट्टीसे कपड़ मिट्टीकर, मुखको बन्दकर, सुखा करके, क्रमपूर्वक मंदी, मध्यम, तेज आंचसे तीन दिनतक वालुकायंत्रमें पकावै ॥ ३२ ॥ स्वांगशीतल होनेपर कुप्पीको फोड़, गुलदुपहरीके सदृश लाल उस भस्मको अनेक अनुपानसे सब रोगोंपर युक्त करे. अपने अनुपानसे क्रमपूर्वक दो रत्ती सेवन करनेसे मृत्यु और जरा (बुढ़ापा) को नाश करता है ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

पक्वमूषागतं सूतं गन्धकं चाधरोत्तरम् ।
तुल्यं संचूर्णितं कृत्वा काकमाचीद्रवं पुनः ॥ ३४ ॥
द्वाभ्यां चतुर्गुणं देयं द्रवं मूषा निरुध्य च ।
पाचयेद्गडुकायंत्रे क्रमवृद्धाग्निना दिनम् ॥ ३५ ॥

आरक्तं जायते भस्म सर्वयोगेषु योजयेत् ।

भाषार्थ–पकीहुई मूषा (घड़िया) से निकला पारा और उसके बराबर पारा नीचे ऊपर रखकर, चूर्ण करके फिर मकोयका अर्क ॥ ३४ ॥ दोनोंसे चौगुना घड़ियामें भरदे. दूसरी घड़िया ऊपरसे ढाकदे फिर गडुकायंत्रमें क्रमपूर्वक वृद्धाग्नि कहिये प्रथम मन्द (धीमी) फिर मध्यम फिर तेज अग्निसे एक दिनपर्यन्त आंच देवै ॥ ३५ ॥ शीतल होनेपर उसको निकाल, पात्रमें धरै तो वह लालवर्ण भस्म होती है. सो सब रोगोंमें काममें लावै ॥

तथान्यप्रकार ।

अश्वगंधादिवर्गेण रसं स्वेद्यं प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥
तत्तुल्यं गन्धकं दत्त्वा मर्दयेत्कुशलो भिषक् ।
पाचयेद्रससिन्दूरं जायतेऽरुणसन्निभम् ॥ ३७ ॥
श्रेष्ठं सर्वरसाना हि पुष्टिकामबलप्रदम् ।
इदमेवायुषो वृद्धिं कर्तुं नान्यदलं भवेत् ॥३८॥
विनापि स्वर्णराजेन मुनिभिः परिकीर्तितम् ।

भाषार्थ–असगंधआदि वर्गसे पारेको यत्नपूर्वक स्वेदनकर, उसके बराबर गंधकको डाल, वैद्य मर्दन करे; फिर नीचे आग देकर, पचावै; तो सूर्यके समान लालवर्ण रससिंदूर होजाता है ॥३६॥ ३७ ॥ सो सब रसोंमें श्रेष्ठ, पुष्टि काम बलका देनेवाला है और यही आयु बढ़ानेवालोंमें है, अन्य कोई नहीं ॥ ३८ ॥

दूसरा कोई रस स्वर्णराजसे विना भी इससिवाय कोई नहीं ऐसा मुनियोंने कहा है ॥

अन्यच्च ।

टंकणं मधु लाक्षाथ ऊर्णा गुंजायुतो रसः ॥३९॥
मर्दयेद्भृंगजैर्द्रावैर्दिनैकं वा धमेत्पुनः ।
ध्मातो भस्मत्वमायाति शुद्धः कर्पूरसन्निभः ४०

भाषार्थ–चौकिया सोहागा, शहत और लाख, पीपल, ऊन, गुंजा (घुंघुची), पारा, ॥ ३९ ॥ इनको बराबर ले, भँगराके अर्कमें एकदिन रगडै फिर धोंकनी धौंककर, भस्म करनेपर भस्म शुद्ध कपूरके समान होजाती है ॥ ४० ॥

रसकर्पूरविधिः ।

खटीष्टगैरिका वल्मी मृत्तिका सैंधवं समम् ।
भागद्वयमितं गन्धं रसं भागद्वयं स्मृतम् ॥४१॥
हंडिकायां विनिक्षिप्य पार्श्वे पार्श्वे च खर्पटान् ।
दग्ध्वाथ हंडिका दत्त्वा द्विरष्टप्रहरं पचेत् ॥४२॥
मृतमूतं तु गृह्णीयाच्छुद्धकर्पूरसंनिभम् ।

भाषार्थ–खरिया, ईंट, गेरू, बांबीकी मिट्टी, सेंधालवण यह सब समानभाग लेकर, २ भाग गंधक और २ भाग पारा लेकर, खरल करै ॥ ४१ ॥ फिर हाँड़ियोंमें भर, किनारे २ सब-ओर कपड़ा लगाय, आगपर धर, १६ प्रहरतक आग जलावै॥४२॥ फिर शुद्ध कपूरके समान पारेकी भस्मको ग्रहण करै-यह रसकर्पूर है॥

अन्यच्च ।

पिष्टं पांशु पटुप्रगाढममलं वज्रांबुनानेकशः
सूतं धातुयुतं खटीकवलितं तं सम्पुटे रोधयेत् ।

अन्तःस्थं लवणस्य तस्य च तले प्रज्वाल्य वह्निं
हठाद्भस्म ग्राह्यमथेन्दुकुन्दधवलं भस्मोपरिस्थं
शनैः ॥ ४३ ॥ तद्वल्लद्वितयं लवंगसहितं प्रातः
प्रभुक्तं नृणामूर्ध्वं रेचयति द्वियाममसकृत्पेयं
जलं शीतलम् । एतद्धन्ति च वत्सरावधि विषं
षाण्मासिकं मासिकम् शैलोत्थं गरलं मृगेन्द्र-
कुटिलोद्भूतं च तात्कालिकम् ॥ ४४ ॥

भाषार्थ–अब रसकपूरकी दूसरीविधि कहते हैं कि सेंधाल-वणको थूहरके दूधमें पाराको कईबार रगड़कर, मिलाय सम्पुट शरावकर खरियासे कपड़मिट्टीकर, अग्निपर धरै और लवणको बीचमें और नीचे ऊपर धरै फिर दोनों शरावोंके सम्पुटतले तेज अग्नि जलाकर भस्म करे, फिर शीतल होनानेपर संपुट खोलकर, कुंद (दुपहरी) के फूलके समान स्वच्छ रसकपूर निकालकर, पात्रमें धीरे २ उतारकर, धरै ॥ ४३ ॥ फिर वही रसकपूर दो वल्ल (६ घुंघुची) के बराबर जो मनुष्य प्रातःकाल लौंगके साथ खाय तो दोप्रहरके उपरांत दस्त आवै. ऊपरसे वारवार शीतल जल पीवै इससे १ वर्षपर्यन्तका अथवा छे महीने, वा एकमही-नेका, वा शिलासे उत्पन्नविष, वा सिंहके नखका विष, अथवा कोईभी कुटिल जीवोंका विष, वा तत्काल खायाहुआ विष इन सब विषोंको यह रसकपूर नाश करता है ॥ ४४ ॥

रसमूर्छनविधिः ।

मेघनादवचाहिंगुलशुनैर्मर्दयेद्रसम् ।
नष्टदिष्टं तु तद्गोलं हिंगुना वेष्टयेद्बहिः ॥ ४५ ॥

पचेल्लवणयंत्रस्थं दिनैकं चण्डवह्निना ।
ऊर्ध्वलग्नं समादाय दृढवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ४६ ॥
ऊर्ध्वाधोगन्धकं तुल्यं दत्त्वा सौम्यानले पचेत् ।
जीर्णे गन्धे पुनर्देयं षड्भिर्वारैः समं समम् ॥ ४७ ॥
षड्गुणे गन्धके जीर्णे मूर्छितो रोगहा भवेत् ।

भाषार्थ–चौलाई, बच, हींग, लशुन, इनसे पारेको मर्दन करै. जब पिट्ठीके समान हो, तब गोला बनाय ले फिर गोलेमें हींग लपेटै ॥ ४५ ॥ फिर गोलेको लवणयंत्रमें १ दिनभर बहुत तेज आँचसे पकावै फिर शीतल होनेपर उस यंत्रको खोल, ऊपर पेंदेमें लगाहुआ रस निकालले और उसे लेकर, पुष्ट कपड़ेसे लपेटै ॥ ४६ ॥ फिर उससे ऊपर नीचे बराबर गन्धक देतारहै और अग्निकी सामान्य आँच देकर, पचावै. इसीप्रकार गंधकको जीर्ण जान फिर गंधक देवै. ऐसेही छः वार गंधक देदे पकावै ॥ ४७ ॥ यह षड्गुणजीर्णगन्धक मूर्छित होनेसे सब रोगोंको नाश करनेवाला होता है ॥

अन्यच्च ।

लोहपात्रेऽथवा ताम्रे पलैकं शुद्धगन्धकम् ॥ ४८ ॥
मृद्वह्निना द्रुते तस्मिञ्छुद्धं सूतपलत्रयम् ।
क्षिप्त्वाऽथ चालयेत्किंचिल्लोहदर्व्या पुनःपुनः ॥ ४९
गोमयं कदलीपत्रं तस्योपरि च ढालयेत् ।
इत्येवं गन्धबद्धं च सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ९ ॥

भाषार्थ–लोहे वा ताँबेके पात्रमें १ पल शुद्ध गंधक ॥ ४८ ॥ धीमी अग्निपर गरम करके तीनपल शुद्ध पारा मिलाय फिर लो-

हेकी कलछीसे चलावै फिर ॥ ४९ ॥ केलाके पत्तापर गोबर ल-गाय, उसपर ढाले तो यह गंधकबद्ध सब रोगोंमें योजित करै ॥ ५० ॥

गंधबद्धका गुण ।

मारितो देहसिद्ध्यर्थं मूर्छितो व्याधिनाशने ।
रसभस्म क्वचिद्रोगे देहार्थे मूर्च्छितं क्वचित ॥ ५१ ॥
बद्धो द्वाभ्यां प्रयुंजीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।

भाषार्थ–देहकी सिद्धिमें मराहुआ गंधक काम आता है और मूर्छित गंधक रोगनाश करनेमें उपयोगी है और पारेकी भस्म रोगमें, और शरीरके निमित्त मूर्छित पारा उपयोगी है ॥ ॥ ५१ ॥ और बद्ध पारा गंधक देहके निमित्त और रोगनाशार्थ काम आता है, यह शास्त्रदृष्ट कर्म करके जानना ॥

बद्धपारदलक्षण ।

अक्षयी च लघुर्द्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः ॥ ५२ ॥
स्फुटनं पुनरावृत्तिर्बद्धसूतस्य लक्षणम् ।
कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम् ॥ ५३ ॥
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्छितः सुतरां बुधैः ।
आर्द्रत्वं च घनत्वं च चापल्यं गुरुतेजसम् ॥ ५४ ॥
यस्यैतानि न दृश्यन्ते तद्विद्यान्मृतसूतकम् ॥ ५५ ॥

रसस्तु पादांशसुवर्णजीर्णः पिष्टीकृतो गंधकयोगतश्च । तुल्यांशगंधैः पुटितं क्रमेण निर्बीजनामाखिलरोगहन्ता ॥ ५६ ॥ बीजीकृतैरभ्रकसत्त्वहेमतारार्ककान्तैः सह साधितो यः । पुनस्ततः षड्गु-

णगंधचूर्णः सबीजबद्धोऽप्यधिकप्रभावः ॥ ५७ ॥
रसवीर्यविपाकेषु विंद्यात्सूतं सुधामयम् ।
सेवितोऽसौ सदा देहे रोगनाशाय कल्पते ॥ ५८ ॥

भाषार्थ–अब बद्धपारदके लक्षण कहते हैं किं जो क्षीण न हो, थोड़ा गीला हो, चमकदार हो, निर्मल हो, भारी हो ॥ ॥ ५२ ॥ विथुरने पर फिर इकट्ठा होजावे, यह बँधेहुए पारदका लक्षण है तथा जो पाराका जलके समान कठोरता और चपलताको छोड़ताहोवै ॥ ५३ ॥ ऐसा पारा देखनेमें आवै तो बुद्धिमान् जन उसको अच्छा मराहुआ पारा जानै और जिस पारामें गीलापन, सघनता, चपलता, गुप्तचमकीका, ॥ ५४ ॥ इसप्रकार ऐसा न दीखपड़ै तो उसको मृतपारा जानिये ॥ ५५ ॥ और पारेसे चौथा हिस्सा सुवर्ण जीर्ण हुआ हो और गंधकको मिलाय पीसा गया हो और क्रमसे समानभाग करके पुट दिया गया हो उसको सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाला निर्बीजनाम रस जानिये ॥ ५६ ॥ तथा अभ्रक, सत्त्व, सुवर्ण, चाँदी, और लोहेके संयोगसे पिट्टीकरके जारित और षड्गुण गंधक करके हत हो उस अधिक प्रभाव करनेवाले पारेको बीजबद्ध कहते हैं ॥ ५७ ॥ रस और वीर्यके विपाकविषे इस अमृतमय पारेका सेवन जानिये, इसके सेवन करनेसे सर्वदा देहमें रोग नाश होता है ऐसा जानना ॥ ५८ ॥

पारदके सेवनमें पथ्य ।

कूष्मांडं कर्कटीं चैव कलिंगं कारवेल्लकम् ।
कुसुंभिकं च कर्कोटीं कदलीं काकमाचिकाम् ५९
ककाराष्टकमेतद्धि वर्जयेद्रसभक्षकः ।

हितं मुद्गाबु दुग्धाज्यं शाल्यन्नं च विशेषतः ६०
शाकं पुनर्नवायास्तु मेघनादं च चिल्लिकाम् ।
सैंधवं नागरं मुस्तं पद्मं मूलानि भक्षयेत् ॥६१॥
अभ्यंगं मैथुनं स्नानं यथेष्टं च सुखांबुना ।
रूपयौवनसम्पन्नां सानुकूलां प्रियां भजेत्॥६२॥
बुद्धिः प्रज्ञा बलं कान्तिः प्रभा चैव वयस्तथा ।
वर्द्धन्ते सर्व एवैते रससेवाविधौ नृणाम् ॥ ६३ ॥
यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह योजयेत् ।
रसेन्द्रो हरते रोगान्नरकुंजरवाजिनाम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्वैद्यनाथतनयशालिनाथकृते रसमंजरीग्रंथे रसस्य जारणमारणादिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

भाषार्थ–१ कुम्हेडा, २ ककरी और ३ तरबूज, ४ करेला, ५ कुसुंभ, ६ ककोंटी, ७ केला, ८ मकोय ॥ ५९ ॥ यह आठ ककार रस (पारा) खानेवाला वर्जित करै और मूँगका पानी दुग्ध, घी, और विशेषकरके चावल हित (गुणदायक) हैं ॥ ६० ॥ और शाकमें साठ, चौलाई, मेथी, सेंधालवण, सोंठ, मोथा, कमलकी जड़ खावे ॥ ६१ ॥ उवटन, मैथुन (स्त्रीप्रसंग), स्नान जलसे यथेष्ट सुखपूर्वक करै और रूप तथा यौवनसे सम्पन्न अपने अनुकूल प्यारी स्त्रीको सेवन करै ॥ ६२ ॥ रससेवनकी विधिमें बुद्धि, ज्ञान, बल, कान्ति और रूप, तथा आयु ये सब बढ़ते हैं ॥ ६३ ॥ जिस रोगका जो योग हो, उस-

को उसीके साथ देवे तो वह रसेन्द्र मनुष्य, हाथी, घोड़ोंके रोगोंको नाश करताहै ॥ ६४ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतरसमंजरीभाषाटीकायां रसस्य जारणमारणादिकथनं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय ॥ ३ ॥

उपरसवर्णन ।

गन्धकं वज्रवैक्रान्ते गगनं तालकं शिलाम् ।
खर्परं शिखितुत्थं च विमला हिममाक्षिकम् ॥१ ॥
कासीसं कान्तपाषाणं वराटांजनहिंगुलम् ।
कंकुष्ठं शंखभूनागं टंकणं तु शिलाजतु ॥ २ ॥
एते उपरसाः प्रोक्ताः शोध्या द्रव्याश्च मारयेत् ।

भाषार्थ–और उपरसोंकी उत्पत्ति और शोधनप्रकार वर्णन करते हैं–गन्धक, हीरा, वैक्रांत, हरताल, मनसिल, खपरिया, नीलाथोथा, उत्तम सोनामक्खी ॥ १ ॥ कसीस, कान्तलोह, कौड़ी, सुरमा, सिंगरफ, मुरदाशंख, शंख, भूनाग, सोहागा, शिलाजीत ॥ २ ॥ ये उपरस कहे हैं इनको शोधै और मारै ॥

गंधकोत्पत्तिवर्णन ।

तत्रादौ गंधकोत्पत्तिं शोधनं त्वथ कथ्यते ॥ ३ ॥
श्वेतद्वीपे पुरा देव्या क्रीडन्त्याः प्रसृतं रजः ।
क्षीरार्णवे तु स्नाताया दुकूलं रजसान्वितम् ॥ ४ ॥
धौतं यत्सलिले तस्मिन् गन्धवद्गन्धकं स्मृतम् ।
चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तपीतसितासितैः ॥५ ॥

रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने ।
व्रणादिलेपने श्वेतः श्रेष्ठः कृष्णस्तु दुर्लभः ॥ ६ ॥
अशुद्धगन्धः कुरुतेऽतिकुष्ठं तापं भ्रमं पित्तरुजं करोति । रूपं सुखं वीर्यबलं निहन्ति तस्मात्सुशुद्धंविनियोजनीयम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ–अब गंधककी उत्पत्तिं शोधनविधि कहते हैं ॥३॥ एक समय श्वेतद्वीपके बीचमें भगवती पार्वतीजी सखियोंसमेत क्रीडा करती हुई रजोधर्मको प्राप्तहुई क्षीरसागरमें जाय स्नान किया और रजसें मिलाहुआ चीर ॥ ४ ॥ जलमें धोया उसी रजसे गंधक उत्पन्न हुई; वह गंधक चार प्रकारका कहा है लाल, पीला, सपेद, काला ॥ ५ ॥ उसमें लाल रंगका सुवर्णआदि रसायनक्रियामें श्रेष्ठ कहा है, और पीला गंधक वाजीकरण तथा वृद्धसे युवा करने आदि रसायनमें, श्वेतरंगका गंधक फोड़ा आदि घावके लेपमें, और काले रंगका गंधक श्रेष्ठ है सो दुर्लभ है ॥ ६ ॥ अशुद्ध (विना शोधा) गंधक जो मनुष्य सेवन करते हैं तो अति कुष्ठको उत्पन्न करता है और तप, चित्तभ्रम, पित्तरोग, करता है, तथा रूप, सुख वीर्यबलका नाश करता है, इसकारण अच्छा शुद्ध गंधक प्रयोगोंमें लेवे ॥ ७ ॥

गंधकशोधन ।

साज्यभांडे पयः क्षिप्त्वा मुखं वस्त्रेण बन्धयेत् ।
तत्पृष्ठे गन्धकं क्षिप्त्वा शरावेणावरोधयेत् ॥ ८ ॥
भाण्डं निक्षिप्य भूम्यां तदूर्ध्वं देयं पुटं लघु ।
ततः क्षीरेण गंधं च शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ ९ ॥

भाषार्थ–घीके चिकने पात्रमें दूध भरकर, उसका मुख वस्त्रसे बांधे. उसके ऊपर गंधक बिछाकर शरवासे ढांक दे ॥ ८ ॥ फिर उस पात्रको पृथिवीमें गाड़ दे. उस शरवाके ऊपर आने उपलोंको चुनके आंच लगा दे वह गंधक आंचसे पिघल २ दूधमें जापडेगी फिर शीतल हुए पर वह गंधक निकाल शोधी-हुई सब प्रयोगोंमें युक्त करै ॥ ९ ॥

तथा च ।

गंधकं शोधयेद्दुग्धे दोलायंत्रेण तत्त्ववित् ।
तेन शुद्धो भवत्येष धातूनां प्राणमूर्छकः ॥ १० ॥

भाषार्थ–द्रव्यशोधन मारणके तत्त्वका जाननेवाला वैद्य दुग्धमें दोलायंत्रसे गंधकको शोधै. उस करके यह शुद्ध गंधक धातुओंके मारणमें उपयोगी जानना ॥ १० ॥

अन्यच्च ।

घृतयुक्तमयोदर्व्यां गन्धं वह्नौ प्रगालयेत् ।
एकीभूतं ततो गंधं दुग्धमध्ये परिक्षिपेत् ॥ ११ ॥
तेन शुद्धो भवेद्गंधः सर्वयोगेषु योजयेत् ।
शोधितो रसराजः स्याज्जरामृत्युरुजापहः ॥ १२ ॥
अग्निसंदीपनं श्रेष्ठं वीर्यवृद्धिं करोति च ।
अग्रे तैलं प्रवक्ष्यामि शृणु सादरतः शिवम् ॥ १३ ॥

भाषार्थ–घी मिला गंधक लोहेकी कड़ाहीमें डाल, चूल्हे-पर चढ़ाय नीचे अग्नि प्रज्वलित करै. जब गंधक गलकर, एक हो जावै तब दुग्धमें डाल देवै ॥ ११ ॥ तो गंधक शुद्ध होवै सो सब काममें लेवै. इस प्रकार रसराज (गंधक) शुद्ध

होता है, जरा (बुढ़ापा) मृत्युको और रोगोंको नाश करता है ॥ १२ ॥ जठराग्निको प्रदीप्त करता है, श्रेष्ठ है, वीर्यकी वृद्धि करता है, आगे गंधक तैल कहूंगा सो आदर पूर्वक सुनौ ॥ १३ ॥

गंधकतैल ।

अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा ।
गन्धकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेत्तु तत् ॥ १४ ॥
तद्वर्तिर्ज्वलिता वंशैर्धृता धार्या त्वधोमुखी ।
तैलं पतत्यधो भाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥ १५ ॥
अग्निसंदीपनं श्रेष्ठं वीर्यवृद्धिं करोति च ।

भाषार्थ–आकके दूधसे, और थूहरके दूधसे सात २ वार वस्त्रको भिगोकर सुखालेवै, और गन्धकको मक्खनसे पीसकर, कपड़ापर लेपै ॥ १४ ॥ फिर उसकी बत्ती बनाय जलावै, उस जली हुई बत्तीको बाँसकी पोंगमें रख नीचेके मुख उसका करदे तो तैल नीचेके पात्रमें गिरै उसको लेकर, सब योगोंमें वर्तै ॥ १५ ॥ यह गंधक तैल अग्निको दीप्त करता है और वीर्यकी वृद्धि करता है.

हीराकी ज्ञाति तथा लक्षण ।

श्वेतरक्ता पीतकृष्णा द्विजाद्या वज्रजातयः ।
पुंस्त्रीनपुंसकं चेति लक्षणेन तु लक्षयेत् ॥ १६ ॥
वृंताकफलसंपूर्णास्तेजोवन्तो बृहत्तराः ।
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः ॥ १७ ॥
रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षट्कोणास्ताः स्त्रियःस्मृताः ।
त्रिकोणाःपत्रवद्दीर्घा विज्ञेयास्ते नपुंसकाः ॥ १८ ॥

सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठा वेधका रसबन्धकाः ।
स्त्रीवज्रदेहसिध्द्यर्थं क्रामणं स्यान्नपुंसकम् ॥ १९ ॥
विप्रो रसायने प्रोक्तः क्षत्रियो रोगनाशने ।
वादादौ वैश्यजातीयो वयःस्तम्भे तुरीयकः ॥ २० ॥
स्त्री तु स्त्रियै प्रदातव्या क्लीबे क्लीबं तथैवच ।
सर्वेषां सर्वदा योज्याः पुरुषा बलवत्तराः ॥ २१ ॥

भाषार्थ–हीराकी ब्राह्मण आदि चार जाति हैं उनमें सफेद ब्राह्मण, लाल क्षत्री, पीला वैश्य, काला शूद्र जानिये. फिर पुरुष स्त्री, नपुसंक, ये तीन भेद हैं सो आगे लिखे लक्षणोंसे जानना ॥ १६ ॥ जो हीरा बैंगनके फल समान गोल हो और सम्पूर्ण हो अर्थात् टुकड़ा न हो, तथा चमकीला और बड़ा हो, जिसमें रेखा और बिन्दु न हों, इन लक्षणोंसे युक्त हीराको पुरुषसंज्ञक कहते हैं ॥ १७ ॥ तथा जो रेखा और बिन्दुसे युक्त हो षट्कोण (६ कोणका) होवै वह स्त्रीसंज्ञक कहा है, और जो हीरा तीनकोणका पत्ताके सदृश लंबा हो सो नपुंसकसंज्ञक जानिये ॥ १८ ॥ इन सबप्रकारके हीरोंमें पुरुषसंज्ञक हीरा श्रेष्ठ है सो रस (पारा) का अथवा धातुओंका वेधक और बंधक है, और स्त्रीसंज्ञक हीरा देहसिद्धि अर्थात् शरीरपुष्टिके अर्थ जानना, तथा नपुंसक संज्ञक हीरा क्रामण कहिये कामचेष्टा बढ़ानेवाला है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणवर्णका हीरा रसायनक्रियामें उपयोगी कहा है, क्षत्रियवर्णका हीरा रोगनाश करनेमें श्रेष्ठ है, वैश्यजातिका हीरा कामआदिके बढ़ानेमें तथा शूद्रजाति हीरा अवस्थास्थापन करनेमें अर्थात् बुढ़ापा आदि दूर करनेमें लेना ॥ २० ॥ स्त्रीसंज्ञक हीरा स्त्रीको और नपुंसकहीरा नपुंसकको तथा पुरुषसंज्ञक हीरा सर्वदा सबके निमित्त

देवै, यह सब प्रकारसे बलकारक और सब औषधियोंके साथ हितकारी है ॥ २१ ॥

हीराशोधन ।

पांडुरोगं पार्श्वपीडां किलासं दाहसंततिम् ।
रोगानीकं गुरुत्वं च धत्ते वज्रमशोधितम् ॥ २२ ॥
व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायंत्रे विपाचितम् ।
सप्ताहं कोद्रवे क्वाथे कौलत्थे विमलं भवेत् ॥ २३ ॥

भाषार्थ–विना शोधा हीरा पांडुरोग, कुक्षिपीडा, सीपरोग, दाह (जलन) और भारीपन, इन रोगोंको उत्पन्न करता है, इस कारण आगे लिखे प्रकारसे अवश्य शोध लेना ॥ २२ ॥ वज्र (हीरा) को व्याघ्रीकन्द (भटकटाईकी जड़)में छिद्र करके उसमें धरै और दोलायंत्रमें रखकर, सातदिन कोदौं वा कुलथीके काढ़ामें पचावै तो हीरा निर्मल शुद्ध होवै ॥ २३ ॥

तथान्यः प्रकारः ।

व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृदा लिप्तं पुटे पचेत् ।
अहोरात्रात्समुद्धृत्य हयमूत्रेण सेवयेत् ॥ २४ ॥
वज्रीक्षीरेण वा सिंचेत्कुलिशं विमलं भवेत् ।

भाषार्थ–तथा दूसरा प्रकार हीराशोधनका यह है कि हीराको व्याघ्री (भटकटाई) की जड़में रख, कपरमिट्टीकरके सुखालेवै और गजपुटकी आँचमें पकावै. एक दिनरातके उपरांत निकालकर, घोड़ाके मूत्रमें बुझावै ॥ २४ ॥ अथवा सेहुँडके दुग्धमें डालदेवै तो कुलिश (हीरा) निर्मल शुद्ध हो जाता है ॥

हीरामारणविधि ।

त्रिवर्षरूढकार्पासमूलमादाय पेषयेत् ।
त्रिवर्षनागवल्ल्या वा निजद्रावैः प्रपेषयेत् ॥२५॥
तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
एवं सप्तपुटं कृत्वा कुलिशं म्रियते ध्रुवम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ–तीनवर्षकी पुरानी कपासकी जड़ अथवा वर्षकी नागवल्ली कहिये पानकी जड़ लाके उसकी लुगदी बनावै ॥ ॥ २५ ॥ उस लुगदीके गोलामें हीराको रख, कपड़मिट्टी करके गजपुटकी आँचमें पकावै, इस प्रकार सात पुट देनेसे हीरा निश्चय करके भस्म होता है ॥ २६ ॥

अन्यच्च ।

कांस्यपात्रे तु भेकस्य मूत्रे वज्रं सुभावयेत् ।
त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तं वज्रमेवं मृतं भवेत् ॥ २७ ॥

भाषार्थ–काँसेके पात्रमें मेंडकका मूत्र भरै. उसमें हीराको तपा २ कर २१ वार बुझावै. इसप्रकार पारा भस्म हो जाता है २७

तथान्यः प्रकारः ।

त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तं खरमूत्रेण सेचयेत् ।
मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत् ।२८।
प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण वै ।
भस्मीभवति तद्भुक्तं वज्रवत्कुरुते तनुम् ॥ २९ ॥
आयुष्यं सौख्यजनकं बलदं रूपदं तथा ।
रोगघ्नं कुष्ठहरणं वज्रभस्म भवत्यलम् ॥ ३० ॥

भाषार्थ–हीरेको लेकर, २१ वार तपाय २ के गदहेके मूत्रमें बुझावै फिर खटमल और हरतालको पीसकर, गोला बनाय, उसमें हीरेको धरै ॥ २८ ॥ फिर प्रचंड अग्निसे तपाय, घोड़ाके मूत्रमें बुझावै. इस प्रकार पूर्वोक्त क्रमानुसार तपाय २ बुझानेसे हीरा भस्म होता है. सो भस्म खावै तो शरीरको वज्रसमान कठोर करता है ॥२९॥ और आयुको बढ़ाता है. सुखको उत्पन्न करता है. तथा बल और रूपको देता है, रोगोंका नाश करता है, मृत्युको हरता है, हीराकी भस्म इस प्रकार गुणदायक होती है ३०

वैक्रान्तना क हीरामारण ।

अष्टास्रिरष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः ।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ ३१ ॥
श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः । श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्च त्रिधा हि सः ॥ ३२ ॥
आयुःप्रदः सफलबन्धकरोऽतिवृष्यः प्रज्ञाप्रदः सकलरोगसमूलहारी । दीप्ताग्निकृत्पविसमानगुणस्तरस्वी वैक्रान्तकः खलु वपुर्बललोहकारी ॥ ३३ ॥
वैक्रान्तं वज्रवच्छुद्धं ध्मातं तं हयमूत्रके । हितं तद्भस्म संयोज्यं वज्रस्थाने विचक्षणैः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ–अष्टधार, आठ फलकवाला, तथा ६ कोणका चमकीला, और भारी शुद्ध अनेकरंगोंसे युक्त ऐसा हीरा वैक्रांतसंज्ञक कहा है ॥ ३१ ॥ सो सपेद, लाल, पीला, नीला, कबूतरके समान रंगका, श्याम, काला, विचित्रवर्ण, यह आठ प्रकारके रंगका वैक्रान्त होता है ॥ ३२ ॥ यह वैक्रांत आयु बढ़ाने वाला,

सफलबंधक, बलप्रदायक, बुद्धिको देनेवाला, समस्त रोगोंको जड़से उखाड़नेहारा जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला और हीराकेसमान गुण करनेवाला तथा निश्चय करके शरीर लोहेके समान कठोर और बलवान् करनेवाला है ॥ ३३ ॥ यह वैक्रांत हीराके समान शुद्ध करै फिर तपाय २ कर, घोड़ेके मूत्रमें बुझानेसे भस्म हो जाता है उसकी भस्म बुद्धिमानोंकर हीराकी भस्मके स्थानमें संयोजित करै अर्थात् हीराकी भस्मके स्थानमें यह दीजावै ॥ ३४ ॥

अभ्रकलक्षण ।

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रमभ्रं चतुर्विधम् । ध्मा-
तं वह्नौ दलचयं पिनाकं विसृजत्यलम् ॥ ३५ ॥
फूत्कारं नागवत्कुर्याद्दर्दुरं भेकशब्दवत् । चतुर्थं
च वरं ज्ञेयं न चाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥ ३६ ॥
तस्माद्वज्राभ्रकं ग्राह्यं व्याधिवार्धक्यमृत्युजित् ।
अशुद्धाभ्रं निहंत्यायुर्वर्द्धयेन्मारुतं कफम् ॥३७॥
अहतं छेदयेद्गात्रं मन्दाग्निकृमिवर्धकम् । अतः
शुद्धाभ्रकं ग्राह्यं मन्दाग्निकृमिनाशनम् ॥ ३८ ॥

भाषार्थ-१ पिनाक, २ दर्दुर, ३ नाग, ४ वज्र, यह चारका अभ्रक होता है. इनमें अग्निमें तपाये जानेसे पृथक् २ वर्क हो जायँ वह पिनाकनाम अभ्रक कहिये ॥ ३५ ॥ और अग्निमें डालनेसे सांपके समान फुंकार करै वह नागनाम अभ्रक है और दर्दुर अभ्रक मेंढकके शब्दसमान शब्द करता है, और चौथा वज्रनाम अभ्रक अग्निमें डालनेसे विकार नहीं करता अर्थात् जैसाका तैसा ही रहता है सो श्रेष्ठ जानिये ॥ ३६ ॥ इसकारण वज्राभ्र-

कको ग्रहण करै, व्याधि (शरीररोग), बुढ़ापा और मृत्युको जीतता है, अशुद्ध अभ्रक आयुको घटाता है और वातविकार तथा कफको बढ़ाता है ॥ ३७ ॥ विना माराहुआ अभ्रक शरीरको छेदता है अर्थात् फोड़ देता है और मन्दाग्नि तथा कृमिको बढ़ावनेवाला है, इसकारण शुद्ध अभ्रक ग्रहण करै जो मन्दाग्नि और कृमिरोगको नाश करनेवाला है ॥ ३८ ॥

धान्याभ्रककरणविधि ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वाथ कंबले ।
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेद्दृढम् ॥ ३९ ॥
कम्बलाद्गलितं श्लक्ष्णं वालुकारहितं च यत् ।
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तं सद्भिर्देहस्य सिद्धये ४०॥

भाषार्थ-जितना अभ्रक लेवै उससे चौथाई साठीके धान मिलाय, कंबलमें बांधकर, तीन दिन रात जलमें भिगो देवै फिर उस थैलीको उसी जलमें अच्छे प्रकार मर्दन करै ॥ ३९ ॥ कि जिससे उसमेंसे मिट्टी और कूड़ा आदि निकलकर, साफ हो जाय. उसको धान्याभ्रक कहते हैं. वही देहकी सिद्धिके अर्थ जानना ॥ ४० ॥

तथा च ।

अथवा बदरीक्काथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ।
मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते १४

भाषार्थ-अथवा अभ्रकको तपाकर बेरीके काढ़ेमें बुझावै. इसप्रकार बार २ बुझावै, फिर सुखाके हाथसे मर्दन करै तो धान्याभ्रकसे भी उत्तम अभ्रक हो जावै ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

धमेद्वज्राभ्रकं वह्नौ ततः क्षीरेण सेचयेत् ।
भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा मेघनादाम्लयोर्द्रवैः॥४२॥
भावयेदष्टयामं तद्धान्याभ्रं कारयेत्सुधीः ।

भाषार्थ–वज्राभ्रकको अग्निमें तपा २ कर गौके दुग्धमें बार २ बुझावै, फिर उसके वर्क भिन्न २ करके चौलाई और खटाईके द्रावमें ॥ ४२ ॥ आठ प्रहरतक भावना देवै तो धान्याभ्रक शुद्ध होवै. इसप्रकार बुद्धिमान् धान्याभ्रक करै ।

अभ्रकमारण ।

धान्याभ्रकस्य भागैकं द्वौ भागौ टंकणस्य च॥४३॥
पिष्ट्वा तदन्धमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत् ।
स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४४ ॥

भाषार्थ–धान्याभ्रक १ भाग, सुहागा २ भाग ॥ ४३ ॥ दोनों पीसकर, अंधमूषामें उसको रखकर, मुख बन्द कर दे फिर तेज अग्निसे पकावै, जब शीतल हो जावै तब उसका चूर्ण करके मात्राप्रमा-ा सर्व रोगोंमें देवै ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

धान्याभ्रकं दृढं मर्द्यमर्कक्षीरे दिनावधि ।
वेष्टयेद्वातुपत्रैश्च चक्राकारं तु कारयेत् ॥ ४५ ॥
कुंजराख्ये पुटे पाच्यं सप्तवारं पुनः पुनः ।
ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ ४६ ॥
म्रियते नात्र सन्देहो सर्वरोगेषु योजयेत् ।

भाषार्थ–धान्याभ्रकको लेकर, आकके दूधमें एक दिनतक खूब मर्दन करके, उसकी टिकिया चक्राकार बनावै और आकके पत्तोंसे लपेटै ॥ ४५ ॥ फिर गजपुटकी आँचमें फूँक देवै. इसप्रकार सातबार गजपुटमें फूँकै, अनन्तर बड़की जटाके काढ़ामें तद्वत् तीन पुट देवै ॥ ४६ ॥ तो अभ्रक मरजाता है इसमें सन्देह नहीं है. और वह अभ्रक सब रोगोंमें देवै ।

तथाऽन्यः प्रकारः ।

धान्याभ्रकं समादाय मुस्तक्वाथैः पुटत्रये॥४७॥
तद्वत्पुनर्नवाक्षीरैः कासमर्दरसैस्तथा ।
नागवल्लीरसैर्युक्तं सूर्यक्षीरैः पृथक् पृथक्॥४८॥
दिनेदिने मर्दयित्वा क्वाथैर्वटजटोद्भवैः ।
दत्त्वा पुटत्रयं पश्चात्त्रिपुटं मुशलीजलैः ॥४९॥
त्रिगोक्षुरकषायेण त्रिःपुटे वानरीरसैः ।
मोचाकन्दरसैः पाच्यं त्रिवारं कोकिलाक्षकैः ५०
रसैः पुटेत्ततो धेनुक्षीरादेकं पुटं मुहुः ।
दध्ना घृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा ॥५१॥
एकमेकं पुटं दद्यादभ्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ।
सर्वरोगहरं व्योम जायते योगवाहकम् ॥ ५२ ॥
कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं पुंस्त्वोपघातिनाम् ।
वृष्यमायुष्करं शुक्रवृद्धिसंतानकारकम् ॥५३॥

भाषार्थ–धान्याभ्रकको लाके मोथाके काढ़ामें ३ पुट देवै ॥ ४७ ॥ तैसेही पुनर्नवा (सांठी) के रसमें फिर कसौंदीके

रसमें, फिर पानके रसमें, अनंतर आकके रसमें पृथक् पृथक् ॥ ४८ ॥ एक २ दिन मर्दन करके बड़की जटाओंके काढ़ामें तीन पुट देकर फिर ३ पुट मूशलीके काढ़ामें देवै ॥ ४९ ॥ फिर ३ पुट गोखरूके काढ़ामें देके, वानरी (कौंच) के रसकी ३ तीन पुट देवै, फिर कदलीकंदके रसमें पचाय, तीनबार तालमखानाके ॥ ५० ॥ रसकी पुट देवै. अनन्तर गौके दुग्धमें एक पुट देवै, फिर दही, घी, शहत, तथा सपेद मिश्री ॥५१ ॥ इनकी एक २ पुट देवै, इसप्रकार इन सब पुटोंके देनेसे अभ्रकभस्म होता है. यह व्योम (अभ्रक) सम्पूर्ण रोगोंको हरता है और योगवाहक अर्थात् जैसे २ अनुपानका योग हो वैसे २ कार्यको करता है ॥ ५२ ॥ और स्त्रियोंके काममदको नाश करनेवाला तथा नपुंसकजनोंको हितकारी है, बल वीर्य और आयुको बढ़ानेवाला तथा संतानकारक ऐसा यह धान्याभ्रक है ॥ ५३ ॥

तथा च ।

दुग्धत्रयं कुमार्यम्बु गंगापात्रं नृमूत्रकम् ।
वटांकुरमजारक्तमेभिरभ्रं सुमर्दितम् ॥ ५४ ॥
शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत् ।
निश्चन्द्रकं भवेव्द्योम शुद्धदेहो रसायनम् ॥ ५५ ॥
निश्चन्द्रं मारितं व्योम रूपं वीर्यं दृढां तनुम् ।
कुरुते नाशयेन्मृत्युं जरारोगकदम्बकम् ॥ ५६ ॥

भाषार्थ–बड़, थूहर, आक, इनका दूध, घीग्वारका रस, नागरमोथा, मनुष्यका मूत्र, बड़की जटाओंका रस, बकरीका रक्त, इनमें अच्छे प्रकार मर्दन किया अभ्रक ॥ ५४ ॥ सौ पुट देवै तो पद्मराग (पुखराज) के समान भस्म हो जाती है और निश्चन्द्र कहिये चमकरहित अभ्रक हो जावै सो देहको शुद्धि करै और रसायन है ॥ ५५ ॥ तथा चमकरहित मारा अभ्रक रूप और वीर्यको बढ़ाता है, शरीरकी पुष्टि करता है, मृत्यु, बुढ़ापा और रोगोंका नाश करता है ॥ ५६ ॥

हरतालशोधन ।

अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत ।
वांतिस्फोटांगसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ५७ ॥
शुद्धः स्यात्तालकः स्विन्नः कूष्मांडसलिले ततः ।
चूर्णोदके पृथक् तैले भस्मीभूतो न दोषकृत॥५८ ॥
तालको हरते रोगान् कुष्ठमृत्युरुजादिकान् ।
संशुद्धः कांतिवीर्यं च कुरुते ह्यायुवर्धनम् ॥ ५९ ॥

भाषार्थ–विनशोधा हरताल आयुको घटाता है और कफ, वात तथा प्रमेहको करता है; वमन, हड़फूटन, और अंगसंकोच करै, इससे हरताल शोधन करै ॥ ५७ ॥ हरतालकी पोटलीको पेठेके रसमें रखकर, पचावै फिर चूनाके जलमें और तेलमें पृथक् २ दोलायंत्रद्वारा औटावै तो हरताल शुद्ध हो जाता है,और भस्म हुआ हरताल दोष नहीं करता है ॥ ५८ ॥ हरताल शुद्ध हुआ हो तो रोगोंको हरता है कोढ़ और मृत्युसरीखे रोगोंको हरता है तथा कांति, वीर्यको करता है और आयुको बढावै है५९

हरतालमारण ।

पलमेकं शुद्धतालं कौमारीरसमर्दितम् ।
शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा यामान्द्वादशकं पचेत् ॥ ६० ॥

स्वांगशीतं समादाय तालकं च मृतं भवेत् ।
गलत्कुष्ठं हरेच्चैव तालकं च न संशयः ॥ ६१ ॥

भाषार्थ-शुद्ध हरताल १ पलको घीग्वारके रसमें मर्दन करके, शरावसम्पुटमें धरकर, १२ प्रहरतक आंच देवै ॥ ६० ॥ जब स्वांगशीतल हो जाय तब उतार लेवै तो हरताल मरजावै. सो मेरा हुआ हरताल गलितकोढ़को निस्सन्देह नाश करता है ६१

मनःशिलाशोधन ।

अगस्तिपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् ।
शृंगबेररसैर्वापि विशुध्यति मनःशिला ॥ ६२ ॥
कटुः स्निग्धा शिला तिक्ता कफघ्नी लेखनी परा ।
भूतावेशामयं हन्ति कासश्वासहरा शुभा ॥६३ ॥

भाषार्थ-अगस्तके पत्तोंके रसकी अथवा अदरखके रसकी ७ भावना देनेसे मैनाशिल शुद्ध होता है ॥ ६२ ॥ मैनशिल चरपरी और चिकनी तथा कफको नाश करता है, लेखनी है, भूतबाधाको दूर करता है, कास (खांसी) और श्वासको हरनेवाली है ६३

खपरियाशोधन ।

खरमूत्रैर्नृमूत्रैश्च सप्ताहं रसकं पचेत् ।
दोलायंत्रेण संशोध्य ततः कार्येषु योजयेत॥६४॥

भाषार्थ-खपरियाको गदहाके वा मनुष्यके मूत्रसे सात दिन भावना देकर, दोलायंत्रसे शोध लेवै फिर सब कामोंमें लेवै॥६४॥

नीलाथोथाशोधन ।

ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणाद्द्विषक् ।
त्रिविधं पुटितं शुद्धं वांतिभ्रान्तिविवर्जितम् ६५

तुत्थकं कटु सक्षारं कषायं विशदं लघु ।
लेखनं भेदि चक्षुष्यं कंडूकृमिविषापहम् ॥ ६६॥

भाषार्थ-बिल्लीकी विष्ठाके समान नीलाथोथा लेके, शहत सोहागा मिलाय खरल करै फिर शरावसंपुटमें रखकर, फूंक देवै, तीन वार फूंकनेसे वमन और भ्रांतिसे रहित शुद्ध हो जाता है ॥ ६५ ॥ नीलाथोथा, चरपरा, खारी, कसेला, विशद, हलका, लेखन, भेदन, नेत्रोंको हितकारक, कंडू (खुजली), कीड़ा तथा विषको नाश करनेहारा है ॥ ६६ ॥

त्रिमलाशोधन ।

जंबीरस्य रसे स्विन्ना मेषशृंगीरसेऽथवा ।
रंभातोयेन वा पाच्यं घस्रं विमलशुद्धये ॥ ६७ ॥

भाषार्थ-जंभीरीके रसमें, वा मेढासिंगीके रसमें अथवा केलाके रसमें विमलाको शुद्ध करनेके अर्थ एक दिनभर पचावै ॥ ६७ ॥

सोनामाखीशोधन ।

सिन्धूद्भवस्य भागैकं त्रिभागं माक्षिकस्य च ।
कृत्वा तदायसे पात्रे लोहदर्व्या विचालयेत ॥६८॥
सिंदूराभं भवेद्यावत्तावन्मृद्वग्निना पचेत् ।
सभद्रं माक्षिकं विंद्यात सर्वयोगेषु योजयेत् ॥६९॥

भाषार्थ-सेंधालवण १ भाग, सोनामखी ३ भाग, लेके घोट करके कड़ाहीमें चढ़ाथ कलछीसे चलावै ॥ ६८ ॥ जबतक सिंदूरके समान होवै तबतक धीमी आंचसे पचावै सो उत्तम सोनामाखी जानिये. सब योगोंमें देवै ॥ ६९ ॥

अन्यच्च ।

माक्षिकस्य चतुर्थांशं दत्त्वा गन्धं विमर्दयेत् ।
उरुबूकस्य तैलेन ततः कार्या सुचाक्रिका ॥ ७० ॥
शरावसम्पुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
सिंदूराभं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ ७१ ॥
माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्षयकुष्ठनुत् ।
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम् ॥ ७२ ॥

भाषार्थ–सोनामाखीको लेके उससे चौथाई गंधक ले, दोनोंको मर्दन करै. अनंतर अंडीका तेल मिलाय, टिकिया बना लेवै ॥ ७० ॥ औंर शरावसंपुटमें धर, कपरौटी कर गजपुटकी आंचसे फूंक देवै तो सोनामाखी निस्संदेह सिंदूरके समान लाल भस्म होवै ॥ ७१ ॥ सोनामाखी तिक्त (कडुई) और मधुर है. प्रमेह, ववासीर, क्षयी, कोढ़, इन रोंगोंको नाश करती है, कफ, पित्तको हरता है, बलकारी है, योगवाही और रसायन है॥७२॥

कासीसशोधन ।

सकृद्भृंगांबुना स्विन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ।
कासीसं शीतलं स्निग्धं स्विन्नं नेत्ररुजापहम् ७३
पित्तापस्मारशमनं रसषड्गुणकारकम् ।

भाषार्थ–भंगराके रसमें एक दिन कसीसको पचावै, तो निर्मल शुद्ध हो जाता है, कसीस शीतल है, चिकना है, तर है, नेत्ररोगको हरता है ॥७३॥ और पित्त तथा अपस्मार (मृगी) को नाश करता है और पारेके समान गुण करता है ॥

कांतपाषाणशोधन ।

लवणानि तथा क्षारौ सौभांजनरसे क्षिपेत् ।
अम्लवर्गयुते चादौ दिनमर्धं विभावयेत् ॥७४॥
तद्द्रवैर्दोलिकायंत्रे दिवसं पाचयेत्सुधीः ।
कांतपाषाणशुद्धौ तु रसकर्म समाचरेत् ॥ ७५ ॥

भाषार्थ–लवण तथा खारको सहजनेके रसमें डालके खटाईसमेत कांतपाषाण मिलाय, आधे दिनपर्यन्त भावना देवै॥७४॥ फिर खटाईके द्रावसे दोलायंत्रद्वारा एक दिन बुद्धिमान् पचावे तो कांतपाषाण शुद्ध होजावे फिर रसकर्ममें इसको वर्तै ॥ ७५ ॥

वराटिकाशोधन ।

पीताभा ग्रंथिलाः पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिकाः ।
सार्धनिष्कभराः श्रेष्ठा निष्कभाराश्च मध्यमाः॥७६॥
पादोननिष्कभाराश्च कनिष्ठाः परिकीर्तिताः ।
रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टास्ताश्चराचरसंज्ञकाः ॥ ७७ ॥
वराटा कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयात् ।
परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी ॥ ७८ ॥
कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ।
रसेंद्रजारणे प्रोक्ता अतीसारेषु शस्यते ॥ ७९ ॥

भाषार्थ–पीलेरंगकी, पीठपर गांठदार, लंबी, गोल, छेमासे प्रमाण तौलमें ऐसी कौड़ी श्रेष्ठ होती है, ४ मासेकी मध्यम ॥ ७६ ॥ और तीन मासेकी कनिष्ठ कही है, फिर उस कौडीके चर, अचर, संज्ञा करके २ भेद हैं ॥ ७७ ॥ कौड़ि-

योंको लेके कांजीमें १ प्रहर औटानेसे शुद्ध हो जाती हैं. कौड़ी परिणाममें प्रथम शूलको नाश करनेवाली है और संग्रहणी, तथा क्षयको नाश करनेवाली है ॥ ७८ ॥ तथा कौड़ी तीखी है, गरम है, दीपनी है, बलको बढ़ाती है, नेत्रोंको हितकारी तथा वातकफको नाश करती है, वह रसेंद्र (पारा) के जारणमें उपयोगी कही है और अतीसारमें हितकारक है ॥ ७९ ॥

दरदशुद्धि ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥८०॥
तिक्तोष्णं हिंगुलं दिव्यं रसगंधकसंभवम् ।
मेहकुष्ठहरं रुच्यं बल्यं मेधाग्निदीपनम् ॥ ८१ ॥

भाषार्थ–हींगलूको लेके भेड़के दूधसे और अम्लवर्गसे सात २ बार यत्नसे भावना देवै तो निश्चय हिंगलूकी शुद्धि हो जाती है ॥ ८० ॥ यह तिक्त (कटु) है, गरम है, तथा पारा और गंधकसे उत्पन्न हिंगलू, प्रमेह और कोढ़को हरता है, रोचक है, बलको बढ़ानेवाला है, बुद्धिको बढ़ानेवाला और जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला है ॥ ८१ ॥

शिलाजीतशोधन ।

गोदुग्धत्रिफलाभृंगद्रवैः पिष्टं शिलाजतु ।
दिनैकं लोहजे पात्रे शुद्धिमायात्यसंशयम् ॥८२॥
शिलाजतु भवेत्तिक्तं कटूष्णं च रसायनम् ।
क्षयशोषोदरार्शांसि हन्ति बस्तिरुजो जयेत् ॥८३॥

भाषार्थ–गौका दूध, त्रिफलका रस, भंगराका रस, इनसे शिलाजीतको पीसकर फिर एक दिन लोहेके पात्रमें धर राखै तो निस्संदेह शिलाजीत शुद्ध हो जाता है ॥ ८२ ॥ यह शिलाजीत तिक्त है, कटु है, गरम है, रसायन है और क्षयी, सूजन, उदर रोग, ववासीर इन रोगोंको नाश करता है तथा पेडूके रोगोंको नाश करता है ॥ ८३ ॥

उपरसशोधन ।

सौवीरं टंकणं शंखं कंकुष्ठं गैरिकं तथा ।
एते वराटवच्छोध्या भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ ८५ ॥

भाषार्थ–सौवीर (सुरमा) सुहागा, शंख, मुरदाशंख, तथा गेरू, इन सबको कौडीकी रीतिसे शोधै तो निर्दोष शुद्ध हो जावै ॥ ८४

भूनागसत्त्व ।

सद्यो भूनागमादाय चारयेच्छिखिनं बुधः ।
अथवा कुकुटं वीरं कृत्वा मन्दिरमाश्रितम् ॥ ८५ ॥
मलं मूत्रं गृहीत्वा च सन्त्यज्य प्रथमांशकम् ।
आलोडय क्षीरमध्वाज्यैर्धमेत्सत्त्वार्थमादरात् ॥ ८६ ॥
मुंचन्ति ताम्रवत्सत्त्वं तन्मुद्राजलपानतः ।
नश्यन्ति जंगमविषाण्यशेषाणि न संशयः ॥ ८७ ॥

भाषार्थ–तुरतके केचुयेलाकरके मोर अथवा मुर्गाको पेटभर खिला देवै फिर यत्नपूर्वक उसको घरमें वा पिंजरामें बंदकर राखै ॥ ८५ ॥ और उसका मल मूत्र पहला अंश छोड़कर सब मलमूत्र लेके दूध, शहत, घी, इनमें मिलाकर सत्वके अर्थ धोंकनीसे धोंके ॥ ८६ ॥ तो तांबेकासा सत्त्व निकलता है. उसकी

अंगूठी बना लेवै. उसके पहिरनेसे और उसके धौंकनेका जल पीनीसे निस्संदेह सब प्रकारके जंगमविष नाश हो जाते हैं ॥८७॥

वैक्रान्तसत्त्व ।

वैक्रान्तं वज्रकंदं च पेषयेद्वज्रवारिणा ।
माहिषं नवनीतं च सैक्षाद्रं पिंडितं ततः ॥ ८८ ॥
शोषयित्वा धमेत्सत्त्वमिन्द्रगोपसमं भवेत् ।

भाषार्थ–वैक्रांत और थूहरकी जडको दूधमें घोटकर, भैंस का माखन और शहत डालकर पिंडी (गोली) बनावे फिर ॥ ८८ ॥ सुखा करके तेज अग्निसे धौंकै तो वीरबहोटीके समान रक्तवर्ण सत्त्व होवै ॥

अभ्रकसत्त्व ।

भावितं चूर्णितं त्वभ्रं दिनैकं कांजिकेन च ।
रम्भासूरणजैर्नीरैर्मूलकोत्थैश्च मेलयेत् ॥ ८९ ॥
तुर्यांशं टंकणेनेदं क्षुद्रमत्स्यैः समं पुनः ।
महिषीमलसंमिश्रं विधायास्याथ गोलकम्॥९०॥
खराग्निना धमेद्गाढं सत्वं मुंचाति कांतिमत् ।
सत्त्वसेवी वयःस्तम्भं कृतशुद्धिर्लभेत्सुधीः॥९१॥

भाषार्थ–अभ्रककी भस्मको लेके १ एक दिन कांजीमें भावना देवै फिर केलाकी जड़ और जिमीकंदके रसकी भावना देवै ॥८९॥ अनंतर उससे चौथाई सुहागा और छोटी २ मछली मिलाय सबको भैंसके गोबरमें मिलावै और गोला बना लेवै९०॥ उपरांत तीक्ष्णसे धौंकै तो चमक सत्त्व निकलता है, उस सत्त्वको सेवन करै तो आयुको बढ़ावै. और शरीर शुद्ध होवै ॥ ९१ ॥

अभ्रकद्रावण ।

अगस्तिपुष्पनिर्यासमर्दितं सूरणोदरे ।
गोष्ठभूस्थं नभो मासं जायते जलसन्निभम् ॥९२॥

भाषार्थ–अगस्तके फूलके रसमें अभ्रकको घोटकर, जिमीकंदके भीतर गोली बनाकर भर देवै. अनंतर गोशालाकी पृथिवीमें १ मासपर्यंत गाड़ दे फिर निकालै तो अभ्रक जलसमान पतला हो जाता है ॥ ९२ ॥

अथ सर्वसत्त्वनिपातनाविधि ।

गुडं पुरस्तथा लाक्षा पिण्याकं टंकणं तथा ।
ऊर्णा सर्जरसं चैव क्षुद्रमीनसमन्वितम् ॥ ९३ ॥
एतत्सर्वं तु संचूर्ण्य छागीदुग्धेन पिंडिकाम् ।
कृत्वा ध्माता खरांगारैः सर्वसत्त्वान्निपातयेत् ॥९४॥
पाषाणमृत्तिकादीनि सर्वलोहगतानि च ।
अन्यानि यान्यसाध्यानि व्योमसत्वस्य का कथा९५
यत्रोपरसभागोऽस्ति रसे तत्सत्त्वयोजनम् ।
कर्तव्यं तद्गुणाधिक्यं रसज्ञत्वं यदीच्छसि ॥ ९६ ॥

भाषार्थ–गुड, गूगल, लाख, खली, सोहागा, राल, छोटी मछली ॥ ९६ ॥ इन सबको मिलाय चूर्ण कर बकरीके दूधमें गोली बनावै फिर सुखाय बंधनालसे धौंकनेपर सब सत्त्व निकल आता है ॥ ९४ ॥ ऐसेही पत्थर, मिट्टी, लोहग तधातु, तथा अन्य भी जिसका सत्त्व निकालना हो उसका सत्त्व निकल आता है, अभ्रकका सत्त्व निकलना तो कुछ बातही नहीं ॥ ९५ ॥ जहां किसी उपरसको लेना है वहां पारेमें उसका

सत्त्व डालकर देवै तो अधिक गुण करता है. जो रस जाननेकी इच्छा हो तो ऐसा करना ॥ ९६ ॥

माणिशोधन ।

शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयंत्या मौक्तिकं तथा ।
विद्रुमं क्षारवर्गेण तार्क्ष्यं गोदुग्धतस्तथा ॥ ९७ ॥
पुष्परागं च संधानैः कुलत्थक्काथसंयुतैः ।
तंदुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च ॥ ९८ ॥
रोचनाभिश्च गोमेदं वैडूर्यं त्रिफलाजलैः ।

भाषार्थ–माणिक्य अम्लवर्गसे शुद्ध हो जाता है. तथा मोती अरणीके रससे, मूंगा क्षारवर्गसे, पन्ना गौके दूधसे ॥९७॥ सेंधालवण और कुलथीके काढ़ांसे पुखराज और चौलाईके रससे हीरा, तथा नीलम नीलके रससे ॥ ९८ ॥ गोमेद गोरोचनके जलसे, वैडूर्य त्रिफलाके जलकरके, ये सब दोलायंत्रद्वारा शुद्ध होते हैं ॥

मणिमारण ।

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलागन्धकतालकैः ॥ ९९ ॥
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ।
मुक्ताविद्रुमवज्रेंद्रवैडूर्यस्फटिकादिकम् ॥ १०० ॥
मणिरत्नं स्वरं शीतं कषायं स्वादु लेखनम् ।
चक्षुष्यं धारणात्तु पापालक्ष्मीविषापहम् ॥१०१॥

भाषार्थ–बड़हरके रसमें मैनशिल, गंधक और हरतालको पीसकर ॥ ९९ ॥ उसमें आठ पुट देनेसे हीराके विना अन्य सम्पूर्ण रत्न मरजाते हैं. निश्चय करके मोती, मुंगा, हीरा, वैडूर्य, स्फटिक आदि ॥ १०० ॥ माणि और रत्न दस्तावर, शीतल, कसैले और मधुर तथा लेखन है, नेत्रोंको हित है, धारण करनेसे पाप और अलक्ष्मी, तथा विषको नाश करता है ॥ १०१ ॥

इति श्रीमन्मिश्रकुलाग्रगण्यशोभारामात्मजपंडितनारायणप्रसादमुकुन्दरामकृतायां रसमंजरीभाषायामुपरसशोधनमारणकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥ ४ ॥

विषलक्षण ।

अष्टादशविधं ज्ञेयं कन्दजं परिकीर्तितम् ।
कालकूटं मयूराख्यं बिन्दुकं सक्तुकं तथा ॥१॥
वालुकं वत्सनाभं च शंखनाभं सुमंगलम् ।
शृंगीमर्कटकं मुस्तं कर्दमं पुष्करं शिखी ॥ २॥
हारिद्रं हरितं चक्रं विषं हालाहलाह्वयम् ।

भाषार्थ–कन्दजविष अठारह प्रकारका जानिये-१ कालकूट,२ मयूर, ३ बिन्दुक, ४ सक्तुक ॥ १ ॥ ५ वालुक, ६ वत्सनाभ, ७ शंखनाभ, ८ सुमंगल, ९ शृंगी, १० मर्कट, ११ मुस्त, १२ कर्दम, १३ पुष्कर, १४ शिखी, ॥ २ ॥ १५ हारिद्र, १६ हरित,१७ चक्र, १८ हालाहल विषके ये १८ प्रकार हैं ॥

तथा च ।

घनं रूक्षं च कठिनं भिन्नाजनसमप्रभम् ।
कन्दाकारं समाख्यातं कालकूटं महाविषम् ॥३॥
मयूराभं मयूराख्यं बिन्दुवद्बिन्दुकं स्मृतम् ।
चित्रमुत्पलकन्दाभं सक्तुकं सक्तुवद्भवेत् ॥ ४ ॥

वालुकं वालुकाकारं वत्सनाभं तु पांडुरम् ।
शंखनाभं शंखवर्णं शुभ्रवर्णं सुमंगलम् ॥ ५ ॥
घनं गुरुं च निबिडं शृंगाकारं तु शृंगिकम् ।
मर्कटं कपिवर्णाभं मुस्ताकारं तु मुस्तकम् ॥६॥

भाषार्थ–अब विषोंका स्वरूप कहते हैं–घना, सूखा, कठोर, सुरमाके सदृश नीला, कन्दके आकार हो, उसको कालकूट महाविष कहते हैं ॥ ३ ॥ तथा मोरके रंगसमान मयूरविष होता है, बिंदुसदृश बिंदु कहा है, चित्रवर्ण, कमलकंदके समान तथा सत्तूके सदृश हो वह सक्तुक होता है ॥४ ॥ वालुक वालुके आकार होता है और पीला वत्सनाभ होता है, शंखनाभ शंखके रंगका होता है और श्वेतरंगका सुमंगल ॥ ५ ॥ घना, भारी और कड़ा तथा सींगके आकार हो, वह शृंगी और मर्कट विष बन्दरके रंगवाला होता है तथा नागरमोथाके आकार मुस्तक होता है ॥ ६ ॥

कर्दमं कर्दमाकारं सितपीतं तथैव च ।
पुष्करं पुष्कराकारं शिखी शिखिशिखाप्रभम्॥ ७ ॥
हारिद्रकं हरिद्राभं हरितं हरितं स्मृतम् ।
चक्राकारं भवेच्चक्रं नीलवर्णं हलाहलम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मणः पांडुरस्तत्र क्षत्रियो रक्तवर्णकः ।
वैश्यः पीतप्रभः शूद्रः कृष्णाभो निन्दितः स्मृतः॥९॥
ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे ।
वैश्यो व्याधिषु सर्वेषु सर्पदष्टाय शूद्रकम् ॥ १०॥

भाषार्थ–कर्दमके आकार सफेद पीला हो उसे कर्दम कहते हैं, तथा नीले कमलके रंगका पुष्कर, और मोरकी चोटीके रंग

शिखी ॥ ७ ॥ हलदीके रंगसमान हारिद्रक, हरेरंगका हरित, चक्रके आकार चक्र, नीलेरंगका हालाहल होता है ॥ ८ ॥ और पांडुर (श्वेत, पीतवर्ण) ब्राह्मण, लालवर्ण क्षत्री, पीले रंगका वैश्य, काले रंगका शूद्र, सो निंदित कहा है ॥ ९ ॥ ब्राह्मण सामान्य रोगमें दिया जाता है, विषभक्षणमें क्षत्रिय दिया जाता है, व्याधिमें वैश्य और सर्पसे काटे हुएको शूद्र दिया जाता है ॥१०॥

विषमारण ।

समटंकणकं पिष्टं तद्विषं मृतमुच्यते ।
योजयेत्सर्वरोगेषु न विकारं करोति हि ॥ ११ ॥

भाषार्थ–विष और उसके बराबर सोहागाको लेके, घोटै तो विष मरजाता है; सो सब रोगोंमें देवै. यह विष विकार नहीं करता है ॥ ११ ॥

विषभागांश्च कणवत्स्थूलान् कृत्वा तु भाजने ।
तत्र गोमूत्रकं क्षिप्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥१२॥
शोषयेत्त्रिदिनादूर्ध्वं कृत्वा तीव्रातपे ततः ।
प्रयोगेषु प्रयुंजीत भागमानेन तद्विषम् ॥ १३॥

भाषार्थ–विषको लेके छोटे २ टुकड़ा करै और मिट्टीके पात्रमें रख, उसमें गौका मूत्र डालै नित्य ताजा गोमूत्र डाल दिया करै ॥ १२ ॥ तेज धूपमें गोमूत्र सुखावै.तीन दिनके उपरांत उठाकर, रख छोड़ै और इस विषको मात्रानुसार सब प्रयोगोंमें देवै॥१२॥

विषसेवनप्रकार ।

विषस्य मारणं प्रोक्तमथ सेवां प्रवच्म्यहम् ।
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु वर्षासु च प्रदापयेत् ॥ १४ ॥

चतुर्मासे हरेद्रोगान् कुष्ठलूतादिकानपि ।
प्रथमे सर्षपी मात्रा द्वितीये सर्षपद्वयम् ॥ १५ ॥
तृतीये च चतुर्थे च पंचमे दिवसे तथा ।
षष्ठे च सप्तमे चैव क्रमवृद्ध्या विवर्धयेत् ॥ १६ ॥

भाषार्थ–यह विषका मारण कहा. अब विषसेवन प्रकार कहतां हूँ. शरद्, ग्रीष्म, वसन्त, और वर्षा, इन ऋतुओंमें सेवन करै ॥ १४ ॥ चार मास विष सेवन करनेसे कोढ़ और लूतादि रोगोंको नाश करै. पहले दिवस सरसोंके बराबर मात्रा ले, दूसरे दिवस दो सरसौं मात्रा लेवै ॥ १५ ॥ तीसरे दिन ३ सरसौं, चौथे दिन ४ सरसौं, पांचवें दिन५ सरसौं, छठे दिन ६ सरसौं, सातवें दिन ७ सरसौं, इस क्रमवृद्धिसे बढ़ावै ॥ १६ ॥

सप्तसर्षपमात्रेण प्रथमं सप्तकं भवेत् ।
क्रमहानिं तथाक्षेपं द्वितीयं सप्तकं विषम् ॥१७॥
यवमात्रं विषं देयं तृतीये सप्तके क्रमात् ।
वृद्ध्यां हान्यां च दातव्यं चतुर्थे सप्तके तथा१८॥

भाषार्थ–सातवें दिवस७सरसोंके बराबर मात्रा खावै, दूसरे सप्ताहमें प्रतिदिन ७ सरसों खाता रहै फिर दो सप्ताहके उपरांत अर्थात् पंद्रहवें दिनसे क्रमपूर्वक घटावै॥१७॥तीसरे सप्ताहमें जौके प्रमाण मात्रा विषकी क्रमसे देवै, एक जौप्रमाण नित्य बढ़ाता जाय फिर चौथे सप्ताहमें घटावै,एक जौभरतक मात्रा आ जावै॥१८॥

यवमात्रं ददेत्स्वस्थो गुंजामात्रं तु कुष्ठवान् ।
अशीतिर्यस्य वर्षाणि वसुवर्षाणि यस्य वा ॥१९॥
विषं तस्मै न दातव्यं दत्तं चेद्दोषकारकम् ।

ददेद्वै सर्वरोगेषु घृताशिनि हिताशिनि ॥ २० ॥
क्षीराशनं प्रयोक्तव्यं रसायनरते नरे ।
ब्रह्मचर्यप्रधानं हि विषकल्पे तदाचरेत ।
पथ्ये स्वस्थमना भूत्वा तदा सिद्धिर्न संशयः ॥२१॥

भाषार्थ–आरोग्य पुरुषको जौ बराबर मात्रा देवै, कोढ़ीको १ रत्तीप्रमाण देवै और जिसकी आयु (उमर) अस्सी वर्ष वा आठ वर्षकी हो ॥ १९ ॥ उसको यह विष नहीं देवै. जो देवै तो विकार उत्पन्न करता है.सब रोगोंमें इसको देवै. इसके सेवन करनेवालाको घी और दूध हितकारी है ॥२०॥ और रसायनरत मनुष्य दुग्धका सेवन करै और ब्रह्मचर्यसे रहै, पथ्यसे रहै, स्वास्थ्य (सावधान) चित्तसे रहै तो निस्सन्देह सिद्धि होवै॥२१॥

विषसेषनमें दोष ।

मात्राधिकं यदा मर्त्यः प्रमादाद्भक्षयेद्विषम् ।
अष्टौ वेगास्तदा तस्य जायंते नात्र संशयः॥२२॥

भाषार्थ–जो मनुष्य विषकी अधिक मात्रा भूलकर खाजावै उसकें ८ वेग उत्पन्न हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ २२ ॥

प्रथमे वेग उद्वेगो द्वितीये वेपथुर्भवेत् ।
तृतीये घोरदाहः स्याच्चतुर्थे पतनं भुवि ॥ २३ ॥
फेनं तु पंचमे वेगे षष्ठे विकलता भवेत ।
जडता सप्तमे वेगे मरणं चाष्टमे भवेत ॥ २४ ॥

भाषार्थ–प्रथम वेगमें उद्वेग (घबराहट), दूसरेमें वेपथु (शरीरकंप), तीसरेमें घोर दाह (बहुत जलन), चौथेमें पृथिवीपर गिरना ॥ २३ ॥ पांचवें वेगमें मुखसे फेना आना,

छठेमें विकलता, सातवेंमें जडता (ज्ञानशून्य), आठवेंमें मरण, ये आठ वेग अधिक विष खानेसे होते हैं ॥ २४ ॥

विषवेगांश्च विज्ञात्वा मंत्रतंत्रैर्विनाशयेत् ।
साधकानां हितार्थाय सदाशिवमुखोद्गतः ॥२५॥
सर्वविषविनाशार्थं प्रोच्यते मंत्र उत्तमः ।

भाषार्थ–विषके वेगोंको अच्छे प्रकार जानकर, मंत्रतंत्रोंसे उन वेगोंको नाश करै. सो साधकोंके हितके अर्थ श्रीसदाशिवजीके मुखसे उत्पन्न सब प्रकारके विषोंके नाश करनेके अर्थ उत्तम मंत्र कहा जाता है ॥ २५ ॥

अथ मंत्र ।

ॐ नमो भगवते घोणेयन् हर २ दर २
पर २ तर २ वर २ वध २ वः २ लः २ र
२ लां ३ हरलां हर २ भवसर रां २ क्षीं २
हीं २ भगवति श्री घोणेयन् सं ३ वर २
रसः ध वर २ खंडच रूप हीं वर विहंगम
मानुष योगक्षेमं वद शेषारे २ षषः स्वाहा ॥१॥

विषनाशनोपाय ।

विद्यैषा स्मृतिमात्रेण नश्यन्ते गुत्थकादयः ।
सप्तजप्तेन तोयेन प्रोक्षयेत् कालचोदितम् ॥२६॥

भाषार्थ–इस मंत्रसे स्मरणमात्रसे गुत्थकादिकका नाश हो जाता है. इस मंत्रको सात वार जप कर, जलसे छीटा देवै तो विष उतर जावै ॥ २६ ॥

उत्तिष्ठति स वेगेन शिखाबंधेन धारयेत् ।
निमंत्रितेन शंखेन दुंदुभिर्वादयेद्यदि ॥ २७ ॥

भाषार्थ–वेगसे उठेहुएकी चोटी पकड़के, मंत्र पढ़ता जाय और शंख और दुंदुभी बजावै तो ॥ २७ ॥

देशांतरे शरीरेऽपि निर्विषं कुरुते क्षणात् ।
विषं दृष्ट्वा यदा मंत्री मंत्रमावर्तयेत्सकृत् ।
याति निर्विषतां दृष्ट्वा अपि मारशतानि च २८

भाषार्थ–देशांतरमें स्थित मनुष्य शरीरमेंसे क्षणमात्रमें विषको यह मंत्र दूर करै, मंत्रको जाननेवाला जो विषको देखके एकही वार मंत्र पढ़ै तो शीघ्रही विष उतर जाता है, जो सौभी मारनेवाले होवैं ॥ २८ ॥

गोघृतपानाद्धरते विविधं गरलं च वंध्यकर्कोटी ।
सकलविषदोषशमनी त्रिशूलिका सुरभिजिह्वाच २९

भाषार्थ–वंध्यकर्कोटीको लेके, गौके घीकेसाथ पान करै तो विविध प्रकारके विषदोषोंको हरता है तथा त्रिशूली और गोभी भी समस्त विषदोषोंको शमन करनेवाली है ॥ २९ ॥

तुत्थेन टंकणेनैव म्रियते पेषणाद्विषम् ।
अतिमात्रं यदा भुंक्ते तदाज्यं टंकणं पिबेत् ॥३०॥
न दातव्यं न भोक्तव्यं विसंवादे कदाचन ।
आचार्येण तु भोक्तव्यं शिष्यप्रत्ययकारणम् ३१॥

भाषार्थ–नीलाथोथा और सुहागासे विषको पीसै तो विष मरजाता है. जो विषकी अधिक मात्रा खा लेवै तो घी सुहागा पीवै ॥ ३० ॥ विवादसे न किसीको विष देना चाहिये न खाना

चाहिये परंतु आचार्य शिष्यको प्रतीत करानेके अर्थ प्रथम स्वयं भक्षण करना चाहिये, ऐसा सिद्धान्त है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमन्मिश्रकुलाग्रगण्यशोभारामात्मजपंडितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतरसमंजरीभाषाटीकायां विषलक्षणसेवापरिहारकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवां अध्याय ॥ ५ ॥

अष्टधातुशोधनमारण ।

हेमादिलोहकिट्टान्तं शोधनं मारणं गुणम् ।
वक्ष्ये सप्रत्ययं योगान्यथा गुरुमुखोत्थितान् ॥ १ ॥
तैले तक्रे गवां मूत्रे क्वाथे कौलत्थकांजिके ।
तप्तं तप्तं निर्षिचेत तत्तद्रावे तु सप्तधा ॥ २ ॥
स्वर्णादिलोहपर्यन्तं शुद्धिर्भवति निश्चितम् ।

भाषार्थ-सुवर्णको आदि लेके, लोह और कीटीपर्यन्तका शोधन मारण और गुणश्रेष्ठ योगोंसहित जैसा गुरुके मुखसे सुना वैसाही वर्णन करताहूँ ॥ १ ॥ तेल, मठा और गौके मूत्रमें तथा कुलथीके काढ़ा व कांजीमें सुवर्णादिको तपाय २ करके बुझावै. एवं सात वार बुझावै ॥ २ ॥ तो सुवर्ण आदि लोहपर्यंत धातुओंकी शुद्धि निश्चय होती है ॥

पृथक्पृथक्शोधनप्रकार ।

शोधनं मारणं चैव कथ्यते च मयाधुना ॥ ३ ॥
मृत्तिका मातुलुंगाम्लैः पंचवासरभाविता ।
सभस्मलवणा हेम शोधयेत्पुटपाकवत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ-अब धातुओंका शोधन और मारण हमकरके कहा जाता है ॥३॥ पांच वार बिजौराके रसकी भावना दी हुई मिट्टी और भस्म तथा लवणसे सुवर्णको पुटपाकके सदृश शोधनकरै॥४॥

सुवर्णशोधन ।

शुद्धसूतसमं हेम खल्वे कुर्याच्च गोलकम् ।
अधोर्ध्वं गन्धकं दत्त्वा सर्वं तुल्यं निरुध्य च॥५॥
त्रिंशद्वनोपलैर्देयं पुटान्येवं चतुर्दश ।
निरुद्धं जायते भस्म गंधो देयः पुनः पुनः॥६॥

भाषार्थ-शुद्ध पारा और उसके बराबर सुवर्ण लेके खरलमें घोटकर, गोली बनावै फिर उसको संपुटमें धर, नीचे ऊपर गंधक डालकर, मुख बंद करके, कपरौटी करै ॥५॥ अनन्तर ३० अरने उपलोंकी आंच देवै. इसप्रकार १४ पुट देनेसे सुवर्णकी निरुत्थ भस्म हो जाती है; परंतु वार २ गन्धक डालता रहै ॥ ६ ॥

तथान्यप्रकार ।

कृत्वा कंटकवेध्यानि स्वर्णपत्राणि लेपयेत् ।
लुंगांबुभस्मसूतेन म्रियते दशभिः पुटैः ॥ ७ ॥

भाषार्थ-सोनेके कंटकवेधी पत्र बनाकरके बिजौरा नींबूका रस और पारेकी भस्मसे लेपै, फिर गजपुटकी आंच देवै. दस पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म हो जाती है ॥ ७ ॥

रसस्य भस्मना वाथ रसैर्वा लेपयेद्दलम् ।
हिंगुहिंगुलसिन्दूरैः शिलासाम्येन लेपयेत ॥ ८ ॥
संमर्द्य काचनद्रावैर्दिनं कृत्वाथ गोलकम् ।

तं भांडस्य तले धृत्वा भस्मना पूरयेद्दृढम् ॥ ९ ॥
अग्निं प्रज्वालयेद्गाढं द्विनिशं स्वांगशीतलम् ।
उद्धृत्य सावशेषं च पुनर्देयं पुटत्रयम् ॥ १० ॥
अनेन विधिना स्वर्णं निरुत्थं जायते मतिम् ।
एतद्रसायनं बल्यं वृष्यं शीतं क्षयादिहृत् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—सुवर्णके कंटकवेधी पत्रोंको पारेकी भस्म वा पारेसे लेप करै. हींग, हिंगुल, सिंदूर और मैनशिल यह बराबर २ लेके उसपर लेपै ॥ ८ ॥ फिर कचनारके रसमें दिनभर मर्दन करके, गोला बना लेवै और उस गोलेको पात्रमें भीतर धरकर, खूब राख भर देवै ॥ ९ ॥ और उसके तले दो दिनरात खूब आग जला देवै. जब स्वांगशीतल हो जावै तब उतार लेवै. जो कच्चा रह जाय उसको फिर तीन पुट देके, आँच देवै ॥ १० ॥ इस विधिसे सुवर्ण निरुत्थ भस्म हो जाता है. यह सुवर्णभस्म रसायन है, बलकारी और पुष्टि करनेवाली है तथा शीतल है, क्षयादि रोगोंको हरती है ॥ ११ ॥

अन्यच्च ।

गालितस्य सुवर्णस्व षोडशांशेन सीसकम् ।
योजयित्वा समुद्धृत्य निम्बुनीरेण मर्दयेत् ॥१२ ॥
तद्गोलकसमं गन्धं चूर्णं दद्यादधोपरि ।
शरावसंपुटे धृत्वा पुटेद्विंशद्वनोपलैः ॥ १३ ॥
एवं मुनिपुटैर्हेम नोत्थानं लभते पुनः ।

भाषार्थ—सुवर्णको गलाय, उससे सोलवां हिस्सा सीसा मिलाके निकाल लेवै फिर नींबूके रससें मर्दन करै ॥ १२ ॥ और गोला बनाय, उसके बराबर गन्धकका चूर्ण नीचे ऊपर

लगावै फिर सरावसम्पुटमें धरकर, बीस अरने उपलोंकी आंच देवै ॥ १३ ॥ ऐसेही सात पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म ऐसी हो जाती है कि फिर नहीं उठती ॥

तथा च ।

माक्षिकं नागचूर्णं च पिष्टमर्करसे पुनः ॥१४॥
हेमपत्रं च तेनैव म्रियते क्षणमात्रतः ।
कषायतिक्तमधुरं सुवर्णं गुरु लेखनम् ॥ १५ ॥
वृष्यं रसायनं बल्यं चक्षुष्यं कांतिदं शुचि ।
आयुर्मेदोवयःस्थैर्यं वाग्विशुद्धिस्मृतिप्रदम् ॥१६॥
क्षयोन्मादगदार्तानां शयनं परमुच्यते ।

भाषार्थ—सोनामाखी और सीसेके चूर्णको आकके दूधमें पीस लेवै ॥ १४ ॥ फिर उसको सुवर्णके कंटकवेधी पत्रोंपर लेपै और दो सकोरोंके सम्पुटमें धरकर, फूंकदे तो क्षणमात्रमें सुवर्ण मरजाता है. यह सुवर्णकी भस्म कसैली है, चरपरी है, मधुर और भारी है, लेखन है ॥ १५ ॥ पुष्टिकारक, रसायन, और बलकारक है, नेत्रोंको हित तथा कांति देवै है, और आयु, मेदा, अवस्थाको स्थिर करता है, वाणीको शुद्धि करै, स्मरणशक्तिको बढ़ाता है ॥ १६ ॥ क्षयी, उन्मादरोगयुक्त मनुष्योंको सुखपूर्वक नींद लाता है ।

तार (चाँदी) शोधन।

भागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिमिच्छता ॥ १७ ॥
तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
मर्द्यं जम्बीरजैर्द्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ॥ १८ ॥

रुद्ध्वा त्रिभिः पुटैः पाच्यं पंचविंशद्वनोपलैः ।
म्रियते नाऽत्र सन्देहो गन्धो देयः पुनः पुनः १९

भाषार्थ–चांदीको शुद्ध करनेकी इच्छावाला मनुष्य ओंगाके साथ गलानेसे चांदी शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥ तथा चांदीके पत्र ४ भाग, शुद्ध हरताल १ भाग लेके जंभीरीके रसमें मर्दन करके, चांदीके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप देवै ॥१८॥ फिर सरावसम्पुटमें धरकर, पच्चीस अरने उपलोंकी आंचसे पकावै, एवं तीन पुट देनेसे निस्सन्देह चांदी मरजाती है, परन्तु गंधक बार २ डालता रहै ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

स्वर्णमाक्षिकगन्धस्य समभागं तु कारयेत् ।
अर्कक्षीरेण संपिष्टं तारपत्रं प्रलिप्य च ॥ २० ॥
पुटेन जारयेत्तारं मृतो भवति निश्चितम् ।
विधाय पिष्टिं सूतेन रजतस्याऽथ मेलयेत् ॥ २१ ॥
तालगंधं समं पश्चान्मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ।
द्वित्रैः पुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेवं रसादिषु ॥ २२ ॥

भाषार्थ–सोनामाखी, गंधक, यह दोनौं समान भाग लेवै और आकके दूधमें पीसकर, चांदीके पत्रोंपर लेपै, फिर ॥२०॥ दो सकोरोंके संपुटमें रखकर फूंक देवै तो निश्चय चांदी भस्म हो जाती है, दूसरी विधि यह है कि पारा और चांदी बराबर मिलाय घोट लेवै ॥ २१ ॥ फिर हरताल और गंधक बराबर २ लेकर, नींबूके रससे सबको मर्दन करै. अनन्तर दो तीन पुटकी आंचसे भस्म होवै सो रसादिकोंमें योजित करै ॥ २२ ॥

तार (चाँदी) भस्मगुण ।

शीतं कषायं मधुरमम्लं वातप्रकोपजित् ।
दीपनं बालकृत्स्निग्धं गूढाजीर्णविनाशनम् ॥२३॥
आयुष्यं दीर्घरोगघ्नं रजतं लेखनं परम् ।

भाषार्थ–रजत कहिये चांदीकी भस्म शीतल है, कसैली है, मधुर और खट्टी है, वातविकारको जीतता है, दीपन है, बलकारी और चिकनी है, गूढ अजीर्णको नाश करता है ॥२३॥ आयुको बढ़ाता है, बहुत बड़े रोगका नाश करता है, और लेखन है।

ताम्रशोधनकी आवश्यकता ।

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते ॥ २४ ॥
एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ।
भ्रमो मूर्च्छा विदाहश्च स्वेदक्लेदनवांतयः ॥ २५ ॥
अरुचिश्चित्तसन्ताप इति दोषा विषोपमाः ।
तस्माद्विशुद्धं संग्राह्यं ताम्रं रोगप्रशान्तये ॥ २६ ॥

भाषार्थ–विषको विष नहीं कहा है, किंतु तांबेहीको विष कहते हैं ॥ २४ ॥ क्योंकि, विषमें एकही दोष है और तांबेमें आठ दोष कहे गये हैं, सो यह है, १ भ्रम, २ मूर्च्छा, (वेहोशी) ३ दाह (जलन) ४ स्वेद (पसीना) ५ क्लेदन (पीडा) ६ वांति (वमन) ॥ २५ ॥ ७ अरुचि ८ चित्तसन्ताप यह दोष विषके तुल्य हैं इसकारण रोगकी शांतिके अर्थ तांबेको शोधकर, रोगोंमें ग्रहण करना ॥ २६ ॥

ताम्रशोधन ।

लवणैर्वज्रदुग्धेन ताम्रपत्रं विलेपयेत् ।
अग्नौ संताप्य निर्गुंडीरसैः सिक्तं च सप्तधा ॥२७॥

स्नुह्यर्कस्वरसेऽप्येवं शुल्बशुद्धिर्भविष्यति ।
गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाऽग्निना ॥ २८ ॥
शुध्यते नाऽत्र सन्देहो मारणं वाप्यथोच्यते ।

भाषार्थ–लवण और थूहरके दुग्धको लेके, ताँबेके कंटकवेधी पत्रोंपर लेपै, फिर अग्निमें तपाय २ सात बार निर्गुंडीके रसमें बुझावै ॥ २७ ॥ एवं सेहुँड और आकके रसमें बुझावै तो ताँबा शुद्ध हो जायगा, अथवा ताँबेके पत्रोंको गोमूत्रमें १ प्रहरतक तेज अग्निकी आँचसे पचावै ॥ २८ ॥ तो ताँबा शुद्ध हो जाताहै इसमें सन्देह नहीं ।

ताम्रमारण ।

अब तांबेका मारण कहता हूं ॥

सूतमेकं द्विधा गंधं यामं कन्यां विमर्दयेत् २९॥
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं स्थाल्या गर्भं निरोधयेत् ।
सम्यङ्मृल्लवणैः सार्धं पार्श्वे भस्म निधाय च ३०
चतुर्यामं पचेच्चुल्यां पत्रपृष्ठे सगोमये ।
जलं पुनः पुनर्देयं स्वांगशीतं विचूर्णयेत् ॥३१॥
म्रियते नाऽत्र सन्देहः सर्वयोगेषु योजयेत् ।

भाषार्थ–पारा १ भाग, गंधक २ भाग, लेके २ प्रहर घीग्वारके रसमें मर्दन करै ॥ २९ ॥ और दोनोंके बराबर ताँबेके पत्र लेकर, सबको दो थालियोंके बीचमें रख देवै और लवण मिली मिट्टीसे लेपकर, चारौं तरफ राख भरदे ॥ ३० ॥ फिर गोबरसे ढकेहुये ताम्रपत्रोंको ४ प्रहरतक आँचसे पचावै, और जल बार २ डालै. जब स्वाँगशीतल हो जाय तब उसको

उतारकर पीस लेवै ॥ ३१ ॥ इस प्रकार ताँबा मर जाता है इसमें संदेह नहीं सो लेके सब योगोंमें वर्तै ॥

तथान्यप्रकार ।

चतुर्थांशेन सूतेन ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ ३२ ॥
अम्लपिष्टं द्विगुणितमधोर्ध्वं दापयेद् बलिम् ।
चांगेरीकल्कगर्भं तद्भांडे यामं पचेद्दृढम् ॥ ३३ ॥
भस्मीभूतं ताम्रपत्रं सर्वयोगेषु योजयेत् ।

भाषार्थ–ताँबा और उससे चौथाई पारा लेके ताम्रपत्रोंपर लेपै ॥ ३१ ॥ और दूनी इमलीके साथ पिसी गंधक नीचे ऊपर देवै, फिर चांगेरी (चूक) की लुगदीमें भरके उसको हाँडीमें रखकर १ प्रहर प्रचंड अग्निकी आँच देवै ॥ तो ताम्रपत्र भस्म हो जाता है सो सब योगोंमें योजित करै ॥

अन्यच्च ।

जंबीररससंपिष्टं रसगंधकलेपितम् ॥ ३४ ॥
शुल्बपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पंचताम् ।

भाषार्थ–पारा और गंधकको जँभीरीके रसमें पीस कर, ताँबेके पत्रोंपर लेप करै ॥ ३४ ॥ फिर शरावसंपुटमें रखकर, तीन पुट अग्निकी आँच देनेसे ताँबा भस्म हो जाताहै ॥

ताम्रभस्मगुण ।

ताम्रं तिक्ताम्लमधुरं कषायं शीतलं परम् ॥ ३५ ॥
कफपित्तक्षयं धातुकुष्ठघ्नं च रसायनम् ।
नाशयेच्छूलमर्शांसि वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३६ ॥

भाषार्थ-ताम्रभस्म तिक्त (चरपरी) है, खट्टी है, मधुर है, कसैली है, शीतल है ॥ ३५ ॥ कफ, पित्त, क्षयी, धातुगत कुष्ठ, इनको नाश करता है, रसायन है, तथा शूल, बवासीरको नाश करता है जैसे वृक्षको बिजली नाश करती है तैसे ॥ ३६ ॥

कांस्यपित्तलमारण ।

राजरीतिस्तथा घोषं ताम्रवन्मारयेत्पृथक् ।
ताम्रवच्छोधनं तेषां ताम्रवद्गुणकारकम् ॥ ३७ ॥

भाषार्थ-पीतल और काँसेको पृथक् २ ताँबेकी रीतिसे मारै और तिन दोनोंका शोधन ताँबेकी तरह है, तथा तांबेहीके १ सदृश गुण करता है ॥ ३७ ॥

नागवंगशोधन ।

नागवंगौ च गलितौ रविदुग्धेन सेचयेत् ।
त्रिवारं शुद्धिमायाति सच्छिद्रे हण्डिकान्तरे ॥३८॥

भाषार्थ-सीसा और रांग गला गलाकर, आकके दूधमें ३ वार बुझाव तो शुद्ध हो जाते हैं परंतु छेदवाली हांड़ीमें दूध होवै उसमें सीसा और रांगेको बुझावै ॥ ३८ ॥

नागमारण ।

त्रिभिः कुंभपुटैर्नागो वासास्वरसमर्दितः ।
सा शिला भस्मतामेति तद्रजः सर्वमेहजित् ॥३९॥

भाषार्थ-नाग (शीशा) और मैनशिलको अडूसाके रसमें घोट करके गजपुटकी ३ आंच देवै तो भस्म होजावै है सो भस्म सब प्रकारके प्रमेह रोगोंको नाश करता है ॥ ३९ ॥

तथा द्वितीयप्रकार ।

भूभुंजगमगस्तिं च पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत् ।
तद्रसं विद्रुते नागे वासापामार्गसम्भवम् ॥ ४० ॥
क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं गुरूक्तितः ।
प्रहरं पाचयेच्चुल्यां वासादर्व्या च घट्टिता ॥ ४१ ॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरे विमर्दयेत् ।
पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत ॥ ४२ ॥
एवं सप्तपुटं नागं सिंदूरं जायते ध्रुवम् ।
तारस्थो रंजनो नागो वातपित्तकफापहः ।
ग्रहणीकुष्ठमेहार्शःप्राणशोषविषापहः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ-भूभुंजग (केंचुआ) और अगस्त इनके पत्तोंको पीसकर, एक पात्रमें लेपन करे फिर उसमें शीशेको डाल देवै और चूल्हेपर रखकर, पिघलावै जब शीशा पिघल जाय तब वासा (अडूसा) और ओंगाकी ॥ ४० ॥ राख शीशेसे चौथाई लेके उसमें डालै और अडूसाकी लकड़ीसे जलाता रहै १ प्रहर उपरांत उस शीशेको चूल्हेपरसे उतारकर ॥ ४१ ॥ अडू-साके रसमें मर्दन करै फिर पुटकी आंच देकर, उतारले और उसीके रसमें मर्दन करै ॥ ४२ ॥ एवं सात पुट देनेसे सीसेकी भस्म सिंदूरसमान लाल होजाती है, नाग (शीशा) वात, पित्त, कफको नाश करता है, तथा संग्रहणी, कोढ, प्रमेह, बवासीर, प्राणशोष, और विष. इन सबको भी नाश करता है ॥ ४३ ॥

वंगमारण ।

आभीरं शोधयेदादौ द्रावयेद्धंडिकान्तरे ।
अपामार्गचतुर्थांशं चूर्णितं मेलयेत्ततः ॥ ४४ ॥

स्थूलाग्रया लोहदर्व्या शनैस्तदवचालयेत् ।
यावद्भस्मत्वमायाति तामन्मर्द्य च पूर्ववत् ॥ ४५ ॥
तत एकीकृतं सर्वं भवेदंगारवर्णकम् ।
नूतनेन शरावेण रोदयेदन्तरे भिषक् ॥ ४६ ॥
पश्चात्तीव्राग्निना पक्कं वंगभस्म भवेद्ध्रुवम् ।

भाषार्थ–पहले रंगको शोधै, अनन्तर हांड़ीमें धरै और गलावै ओंगाकी भस्म रांगेसे चौथाई इसमें मिलावै ॥४४॥ फिर लोहेकी कलछीसे धीरसे चलावै, जबतक भस्म हो जावै तबतक पूर्ववत् चलाता रहै ॥४५॥ फिर लाल रंग होनेपर उसको एकत्र करै और नवीन सकोरोंके सम्पुटमें रखकर ॥ ४६ ॥ प्रचंड अग्निकी आंचसे पकावै तो वंग निश्चय भस्म हो जावै ॥

तथा च ।

वंगं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन तं पुटेत् ।
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां व्रजेत्॥ ४७॥
वंगं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम् ।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च क्रिमिघ्नं मोहनाशनम् ॥ ४८ ॥

भाषार्थ–रांगेको आकके दूधमें पिसेहुए हरतालके पुटमें रखकर, उसपर पीपलकी सूखी छालका चूरा छोड़ताजाय ऐसे सातवारमें वंग भस्म होजाता है ॥ ४७ ॥ यह वंग (रांग) की भस्म तिक्त (चरपरी) है, गरम है, रूक्ष है, कुछ वातके कोपको बढ़ाती है, तथा प्रमेह और श्लेष्मारोगको नाश करती है, कृमिरोगको भी नाश करती है, और मोह (मूर्च्छा) को दूर करती है ॥ ४८ ॥

लोहशुद्धिकारण ।

त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफला षोडशं पलम् ।
तत्काथे पादशेषे तु लोहस्य पलपंचकम् ॥ ४९ ॥
कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत् ।
एवं प्रलीयते दोषो गिरिजो लोहसंभवः ॥५० ॥

भाषार्थ–१६ पल त्रिफलाको चौगुणे जलमें काढ़ करै जब चतुर्थांश रह जावै तब उसमें लोहेके ५ पल ॥ ४९ ॥ पत्र लेके गरमकरके बुझावै. सातवार इसी प्रकार बुझावै तो लोहेमेंसे पर्वतसंबंधी दोष दूर हो जाता है ॥ ५० ॥

लोहमारण ।

शुद्धस्य सूतराजस्य भागो भागद्वयं बलेः ।
द्वयोस्समं सारचूर्णं मर्दयेत्कन्यकांबुना ॥ ५१ ॥
यामद्वयं ततो गोलं स्थापयेत्ताम्रभाजने ।
आच्छाद्यैरंडजैः पत्रैरुष्णो यामद्वयं भवेत् ॥ ५२ ॥
त्रिदिनं धान्यराशिस्थं तं ततो मर्दयेद्दृढम् ।
रजस्तद्वस्त्रगलितं नीरे तरति हंसवत् ॥ ५३ ॥
तीक्ष्णं मुंडं कांतलोहं निरुत्थं जायते मृतिभ् ।
त्रिफलामधुसंयुक्तमेतत्सेव्यं रसायनम् ॥ ५४ ॥

भाषार्थ–१ भाग शुद्ध पारा, २ भाग गंधक, दोनोंके बराबर अर्थात् ३ भाग लोहचूर्ण, इनको लेके घीग्वारके रसमें मर्दन करै ॥ ५१ ॥ दोपहर घोटनेके उपरांत गोला बना लेवै और तांबेके पात्रमें रख देवै फिर उसको अंडेके पत्तोंसे ढककर दो

प्रहरतक सूर्यकी धूपमें रखकर गरम करै ॥ ५२ ॥ अनन्तर तीनदिन धानकी राशिमें गाड़दे फिर निकाल कर, मर्दन खूब करके, उसके चूर्णको वस्त्रसे छान लेवै सो भस्म जलपर हंसके समान तैरती है ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार तीक्ष्ण कांत, मंडूर लोह निरुत्थ भस्म होजाता है, इसको त्रिफला, शहतके संग सेवन करना चाहिये तो रसायन है ॥ ५४ ॥

तथा द्वितीय प्रकार ।

द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णस्य मेलयेत् ।
कन्यानीरेण संमर्द्य यामयुग्मं तु तत्पुटेत् ॥ ५५ ॥
पुटेदेवं लोहचूर्णं सप्तधा मरणं व्रजेत् ।

भाषार्थ–बारहवां हिस्सा सिंदूरको पौलाद लोहेके साथ मिलाय, घीग्वारके रसमें दोपहर मर्दन करके दो सकोरोंके संपुटमें रखकर, गजपुटकी आंच देवै ॥ ५५ ॥ एवं सात पुट देवै तो लोहचूर्णभस्म हो जाता है ॥

काकोदुंबरिकानीरे लोहपत्राणि सेचयेत् ॥ ५६॥
तप्ततप्तानि षड्वारं कुट्टयेत्तदलूखले ।
तत्पंचमांशदरदं क्षिप्त्वा सर्वं विमर्दयेत् ॥ ५७ ॥
कुमारीनीरतस्तीक्ष्णं पुटे गजपुटे तथा ।
त्रिवारं त्रिफलाक्राथैस्तत्संख्याकैरतन्द्रितः॥५८॥
एवं चतुर्दशपुटैर्लोहं वारितरं भवेत् ।

भाषार्थ–कठूमरिके रसमें लोहेके पत्रोंको तपाय २ कर बुझावै ॥ ५६ ॥ छे बार बुझाकर, उलूखलमें डालकर कूटै फिर उससे पांचवां भाग सिंदूर मिलाकर सबको घोटै ॥ ५७ ॥ घीग्वारके पाठेका रस डालता जाय. घुटजानेपर गजपुटमें रख तीनवार तेज आँचसे पकावै. अनन्तर तीनही बार त्रिफलाके काढ़ामें खरल करै ॥ ५८ ॥ ऐसे १४ पुट देनेसे लोहा जलमें तैरनेवाला हो जाता है ॥

तथा चतुर्थप्रकार ।

तिंदूफलस्य मज्जायां लोहं क्षिप्त्वाऽऽतपे खरे॥ ५९ ॥
धारयेत्कांस्यपात्रेण दिनैकेन पुटत्यलम् ।
लेपं पुनः पुनः कुर्याद्दिनान्ते तत्प्रपेषयेत् ॥ ६० ॥
त्रिफलाक्राथसंयुक्तं दिनैकेन मृतिर्भवेत् ।

भाषार्थ–तेंदूके फलकी गूदीको लोहेके पत्रोंपर प्रचंड धूपमें लेपन करके ॥ ५९ ॥ काँसेके पात्रमें धरकर, सुखाय लेपै इसप्रकार दिनभर लेप करता रहे दिनान्त (संध्या) समयमें उसको ॥ ६० ॥ त्रिफलाके काढ़ाके संग खरल करै फिर गजपुटकी आँच देवै तो एकही दिनमें लोहाकी भस्म हो जाती है॥

लोहं पत्रमतीव तप्तमसकृत क्राथे क्षिपेत्त्रै-
फले चूर्णीभूतमतो भवेत्त्रिफलजे क्राथे पचे-
द्गोजले । मत्स्याक्षीत्रिफलारसेन पुटये-
द्यावन्निरुत्थं भवेत् पश्चादाज्यमधुप्लुतं सुपु-
टितं शुद्धं भवेदायसम् ॥ ६१ ॥

भाषार्थ–लोहेके पत्रोंको बहुत तपाय करके बार २ त्रिफलाके काढ़ामें बुझावै फिर त्रिफलाहीके काढ़ामें खरल करके गोमूत्रमें पचावै और मछैछी तथा त्रिफलाके रसमें तबतक पुट देवै जबतक निरुत्थ भस्म हो जावै फिर घृत और शहत लपेटके पुट देवै तो लोहा विशेष शुद्ध हो जाता है ॥ ६१ ॥

लोहभस्मपरीक्षा ।

सर्वमेतन्मृतं लोहं ध्मातव्यं मृतपंचकैः ॥ ६२ ॥
यद्येवं स्यान्निरुत्थानं सत्यं वारितरं भमेत् ।
गन्धकं तुत्थकं लोहं तुल्यं खल्वे विमर्दयेत् ॥ ६३ ॥
दिनैकं कन्यकाद्रावे रुद्धा गजपुटे पचेत् ।
इत्येवं सर्वलोहानां कर्तव्येत्थं निरुत्थितः ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—इस समस्त लोहभस्मको लेके, मृतपंचकमें बुझावै ॥ ६२ ॥ जो इन पूर्वोक्त प्रकारसे सत्य २ लोहकी निरुत्थ भस्म हो जावै तो जलपर तैरने लगती है, यदि कची रहै अर्थात् नहीं तैरे तो गंधक, नीलाथोथा, और दोनों बराबर लोह लेकर, सबको घीग्वारके पाठेके रसमें १ एक दिन घोटै फिर कपरौटी करके, गजपुटकी आँचसे पकावै. इसप्रकार करनेसे सर्व प्रकार लोहा निरुत्थ भस्म हो जावै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

लोहभस्मगुण ।

कृष्णायसोऽथ शूलार्शःकुष्ठपांडुत्वमेहनुत ।
वयःस्थं गुरु चक्षुष्यं सरं मेदोगदापहम् ॥ ६५ ॥
आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगस्य हन्ता मदनस्य भर्ता । अयःसमानं न हि किंचिदन्यद्रसायनं श्रेष्ठतमं हि जन्तोः ॥ ६६ ॥

भाषार्थ—काले रंगका लोहा, शूल, ववासीर, कोढ, पांडुरोग, प्रमेह, इन रोगोंको नाश करता है, आयुको बढाता है, भारी है, नेत्रोंको हितकारी है, दस्त लाता है और मेदाके रोगोंको हरनेवाला है ॥ ६५ ॥ तथा यह लोहभस्म, आयुकी बढानेवाली, बलवीर्य करनेवाली, रोगोंको नाश करनेवाली, तथा कामदेवको उत्तेजन करनेवाली है. इसके समान प्राणियोंको अन्य कोई रसायन उत्तम नहीं है ॥ ६६ ॥

लोहसेवनमें पथ्यापथ्य ।

कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजकं तथा ।
मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ६७ ॥

भाषार्थ—कुम्हेड़ा, तिलका तेल, उड़द, राई, मद्य (मदिरा), खटाई, इन सबको लोहका सेवनेवाला मनुष्य त्याग देवे ॥६७॥

लोहकिट्टगुणागुण ।

ये गुणा मारिते मुण्डे ते गुणा मुंडकिट्टके ।
तस्मात्सर्वत्र मण्डूरं रोगशान्त्यै नियोजयेत् ॥६८॥
शतोत्थमुत्तमं किट्टं मध्यमाशीतिवार्षिकम् ।
अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥६९ ॥

भाषार्थ—जितने गुण मारेहुए मुंडमें हैं उतने ही गुण मुंडकिट्टमें हैं, इसकारण रोगोंकी शान्तिके अर्थ मण्डूरको देवै ॥६८॥ सौ वर्षकी किट्ट उत्तम है, ८० वर्षकी मध्यम और ६० वर्षकी अधम, इससे कमती वर्षोंकी किट्ट विषके समान है ॥ ६९ ॥

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् । विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण नृणां क्षयं पांडुगदं निहन्ति ॥ ७० ॥ किट्टाद्दशगुणं मुण्डं मुण्डात्तीक्ष्णं शताधिकम् । तीक्ष्णाल्लक्षगुणं कान्तं भक्षणात्कुरुते गुणम् ॥ ७१ ॥

भाषार्थ-लोहेकी किट्टको बहेड़ेके कोयलोंमें तपाय २ के आठबार बुझावै फिर चूर्ण करके शहतके संग चाटै तो थोड़ेही समयमें मनुष्योंके क्षय, और पांडुरोगको नाश करती है ॥ ७०॥ किट्टसे १० गुणा मुंड, मुंडसे १०० गुणा तीक्ष्ण लोह, तीक्ष्णसे एक लक्षगुणा कांतलोह, ये भक्षण करनेसे अधिक गुण करते हैं ॥ ७१ ॥

इति श्रीमन्मिश्रकुलाग्रगण्यपण्डितशोभारामात्मजपंडितनारायणप्रसाद तथा मुकुंदरामकृतरसमंजरीभाषाटीकायां स्वर्णाद्यष्टधातुशोधनमारणसेवनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठा अध्याय ॥ ६ ॥

धन्वन्तरिवंदन ।

क्षीराब्धेरुत्थितं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
वन्दे धन्वतरिं नित्यं नानागदनिषूदनम् ॥ १ ॥

भाषार्थ-क्षीरसागरसे उत्पन्न, पीताम्बर धारण करनेवाले, चतुर्भुजाधारी तथा सदैव अनेक रोग नाश करनेवाले श्रीधन्वतरिजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

रसप्रशंसा ।

यथागुरुमुखं श्रुत्वा सानुभूतं च यद्रसम् ।
स रसः प्रोच्यते ह्यत्र व्याधिनाशनहेतवे ॥ २ ॥
मुक्त्वैकं रसवैद्यं च लाभपूजायशस्विनम् ।
तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः को लभेत वराटिकाम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ-यथाविधिपूर्वक गुरुमुखसे सुनकर और रसोंको अनुभव कहिये परीक्षा करके, जो रस उत्तम हैं वेही रस यहाँ इस

पुस्तकमें रोगोंके नाश हेतु वर्णन करता हूं ॥ २ ॥ लाभ (द्रव्यप्राप्ति), पूजा (सत्कार) और यश इनसे युक्त रसोंके जाननेवाले वैद्यको छोड़कर, ऐसा वह कौन वैद्य है जो तृण और काष्ठकी औषधियोंसे एक कौड़ी भी प्राप्त कर सकताहै अर्थात् नहीं कर सकताहै ॥ ३ ॥

मात्राप्रमाण ।

यस्य रोगस्य यो योगो मुनिभिः परिकीर्तितः ।
तत्तद्योगसमायुक्तं भिषक् सूतं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
मात्राधिकं न सेवेत रसं वा विषमौषधम् ।
व्याधिबद्धं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥५॥

भाषार्थ-जिस रोगका जो योग मुनियोंकरके कहा गया है वैद्य उस २ योगमें पारेको मिलाकर देवै ॥ ४ ॥ मात्रा (प्रमाणसे अधिक रस, वा विष) (अफीम, संखिया, कुचिला मीठा तेलिया, आदि) तथा औषध, यह सेवन नहीं करै. वैद्यजन रोग और कोष्ठ (उदरका बलाबल) देखकरके, औषधकी मात्राको देवै ॥ ५ ॥

रत्नगर्भपोटलीरस ।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लोहं च ताम्रकम् ।
तुल्यांशमारिते योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम्॥६॥
शंखं च तुल्यतुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः ।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेनापूर्य वराटिकाम् ॥ ७॥
टंकणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा मूषां च बंधयेत् ।
मृद्भाण्डेऽथ निरुद्ध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥८॥

स्वांगशीतं समुद्धृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्याः सप्तभावनाः ९॥
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ।
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुंजाचतुष्टयम्॥१०॥

भावार्थ-शोधा पारा, वज्र (हीरा), सुवर्ण, तार (चांदी), सीसा, लोहा, तांबा, और समानभाग मारेहुए मोती, सोनामाखी, मुंगा ॥ ६ ॥ शंख, यह सब बराबर २ लेके सातदिन चित्रकके काढ़ामें घोटकर चूर्ण करै और पीली काड़ीमें भरदेवै ॥ ७ ॥ फिर आकके दूधसे पिसेहुए सुहागासे काड़ीका मुख बन्द करदेवै और मूषामें रखकर, एक मिट्टीकी हांड़ीमें धरकर अच्छी तरह गजपुटमें फूंकदेवै ॥ ८ ॥ जब स्वांगशीतल होजाय तब निकालकर, बारीक चूर्ण करलेवै फिर उस चूर्णको लाकर, निर्गुंडीके रसकी सात भावना देवै ॥९॥ अनन्तर अदरख के रसकी सात भावना, और चित्रकके रसकी २१ भावना देवै फिर सुखाकर चार रत्ती प्रमाण मात्रातक रोगीको देवै ॥१०॥

क्षयरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ।
योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचेन च ॥ ११ ॥
महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके ।
पोटलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहेषु योजयेत् ॥ १२ ॥

भावार्थ-यह रस साध्य और असाध्य क्षयी रोगको शीघ्र नाश करता है पीपरि और शहतके संग, अथवा काली मिरिच और घीके संग खावै ॥ ११ ॥ आठ प्रकारके महारोग, खांसी, ज्वर, श्वास, अतीसार, इन रोगोंको नाश करै, यह रत्नगर्भ पोटली रस योगवाहमें योजित करै अर्थात् जैसी औषधिके साथ देवै वैसाही गुण करै ॥ १२ ॥

मृगांकपोटलीरस ।

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत् ।
गन्धकं च समं तेन रसपादस्तु टंकणम् ॥१३॥
सर्वं तद्गोलकं कृत्वा कांजिकेनावशोषयेत् ।
भांडे लवणपूर्णे च पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १४ ॥
मृगांकसंज्ञको ज्ञेयो राजयोगनिकृन्तनः ।
गुंजाचतुष्टयं चास्य मरिचैर्भक्षयेद्भिषक् ॥ १५ ॥

भावार्थ-पाराके बराबर सुवर्णपत्र और दूने मोती और गंधक पारेके बराबर सुहागा चौथाई ॥ १३ ॥ इन सबको कांजीमें घोटकर, गोला बनाय, सुखाय लेवै फिर लवणसे भरेहुए पात्रमें रखकर, मुख बंद करदे और चार प्रहरतक अग्निसे पचावै ॥ १४ ॥ यह मृगांकनाम रस जानिये सो राजयक्ष्मा रोगको नाश करनेवाला है. इसको वैद्य काली मिर्चके साथ चार रत्ती प्रमाणमात्र भक्षण करै ॥ १५ ॥

पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना लेहयेद् बुधः ।
पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायेणास्य प्रयोजयेत ॥ १६ ॥
दध्याज्यगव्यं तक्रं वा क्षीरं वाऽऽजं प्रयोजयेत् ।
व्यंजनैर्घृतपक्वैश्च नाऽतिक्षारैरहिंगुकैः ॥ १७ ॥
एलाजंबीरमरिचैः संस्कृतैरविदाहिभिः ।

वृन्ताकतैलबिल्वानि कारवेल्लं च वर्जयेत् ॥ १८ ॥
स्त्रियं परिहरेद्दूरात्कोपं चापि परित्यजेत् ।

भाषार्थ–वा पीपरी १० और शहतके संग लेवै. प्रायः इसके सेवनमें हलके मांसका पथ्य देवै ॥ १६ ॥ दही, गायका घी, मठा अथवा बकरीके दूधका पथ्य दे, वा घीकरके पकान्न (पूरी, पूआ आदि) परंतु उसमें बहुत लवण व हींग न होवै ॥१७॥ इलायची, जंभीरी, मिर्च, पड़े हों, बहुत तीक्ष्ण न होने पावै, और बैंगन, तेल, बेल, करेला, यह वर्जित करै ॥ १८ ॥ स्त्रीको दूरसे त्याग दे और क्रोधको भी छोड़ देवै ॥

वल्ली तुंवरिका नाम तन्मूलं क्वाथयेत्पलम् ॥ १९ ॥
कटुकत्रयसंयुक्तं पाययेत्कासशान्तये ।
त्रिशूली या समाख्याता तन्मूलं क्वाथयेद्बलम् ।२०।
ईषद्धिंगुसमायुक्तं काकिणी चित्रकं वचा ।
भक्षयेत्पथ्यभोज्यं च सर्वरोगप्रशान्तये ॥ २१ ॥

भाषार्थ–१ पल बेलि और तोमड़ीकी जडका काढ़ा करै ॥ १९ ॥ और त्रिकुटा (सोंठि, मिर्च, पीपरी) का चूर्ण मिलाय, खांसी दूर करनेके निमित्त पीवै; तथा त्रिशूलीकी मूलके काढ़ामें ॥ २० ॥ काकतुंडी, चित्रक, बच, इनका चूर्ण और कुछ हींगका फूला मिलाय सब रोगोंकी शान्तिके अर्थ भक्षण करै, परंतु पथ्य भोजन करै अर्थात् परहेजसे रहै ॥ २१ ॥

मर्कटीपत्रचूर्णस्य गुटिकां मधुना कृताम् ।
धारयेत्सततं वक्त्रे कासविष्टंभनाशिनीन् ॥२२॥

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम् ।
छागोपसेवासहनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥२३॥
मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम् ।
अतो विशेषतो रक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ २४ ॥

भाषार्थ–कैंचके पत्तोंके चूर्णकी गोली शहत मिलाय बनावै सो मुखमें रखनेसे खांसी और मलविकारको नाश करनेवाली है ॥२२॥ बकराका मांस बकरीका दूध तथा घी, सोंठिका चूर्ण मिलाय खावै, बकरियोंकी सेवा करै और बकरियोंमें निवास करै तो राजयक्ष्मा रोग नाश होवै ॥ २४ ॥ मनुष्योंमें मलके आधीन बल (वीर्य) है और वीर्यके आधीन जीवन है, इस कारण विशेषकरके यक्ष्मारोगमें मल और वीर्यकी रक्षा करै ॥ २४ ॥

लोकनाथपोटलीरस ।

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगन्धयोः ।
माषोऽपि टंकणस्यैको जम्बीरेण विमर्दयेत्॥२५॥
पुटेल्लोकेश्वरो नाम्ना लोकनाथोऽयमुत्तमः ।
जयेत्कुष्ठं रक्तपित्तमन्यरोगं क्षयं नयेत् ॥ २६ ॥
पुष्टवीर्यप्रदाता च कांतिलावण्यदः परः ।
कोऽस्ति लोकेश्वरादन्यो नृणां शम्भुमुखोद्गतात् २७

भाषार्थ–कपर्द (कौड़ी) की भस्म १ पल, पारा. गंधक १ पल, सोहागा १ मासा, इनको जंबीरीके रसमें घोटै ॥२५॥ लोकेश्वरका कहा यह लोकनाथ नाम उत्तम रस है, सो कोढ़, रक्तपित्त, तथा अन्य रोगोंको नाश करता है ॥ २६ ॥ पुष्टि और वीर्यका दाता, कांति लावण्य (सुन्दरता) का

देनेवाला है, मनुष्योंको शंभु (महादेव) जीके मुखसे कहा हुआ यह जो लोकनाथ रस है, इससे उत्तम अन्य कौन रस है अर्थात् कोई नहीं है ॥ २७ ॥

लोकेश्वरपोटलीरस ।

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् ।
द्विगुणं गंधकं दत्त्वा मर्दयेच्चित्रकांबुना ॥ २८ ॥
वराटकांश्च संपूर्य टंकणेन निरुद्धय च ।
भांडे चूर्णं प्रतिलिखेत्क्षिप्त्वा रुंधीत मृन्मये॥२९॥
शोषयित्वा पुटेद्गर्ते वह्निं दत्त्वाऽपराह्णिके ।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वाऽथ विन्यसेत्३०
एष लोकेश्वरो नाम वीर्यपुष्टिविवर्धनः ।

भाषार्थ-पाराकी भस्म, उससे चौथाई सुवर्णभस्म और दूनी गंधक डालकर, सबको चित्रकके रसमें मर्दन करै ॥ २८ ॥ फिर उसको कौड़ियोंमें भरकर, सुहागासे उनका मुख बंद करके, मिट्टीकी एक हांड़ीमें रखकर, उस हांडीका मुख चूनासे बन्दकर देवै ॥ २९ ॥ फिर सुखाकर, गजपुटकी आंच देवै. जब स्वांगशीतल हों जावै तब उतारकर, चूर्ण करके, रख लेवै॥३०॥ यह लोकेश्वर नाम रस वीर्य और पुष्टिको बढ़ानेवाला है ॥

लोकेश्वरसेवनप्रकार ।

गुंजाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ ३१॥
खादयेत्परया भक्त्या लोकेशः सर्वसिद्धिदः ।
अंगकार्श्येऽग्निमांद्ये च कासपित्ते रसस्त्वयम्३२॥

मरिचैर्घृतसंयुक्तैः प्रदातव्यो दिनत्रयम् ।
लवणं वर्जयेत्तत्र शयीतोत्तानपादतः ॥ ३३ ॥
एकविंशद्दिनं यावन्मरिचं सघृतं पिबेत् ।
पथ्यं मृगांकवज्ज्ञेयं साज्यं च दधि भोजयेत्३४॥

भाषार्थ-इसका सेवनप्रकार कहते हैं कि ४ रत्ती प्रमाण इस रसकी मात्राको लेके पीपरि और शहतसंयुक्त ॥ ३१ ॥ यह सब सिद्धियोंका देनेवाला रस परम भक्तिपूर्वक अंगकी दुर्बलता, अग्निकी मन्दता और खांसी, पित्तविकार इन रोगोंपर खावै ॥ ३२ ॥ तथा यह रस काली मिर्च और घी मिलाय, तीन दिन देवै; इसका सेवन करनेवाला लवण नहीं खाय, पैर फैलाकर, सोवै ॥ ३३ ॥ और २१ दिनतक जबतक मिर्च घी पीवै, तबतक पूर्वोक्त मृगांकरसमें कहेहुएके समान पथ्य जानना अर्थात् बैंगन, तेल, बेल, करेला, बहुत लवण, हींग, मिर्च तथा स्त्रीप्रसंग, यह त्याग देवै और घीदहीका सेवन करै ॥ ३४ ॥

लोकेश्वररसके गुण ।

ये शुष्का विषमानिलैः क्षयरुजा व्याप्ताश्च
ये कुष्ठिनो ये पांडुत्वहताः कुवैद्यविधिना
ये शोषिणो दुर्भगाः । ये तथा विविधैर्ज्वरैर्भ्र-
ममदोन्मादैः प्रमादं गतास्ते सर्वे विगता-
मया हतरुजः स्युः पोटलीसेवया ॥ ३५ ॥

भाषार्थ-जो रोगी विषमवातविकारसे शुष्क (दुर्बल) होगये हैं और क्षयरोगसे व्याप्त हैं, तथा जो कोढ़ी हैं, पांडुरोगसे ग्रासित हैं तथा जिनको वैद्यने छोड़ दिया हो, शोषरोग होगया

हो, अनेक ज्वरोंसे पीडित हों तथा जिनको भ्रम, मदोन्माद और प्रमाद होगया हो, ये समस्त रोगवाले इस लोकेश्वर पोटलीरसके सेवनसे रोगरहित होकर आरोग्य हो, जाते हैं॥३५॥

राजमृगांकरस ।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकं ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिलागन्धकतालकम् ॥ ३६ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
वराटीं पूरयेत्तेन अजाक्षीरेण टंकणम् ॥ ३७ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे च निरोधयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ ३८ ॥
रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुंजः कफापहः ।
दशभिः पिप्पलीक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥ ३९ ॥
सघृतैर्दापयेत्काथं वातश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥ ४० ॥

भाषार्थ-पारेकी भस्म ३ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग और मैनशिल, गंधक, हरताल ॥ ३६ ॥ यह दो भाग लेके, एकत्र कर चूर्ण करै और कौड़ीमें भर लेवै फिर बकरीके दूधसे सुहागा ॥ ३७ ॥ पीसकर, उससे कौड़ीका मुख बन्द करके, मिट्टीके पात्रमें रख दे. सूख जानेपर गजपुटमें पचावै. जब स्वांगशीतल हो जावै तब उतारकर, चूर्ण करै॥३८॥ यह राजमृगांकरस चार रत्ती प्रमाण १० पीपारि और शहतके साथ खाय तो कफको नाश करै और २१ काली मिर्चे ॥ ३९ ॥ घीके साथ इस रसको वातश्लेष्मसे उत्पन्न क्षयरोगमें देवै ॥ ४० ॥

रत्नगिरिरस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मृतं स्वर्णाभ्रताम्रकम् ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात्सूतार्धं मृतलोहकम् ॥ ४१ ॥
लोहार्धं मृतवैक्रान्तं मर्दयेद्भृंगजैर्द्रवैः ।
पर्पटीरसवत्पाच्यं चूर्णितं भावयेत्पृथक् ॥ ४२ ॥
शिग्रुवासकनिर्गुण्डीबचासोमाग्निभृंगजैः ।
क्षुद्रामुण्डीजयन्त्योश्च मुनिब्रह्मोत्थचित्रकैः ॥४३ ॥
कन्याद्रावैश्च संभाव्य प्रतिद्रावैस्त्रिधा त्रिधा ।
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं भूधरे तं समुद्धरेत् ।

भाषार्थ-शुद्ध पारा, पाराके बराबर गंधक और सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, यह प्रत्येक पाराके बराबर, पारासे आधी लोहभस्म ॥४१॥ लोहेसे आधी वैक्रांतभस्म, इन सबको भंगराके रसमें मर्दन करै और पर्पटीरसकी तरह पचाकर, आगे लिखी औषधियोंकी पृथक् २ भावना देवै ॥ ४२ ॥ शिग्रु (सहँजना) अडूसा, निर्गुंडी, बच, गिलोय, भंगरा, कटाई, गोरखमुंडी, अरणी, अगस्तिया, ब्राह्मी, चित्रक ॥ ४३ ॥ घीग्वारके पाठेका रस, इन सबमें तीन २ भावना देके, भूधरयंत्रमें रख, लघुपुटकी आंच देकर, पचावै. स्वांगशीतल होनेपर निकाल लेवै और रख छोड़े ॥ ४४ ॥

रत्नगिरिसेवनप्रकार ।

इमं नवज्वरे दद्यान्माषमात्रं रसस्य तु ।
कृष्णाधान्यकसंमिश्रं मुहूर्ताद्विज्वरो भवेत ॥ ४५ ॥
अयं रत्नगिरिर्नाम रसो योगस्य वाहकः ॥ ४६ ॥

भाषार्थ-इस रत्नगिरिरसको १ मासा प्रमाण नवीनज्वरमें पीपरि और धनियांके साथ देवै तो मुहूर्तभर (दो घड़ी) में ज्वररहित होजावै ॥ ४५ ॥ यह रत्नागिरि नाम रस योगवाही है अर्थात् जैसी औषधके साथ देवै वैसाही गुण करै ॥ ४६ ॥

हिंगुलेश्वररस ।

तुल्यांशं चूर्णयेत्खल्वे पिप्पलीं हिंगुलं विषम् ।
द्विगुंजं मधुना देयं वातज्वरनिवृत्तये ॥ ४७ ॥

भाषार्थ-पीपरि, हिंगुल, विष (तेलियामीठा) यह बराबर भाग लेकर, खरल करै फिर वातज्वरकी निवृत्तिके अर्थ इसकी २ रत्ती प्रमाण मात्रा देवै ॥ ४७ ॥

शीतभंजीरस ।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टंकणगंधकम् ।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्ल्या द्रवैर्दिनम् ॥ ४८ ॥
मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ।
अंगुल्यर्धप्रमाणेन पचेत्तत्सिकताह्वये ॥ ४९ ॥
यंत्रे यावत्स्फुटंत्येवं व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।
ततः सुशीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ ५० ॥
शीतभंजीरसो नाम चूर्णयेन्मरिचैः समम् ।
माषैकं पर्णखंडेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ ५१ ॥
त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ५१ ॥

भाषार्थ-पारा, खपरिया, हरताल, नीलाथोथा, सोहागा, गंधक, यह सब समानभाग शुद्ध कियेहुए लेके, करेलाके रसमें १

दिन ॥ ४८ ॥ मर्दन करै फिर उसीसे तांबेके पात्रमें आधे अंगुल प्रमाण लेप देवै फिर वालुकायंत्रमें रख ॥ ४९ ॥ चूल्हेपर चढ़ाय आंच देवै फिर वालूपर धान रखदे जबतक धानकी खील न होवे तबतक आंच दे. खील होनेपर जानै कि रस बनगया. अनंतर शीतल होनेपर उतारले और तांबेके पात्रसे निकाल लेवै ॥ ५० ॥ फिर वैद्य इस शीतभंजीरसको काली मिर्चके साथ पानमें १ मासा प्रमाण मात्रा खावै तो ज्वरको नाश करै ॥ ॥ ५१ ॥ तथा तीन दिन खानेसे विषमज्वर, एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक ज्वर नाश हो जावै ॥

तथा द्वितीय शीतभंजीरस ।

रसहिंगुलगन्धं च जैपालं च त्रिभिः समम्॥५२॥
दन्तीक्काथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः स्मृतः ।
आर्द्रकस्य रसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥५३॥
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्याममात्रतः ।
शर्करा दधिभक्तं च पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥५४॥
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः ।
शीतभंजीरसो नाम्ना सर्वज्वरविनाशकः ॥५५॥

भाषार्थ-शुद्धपारा, हींगल, गन्धक, और इन तीनोंके बराबर जैपाल (जमालगोटा) ॥ ५२ ॥ इन सबको लेके दंतीके काढ़ामें मर्दन कर, आदरखके रसके साथ दो रत्तीप्रमाण देवै तो यह रस सब ज्वरोंका नाश करनेवाला है ॥ ५३ ॥ महाघोर नवीन ज्वरको तो प्रहर मात्रहीमें नाश करै, इसमें शकर, दहीभातका यत्नसे पथ्य देवै ॥ ५४ ॥ ऊपरसे शीतल जल पीवै, तथा ईख (गन्ना) मूंगका पानी भी हितकारक है. यह शीतभंजी नाम रस सम्पूर्ण ज्वरोंका नाशक है ॥ ५५ ॥

शीतारिरस ।

सूतकं टंकणं गन्धं शुल्बचूर्णं समं समम् ।
सूताद्द्विगुणितं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ५६ ॥
सैंधवं मरिचं चिंचात्वग्भस्मापि च शर्कराः ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥५७॥
द्विगुंजं तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहम् ।
रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥ ५८ ॥

भाषार्थ–पारा, सोहागा, गंधक, ताम्रभस्म, ये सब बराबर २ लेवै, पारेसे दूना जमालगोटा विना छिलकाका लेवै ॥ ॥ ५६ ॥ और सेंधालवण, कालीमिर्च, इमलीकी छालकी भस्म, और मिश्री, यह प्रत्येक पारेकी बराबर लेकर, सबको जंबीरीके रसमें १ दिन मर्दन करै ॥ ५७ ॥ और दो २ रत्तीकी गोली बनालेवै १ गोली गरम जलके साथ लेवै तो वात, कफज्वरको नाश करै. यह शीतारि नाम रस शीतज्वरको हरनेवाला है॥५८॥

ज्वरराजरस ।

भागैकं रसराजस्य भागस्यार्द्धेन माक्षिकम् ।
भागद्वयं शिलायाश्च गन्धकस्य त्रयो मताः ॥५९॥
तालकाष्टादशो भागाः शुल्बस्य भागपंचकम् ।
भल्लातकत्रयो भागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ६० ॥
वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृन्मयभाजने ।
विधाय सुदृढं मुद्रां पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ ६१ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य मर्दयेत्सुदृढं पुनः ।

गुंजाचतुष्टयं चास्य पर्णखंडेन दापयेत् ॥ ६२ ॥
ज्वरराजः प्रसिद्धोऽयमष्टज्वरविनाशकः ।
प्रातःकाले प्रभुञ्ज्यैनं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥ ६३ ॥
भागेन तुत्थसंयुक्तं चातुर्थिकनिवारणम् ।
नारायणेन लिखितं शालिनाथेन वर्णितम् ॥ ६४ ॥

भाषार्थ–शुद्धपारा १ भाग, सोनामाखीकी भस्म आधा भाग, मैनशिल २ भाग, गंधक ३ भाग, ॥५९ ॥ शुद्ध हरताल १८ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग, शुद्ध भिलावे ३ भाग ॥६०॥ इन सबको थूहरके दूधमें मर्दन करके, मिट्टीके पात्रमें रख, उसका मुख अच्छीतरह बन्द कर देवै और ४ प्रहर अग्निकी आंचसे पचावै ॥६१॥ जब स्वांगशीतल हो जाय तब उतारकर खरल करै, पुनः इस रसको चार रत्ती प्रमाण पानके साथ देवै ॥ ६२ ॥ यह प्रसिद्ध ज्वरराज रस आठ प्रकारके ज्वरोंका नाशक है. इसको प्रातःसमयमें खावै, इसमें मठा और भातका पथ्य हित है ॥ ६३ ॥ नीलाथोथाको मिलाय, खानेसे चातुर्थिक ज्वरको निवारण करता है. इसको शालिनाथजीने वर्णन किया और पं० नारायणप्रसादजीने लिखा है ॥ ६४ ॥

महाज्वरांकुशरस ।

सूतं गंधं विषं तुल्यं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ।
तच्चूर्णाद्द्विगुणं व्योषचूर्णं गुंजाद्वयं हितम् ॥६५॥
जंबीरकस्य मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतः ।
महाज्वरांकुशो नाम ज्वराष्टकनिकृन्तकः ॥ ६६ ॥
एकाहिकं द्वयाहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ।

विषमं च त्रिदोषोत्थं हन्ति सर्वं न संशयः॥६७॥
व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणं तथा ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत्॥६८॥

भावार्थ—पारा, गंधक, विष, ये तीनौं शुद्ध किये हुए बराबर २ ले, और इन तीनोंके बराबर धतूरेके बीज, इन सबको लेके चूर्ण करै. उस चूर्णसे दूना सोंठ, मिर्च, पिपरीका चूर्ण मिलाय घोटलेवै. इसकी मात्रा दो रत्तीप्रमाण ॥ ६९ ॥ जंभीरी और अदरखके रसके साथ देवै. यह महाज्वरांकुश नाम रस आठौ प्रकारके ज्वरोंको नाश करनेवाला है ॥ ६६ ॥ और एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, त्रिदोषज, विषमज्वर, इन सब ज्वरोंको निस्सन्देह नाश करता है ॥ ६७ ॥ और व्यायाम (कसरत) व्यवाय (मैथुन) स्नान, चलना, ज्वर छूट जानपरे भी यह नहीं करै जबतक कि शरीरमें बल (ताकत) नहीं होवै ॥ ६८ ॥

प्राणेश्वररस ।

शुद्धं सूतं तथा गंधं मृताभ्रं विषसंयुतम् ।
तप्तं तन्मर्दयेत्तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ॥ ६९ ॥
पूरयेत्कूपिका तेन मुद्रयित्वा च शोषयेत ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वाथ शोषयेत् ॥ ७० ॥
पुटेत्कुंभप्रमाणेन स्वांगशीतं समुद्धरेत् ।
गृहीत्वा कूपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः॥७१॥
अजाजी चित्रकं हिंगु स्वर्जिका टंकणं च यत् ।
गुग्गुलुः पंचलवणं यवक्षारो यवानिकाः ॥ ७२ ॥

मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकं च समानतः ।
एषां कषायेण पुनर्भावयेत्सप्तधाऽऽतपे ॥७३ ॥

भावार्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, अभ्रकभस्म, विष, इनको समान भाग लेकर, मुशलीके रसमें ३ दिन मर्दन करै ॥ ६९ ॥ फिर उसको काचकी कुप्पीमें भरकर, मुद्रा करके सुखाय लेवै, अनन्तर सात कपर मिट्टी करके सुखा लेवै ॥ ७० ॥ और कुंभ पुटकी आंच देवै. जब स्वांगशीतल हो जावै तब कुप्पीमेंसे निकालकर, एक दिन खरल करै ॥ ७१ ॥ फिर जीरा, चित्रक, हींग, सज्जी, सोहागा, गुग्गुल, पांचौं लवण, जवाखार, अजमायन, ॥ ७२ ॥ मिर्च, पीपरि, यह प्रत्येक बराबर लेकर, इनके काढ़ामें फिर उसको सातवार सुखाय लेवै तो उत्तम प्राणेश्वर रस बनजाता है ॥ ७३ ॥

प्राणेश्वररससेवनप्रकार ।

दद्यान्नवज्वरे तीव्रे सोष्णं वारि पिबेदनु ।
प्राणेश्वरो रसो नाम सन्निपातप्रकोपनुत ॥७४॥
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मे शूले त्रिदोषजे ।
वांछितं भोजनं दद्यात्कुर्याच्चन्दनलेपनम् ॥७५॥
तापोद्रेकस्य शमनं बालभाषणगायनैः ।
प्रभवेन्नात्र संदेहः स्वास्थ्यं च लभते नरः॥७६॥

भावार्थ—यह प्राणेश्वर नाम रस पानके रसमें देवै, ऊपरसे गरम जल पीवै तो सन्निपातकोपको दूर करै ॥ ७४ ॥ तथा दाहसंयुक्त शीतज्वरमें, गुल्मरोगमें, शूलमें, त्रिदोषजमें, यह रस खावै, और रोगीके इच्छानुसार भोजन देवै चन्दनका लेप अंगोंमें करै ॥ ७५ ॥ और बालकोंकी बातोंके सुननेसे तथा

गान सुननेसे ज्वरका वेग शांत होता है, निश्चय इस योगसे मनुष्य स्वस्थता (आरोग्यता) को प्राप्त होवै ॥ ७६ ॥

नवज्वरेभसिंहरस ।

शुद्धं सूतं तथा गंधं लोहं ताम्रं च सीसकम् ।
मरिचं पिप्पलीं विश्वं समभागानि चूर्णयेत्॥७७॥
अर्धभागं विषं दत्त्वा मर्दयेद्वासरद्वयम् ।
शृंगवेरानुपानेन दद्याद्गुंजाद्वयं भिषक् ॥ ७८ ॥
नवज्वरे महाघोरे वाते संग्रहणीगदे ।
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ७९ ॥

भाषार्थ–शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाकी भस्म, काली मिर्च, पीपरी, सोंठि, इन सबको बराबर लेके चूर्ण करै ॥ ७७ ॥ और आधा भाग विष (तेलिया मीठा) उसमें डालकर, दो दिनतक मर्दन करै; फिर वैद्य इस रसकी दो रत्ती प्रमाण मात्रा ॥ ७८ ॥ बहुत कठिन नवीन ज्वरमें, संग्रहणीरोगमें तथा सब रोगोंमें यह नवज्वरेभसिंह रस लेवै, नवीन ज्वररूप हाथीको यह रस सिंहसमान है ॥ ७९ ॥

पंचाननरस ।

शंभोः कंठविभूषणं समरिचं गंधं रसेन्द्रो रविः
पक्षौ सागरलोचने शशिमुखं भागोऽर्कसंख्याकृतम् । खल्वे तत्खलु मर्दितं रविजलैर्गुंजार्धमात्रं ददेत्सिद्धोऽयं ज्वरहस्तिदर्पदलने पंचाननोयं रसः ॥ ८० ॥ पथ्यं च देयं दधिभक्त-

युक्तं सिंधूत्थयुक्तं सितया समेतम् । गंधाऽनुलेपं हिमतोयपानं दुग्धं च पेयं शुभदाडिमं च ८१

भाषार्थ–तेलिया मीठा २ भाग, मिर्च ४ भाग, गंधक २ भाग, पारा १ भाग, आकका दुग्ध १२ भाग, सबको लेके खल्वमें डाल मर्दन करै. आधी रत्ती प्रमाणकी गोली. बनावै यह सिद्ध रस हस्तीरूपज्वरको सिंहसमान है ॥ ८० ॥ इसमें दही, भात, सेंधालवण, मिश्री, सुगंधिलेप, शीतल जलपान, यह पथ्य है, तथा दुग्ध पीवै, अनार खावै ॥ ८१ ॥

तथा द्वितीयपंचाननरस ।

सूतं गन्धकचित्रकं त्रिकटुकं मुस्ता विषं त्रैफलं
एतेभ्यो द्विगुणां गुडेन गुटिकां गुंजाप्रमाणां हरेत् ।
कुष्ठाष्टादशवायुशूलमुदरं शोषप्रमेहादिकं रोगानेककरीन्द्रदर्पदलने ख्यातो हि पंचाननः ॥ ८२ ॥

भाषार्थ–पारा, गंधक, चित्रक, सोंठि, मिर्च, पीपरी, नागरमोथा, त्रिफला, ये सब बराबर २ ले इनसे दूना गुड मिला करके, एक २ रत्ती प्रमाणकी गोली बनावै. यह १८ प्रकारके कोढ़, वातशूल, उदररोग, शोष और प्रमेह आदि अनेक रोगरूप हाथियोंके अभिमान नाश करनेको प्रसिद्ध पंचानन (सिंह) है ॥ ८२ ॥

मृतसंजीवनरस ।

म्लेच्छस्य भागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयो मताः ।
द्वौ भागौ टंकणस्यैव भागैकममृतस्य च॥८३॥
तत्सर्वं मर्दयेत्सूक्ष्मं शुष्कं यामं भिषग्वरः ।

शृंगवेराम्बुना देयो व्योषचित्रकसैंधवैः ॥८४॥
गुंजाद्वयमितस्तापं हरत्येष विनिश्चयः ।

भाषार्थ-हिंगुलू ४ भाग, शुद्धजमालगोटा ३ भाग, सुहागा २ भाग, और गिलोय १ भाग ॥ ८३ ॥ इन सबको श्रेष्ठ वैद्य एक प्रहरपर्यन्त मर्दन करै फिर सुखाय, अदरखके रसमें सोंठ, मिर्च, पीपर, चित्रक, सेंधालवण डालकर; खरल करके; रस बना लेवै ॥८४॥ यह रस दो रत्तीप्रमाण खानेसे निश्चय करके तापको हरता है ॥

मृतसंजीवनरससेवनप्रकार ।

घनसारेण युक्तेन चन्दनेन विलेपयेत् ।
विदध्यात्कांस्यपात्रेण जीवयेद्रोगिणं भिषक् ॥ ८५ ॥
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्बिल्वसंयुतम् ।
सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे ॥ ८६ ॥
आमवाते वातशूले गुल्मे प्लीहजलोदरे ।
शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सततज्वरे ॥ ८७ ॥
अग्निमांद्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसेश्वरः ।
मृतसंजीवनं नाम ख्यातोऽयं रससागरे ॥ ८८ ॥

भाषार्थ-कपूरसंयुक्त चंदनका लेप करै. वैद्य काँसेके पात्रमें देवै तो रोगी जीवै ॥ ८५ ॥ पके बेलकी गूदीसंयुक्त भात मठा मिलाय खावै, और महाघोर सन्निपात, त्रिदोष, विषमज्वर ॥ ८६ ॥ आमवात, वातपीडा, वायगोला, प्लीह (तापतिल्ली), शीत तथा दाहपूर्वक विषमज्वर ॥ ८७ ॥ मंदाग्नि, वादी, इन रोगोंमें यह रस देवै तो ये सब रोग नाश हो जाते हैं. यह मृतसंजीवन नाम रस रससागरमें प्रसिद्ध है ॥ ८८ ॥

रविसुंदररस ।

द्विभागतालेन हतं च ताम्रं रसं च गंधं च समानमाहुः । विषं समं तद्द्विगुणं च ताम्रं त्रिसप्तवारेण दिवाकरांशौ ॥ ८९ ॥ विमर्द्य रिष्टस्वरसेन चूर्णं गुंजैकमानं सितया समेतम् । ज्वरांकुशोऽयं रविसुन्दराख्यो ज्वरान्निहन्त्यष्टविधान्समग्रान् ॥ ९० ॥

भाषार्थ-शुद्ध हरताल २ भाग और ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, ये तीनों बराबर ले, बराबर ही विष (तेलिया मीठा) लेवै, विषसे द्विगुण ताम्रभस्म लेवै और आकके रसमें २१ वार ॥ ८९ ॥ मर्दन करके, नींबके रसमें घोट, एक २ रत्तीप्रमाणकी गोली बनावै और १ गोली मिश्रीके साथ खावै तो यह ज्वरांकुश तथा रविसुन्दर रस आठ प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है ॥ ९० ॥

सन्निपातभैरवरस ।

ताम्रगन्धरसश्वेतस्पंदामरिचपूतनाः ।
समीनपित्तजैपालास्तुल्या एकत्र मर्दिताः ॥९१॥
गुंजाचतुष्टयं चास्य नवज्वरहरः परः ।
ज्वरांकुशः सन्निपातभैरवोऽयं प्रकाशितः ॥९२॥

भाषार्थ-ताम्रभस्म, गंधक, पारा, श्वेतस्पंद, मिर्च, हर्रे, मछलीका पित्ता, जमालगोटा शुद्ध किया हुआ, ये सब बरा-

वर लेके मर्दन करै ॥ ९१ ॥ इस रसकी चार रत्तीप्रमाण मात्रा नवीन ज्वरको हरती है. यह ज्वरांकुश सन्निपातभैरवरस इस नामसे प्रकाशित है ॥ ९२ ॥

भस्मेश्वररस ।

भस्म षोडशनिष्कं स्यादारण्योपलकोद्भवम् ।
निष्कत्रयं च मरिचं विषं निष्कं च चूर्णयेत्‌९३॥
अयं भस्मेश्वरो नाम्ना सन्निपातनिकृन्तनः ।
पंचगुंजामितो भक्षेदार्द्रकस्य रसेन च ॥ ९४ ॥

भाषार्थ–अरने उपलोंकी भस्म १६ निष्क, काली मिर्च ३ निष्क, विष (तेलिया मीठा) १ निष्क ॥ ९३ ॥ ये सब लेके मर्दन करै. पाँच रत्तीप्रमाण मात्रा अदरखके रसके साथ खानेसे यह सन्निपातको नाश करनेवाला भस्मेश्वर नाम रस है ॥९४॥

प्रतापलंकेश्वररस ।

अपामार्गस्य मूलस्य चूर्णं चित्रकमूलजैः ।
वल्कलं मर्दयित्वा च रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥९५॥
तेन सूतसमं गन्धमभ्रकं दरदं विषम् ।
टंकणं तालकं चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ ९६ ॥
त्रिदिनं मुशलीकन्दैर्भावयेद्धर्मरक्षितम् । मूषां
च गोस्तनाकारामापूर्य परिढक्कयेत् ॥ ९७ ॥
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा पुटेल्लघु । रसतुल्यं
लोहभस्म मृतं वंगरजस्तथा ॥ ९८ ॥ मधूक-
सारजलदौ रेणुका गुग्गुलुः शिला । चव्यकं च

समांशं स्याद्भागार्धं शोधितं विषम् ॥ ९९ ॥
तत्सर्वं मर्दयेत्खल्वे भावयेद्भिषनीरतः । आतपे
सप्तधा तीव्रे मर्दयेद्वटिकाद्वयम् ॥ १०० ॥ क-
टुत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च । फलत्रय-
कषायेण मुनिपुष्परसेन च ॥ १०१ ॥ समुद्र-
फलनीरेण विजयावारिणा तथा । चित्रकस्य
कषायेण ज्वालामुख्या रसेन च ॥ १०२ ॥
प्रत्येकं सप्तधा भाव्यं तद्वत्पिष्टश्च भावयेत् ।
सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयेत् ॥१०३॥
दिनं विमर्दयित्वाथ रक्षयेत्कूपिकान्तरे । गुंजै-
कं वह्निनीरेण शृंगवेररसेन वा ॥ १०४ ॥ प्रद-
द्याद्रोगिणे तीव्रमोहविस्मृतिशांतये । शस्त्रेण
तालुमाहत्य मर्दयेदार्द्रनीरतः ॥ १०५ ॥ नोद्घ-
टंते यदा दन्तास्तदा कुर्यादमुं विधिम् । सेच-
यन्मंत्रयित्वाथ वारान्कुंभशतैर्मुहुः ॥ १०६ ॥
भोजनेच्छा यदा तस्य जायते रोगिणो यदा ।
दध्योदनं सितायुक्तं दद्यात्तक्रं सजीरकम् ।
॥ १०७ ॥ पाने पानं सितायुक्तं यदीच्छति
तदा ददेत् । एवं कृते च शांतिः स्यात्तापस्य
रसजस्य च ॥ १०८ ॥

भाषार्थ-अपामार्ग (औंगा) और चित्रककी जडकी छाल लेके, जलमें पीसकर, वस्त्रसे छान लेवै ॥ ९५ ॥ तिसके बराबर पारा, गंधक, अभ्रक, हिंगलू, विष, सोहागा हरताल, लेके सबको मिलाय ७ दिन खरल करै ॥ ९ ॥ फिर मुशलीके रसमें ३ दिन खरल करै और घाममें सुखा लेवै और गौके थनके आकार मूषायंत्रमें रखकर, ऊपरसे ढक देवै ॥ ९७ ॥ अनन्तर ७ कपरमिट्टी करके, लघुपुटमें रखकर फूँक देवै, इसमें पारेके बराबर लोहभस्म, बंगभस्म, सीसाभस्म ॥ ९८ ॥ मुलहठी, नागरमोथा, रेणुका, गूगल, मैनशिल, नागकेशर और आधा भाग शुद्ध विष ॥ ९९ ॥ इन सबको खल्वमें डाल घोटै फिर सिंधियाविषके जलसे दो २ घड़ी घोट २ कर सातवार धूपमें रख, सुखा ले ॥ १०० ॥ अनंतर त्रिकुटाका काढा और धतूरेके रससे तथा त्रिफलाका काढा और अगस्तियाके फूलके रससे ॥ १०१ ॥ फिर समुद्रफेनके रससे, भाँगके रससे, चित्रकके काढ़ासे और ज्वालामुखीके रससे ॥ १०२ ॥ इन प्रत्येकसे सात२ भावना देवै और घोट पीस सबके बराबर विष डाल देवै ॥ १०३ ॥ फिर एक दिनपर्यंत घोटकर, काचकी शीशीमें भर रक्षापूर्वक रख छोड़ै, फिर १ रत्तीप्रमाण मात्रा चित्रक वा अदरखके रसमें ॥ १०४ ॥ मोह (मूर्च्छा) और विस्मृतिशांतिके अर्थ रोगीको देवै अथवा तालुयेको शस्त्रसे चीरकर, अदरखके रससे इसको भर दे ॥१०५ ॥ जो इसपर भी दांतन खुलै तो यह विधि करै कि उस रोगीके शिरपर १०० घड़ा जलके डालै ॥ १०६ ॥ और जो उस रोगीको भोजनकी इच्छा होवै तो दहीभातमें मिश्री मिलाय, अथवा छाछमें जीरा मिलाय देवै ॥ १०७ ॥ जो जलकी इच्छा हो तो मिश्रीका शर्बत देवै. इसप्रकार करनेसे ताप और रस खानेसे उत्पन्न गरमीकी शांति होती है ॥ १०८ ॥

प्रतापलंकेश्वररससेवनप्रकार ।

सचन्द्रचन्दनरसालेपनं कुरु शीतलम् ।
तूलिकां मल्लिकाजातीपुन्नागबकुलावृताः ॥१०९॥
विधाय शय्यां तत्रस्थं लेपयेच्चन्दनैर्मुहुः ।
हावभावविलासोक्तिकटाक्षचंचलेक्षणैः ॥ ११०॥
पीनोत्तुंगकुचोत्पीडैः कामिनीपरिरंभणैः ।
रम्यवीणानिनादाद्यैर्गायनैः श्रवणामृतैः॥१११॥
पुण्यश्लोकपुराणानां कथासंभाषणैः शुभैः ।
एभिः प्रकारैस्तापस्य जायते शमनं परम्॥११२॥
वर्जयेन्मैथुनं तावद्यावन्नो बलवान्भवेत ।
दद्याद्वातादिरोगेषु सिंधुगुग्गुलवह्निभिः ॥११३॥
दद्यात्कणामाक्षिकाभ्यां कामलाक्षयपांडुषु ।
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योजयेत् ।
अयं प्रतापलंकेशः सन्निपातनिकृन्तनः॥११४॥

भाषार्थ-तापशांत्यर्थ अन्य भी ये उपाय हैं कि कपूरसमेत चंदनका लेपन शीतल करै. वेला, चमेली, और पुन्नाग, मौलश्री इनके फूलोंकी ॥ १०९ ॥ शय्या बनाय, उसपर रोगीको पौढ़ाय फिर चन्दनका लेप करै और हावभाव विलास तथा चंचल दृष्टि कटाक्षसे ॥ ११० ॥ और नवीन कठिन कुचोंके

मलनेसे तथा कामिनियोंके आलिंगनसे, मधुर वीणा आदिका शब्द सुननेसे, कानोंका आनन्ददायक गान सुननेसे ॥ १११ ॥ पुराणोंकी कथा सुननेसे, इस प्रकार करनेसे भी तापशांति होती है ॥ ११२ ॥ जबतक शरीरमें बल नहीं आवै तबतक मैथुनको त्याग देवै, वातादि रोगोंमें सेंधालवण, गुग्गुल, चित्रकके साथ ॥ ११३ ॥ देवै, और कामला, क्षयी, पांडु, इन रोगोंमें शहतके साथ देवै. जैसा रोग हो उसमें उसी अनुपानके साथ देवै. यह प्रतापलंकेश नाम रस सन्निपातका नाश करनेवाला है ११४॥

महोदधिरस ।

सूतकं गन्धकं लोहं विषं चापि वराटकम् ।
ताम्रकं वंगभस्माथ अभ्रकं च समांशकम् ११५॥
त्रिकटुं पत्रमुस्तं च विडंगं नागकेशरम् ।
रेणुकामलकं चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ ११६ ॥
एषां च द्विगुणो भागो मर्दयित्वा प्रयत्नतः ।
भावनात्रयदातव्या गजपिप्पलिकांबुना ॥११७॥
मात्रा चणकमाना तु वटिकेयं प्रकीर्तिता ।

भाषार्थ–शुद्धपारा, शुद्धगंधक, लोहसार, विष (तेलिया मीठा), कौड़ी, ताम्रभस्म, वंगभस्म, अभ्रक, ये बराबर भाग लेवै ॥ ११५ ॥ त्रिकुटा (सोंठि, मिर्च, पीपरि,) पत्रज, नागरमोथा, वायविडंग, नागकेशर, रेणुका, आंवला, पीपलामूल, ॥ ११६ ॥ यह दो २ भाग लेके यत्नपूर्वक खरल करै और गजपीपरिके जलकी ३ भावना देवै ॥ ११७ ॥ एक चनाप्रमाणकी मात्रा गोली यह श्रेष्ठ कही है ॥

श्वासं हन्ति तथा कासमर्शांसि च भगन्दरम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कर्णरोगं कपालिकम् ॥११८॥
हरेत्संग्रहणीरोगमष्टौ च जठराणि च ।
प्रमेहविंशतिं चैव अश्मरीं च चतुर्विधाम् ॥ ११९ ॥
न चान्नपाने परिहारमस्ति न शीतवाताध्वनि मैथुनेच
यथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत्कांचनराशिगौरः॥

भाषार्थ–यह महोदधि, श्वास, खांसी, बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, कुक्षिशूल, कर्णरोग, मस्तकरोग, इन रोगोंको दूर करता है ॥ ११८ ॥ और संग्रहणी रोग, ८ प्रकारके उदररोग, २० प्रकारका प्रमेह, ४ प्रकारकी पथरी, इनको नाश करता है ॥ ११९॥ इसके सेवनमें, कोई प्रकारका अन्नपान, शर्दी, गरमी, वायु, मैथुन, इनकी रोकटोक, नहीं है तथा यथेच्छापूर्वक वर्ताव करनेपर भी मनुष्य सुवर्ण समान गोरा हो जावै ॥ १२० ॥

उन्मत्तरस ।

रसं च गन्धकं चैव धत्तूरफलजैर्द्रवैः ।
मर्दयेद्दिनमेकं च तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत्॥१२१॥
उन्मत्ताख्यरसो नाम सन्निपातनिकृन्तनः ।
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति१२२
सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति देहिनम्॥१२३॥

भाषार्थ–शुद्ध पारा तथा गंधक समान भाग लेके, धतूरेके फलके रसमें खरल करै. एक दिन खरल करने उपरांत उसके बराबर त्रिकुटा (सोंठि, मिर्च, पीपरि,) उसमें डालै ॥१२१॥

यह उन्मत्तनाम रस सन्निपातको नाश करनेवाला है, उसने क्या धर्म नहीं किया और किससे सत्कारके योग्य नहीं होता अर्थात् सब धर्म करनेवाला और सबसे पूज्य होता है ॥ १२२ ॥ जो सन्निपात समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यका उद्धार करता है ॥ १२३ ॥

संज्ञाकरणरस।

वचा रसोनं कटुकं सैंधवं बृहतीफलम्।
रुद्राक्षं मधुसारं च फलं सामुद्रिकामृतम्॥१२४॥
समभागानि चैतानि अर्कक्षीरेण भावयेत्।
भावयेन्मत्स्यपित्तेन त्रिवारं चूर्णयेत्ततः॥१२५॥
धमनं कथितं श्रेष्ठं सन्निपाते सदारुणे।
कफोल्बणेऽतिवाते च अपस्मारे हलीमके॥१२६॥
शिरोरोगे कर्णरोगे नेत्ररोगे विधानतः।
दापयेतघ्राणछिद्राभ्यां संज्ञाकरणमुत्तमम्॥१२७॥

भाषार्थ—वच, लहसन, कुटकी, सेंधालवण, बड़ी कटेलीका फल, रुद्राक्ष, मुलहटी, समुद्रफल और शुद्धबिष ॥ १२४ ॥ यह सब बराबर २ लेके आकके दूधमें भावना देवै फिर मछलीके पित्तेकी ३ भावना देके, पीसकर, चूर्ण करै ॥१२५॥ दारुण सन्निपातमें इसका धमन श्रेष्ठ कहा है; और कफके आधिक्यमें, वातमें, मृगीमें, हलीमक (पीनस) रोगमें ॥ १२६ ॥ शिरोरोगमें, कानरोगमें, नेत्ररोगमें, यह उत्तम संज्ञाकरण नाम रस नासिकाके दोनों छिद्रोंके द्वारा विधिपूर्वक सुंघावै ॥१२७॥

चन्द्रशेखररस।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मरिचं टंकणं तथा।
चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत्१२८
त्रिदिनं भावयेत्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः।
द्विगुंजमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं पुनः॥१२९॥
तक्रभक्तं च वृंताकं पथ्यं तत्र निधापयेत्।
त्रिभिर्दिनैर्जयेत्पित्तं तथा श्लेष्मज्वरं जयेत्॥१३०॥

भाषार्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, मिर्च, सोहागा, यह चारौ बराबर २ ले, चारौंके बराबर मिश्री मिलाय, मछलीके पित्तेमें मर्दन करै ॥ १२८ ॥ तीनदिन मर्दन करनेसे यह चन्द्रशेखर रस बनजाता है. दो रत्तीप्रमाण अदरखके रसमें देवै. ऊपरसे शीतल जल देवै ॥ १२९ ॥ इसमें पथ्य, मठा और भात तथा बैंगनका शाक देवै, तीन दिन खानेसे पित्तविकारको जीतै और कफज्वरका नाश करै ॥ १३० ॥

कनकसुन्दररस।

हिंगुलं मरिचं गंधं पिप्पली टंकणं विषम्।
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयारसैः॥१३१॥
मर्दयेद्यामभात्रं तु चणमात्रा वटी कृता।
भक्षणाद्ग्रहणीं हन्याद्रसः कनकसुन्दरः॥१३२॥
अग्निमांद्यं ज्वरं तीव्रमतिसारं च नाशयेत्।
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गवाजं तक्रमेव च॥१३३॥

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवम् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम्॥१३४॥

भाषार्थ–हिंगूल, स्याह मिर्च, गंधक, पीपरि, सोहागा, तेलिया मीठा, धतूरेके बीज इन सबको बराबर भाग लेके, विजया (भांग) के रसमें ॥ १३१ ॥ एकप्रहर खरल करै फिर चनाबराबर गोली बनावै. इसके खानेसे संग्रहणी दूर हो जावै. यह कनकसुंदर रस है ॥ १३२ ॥ मन्दाग्नि, तीव्रज्वर, अतीसार, इन रोगोंको नाश करता है. इसपर दही, भात और गौ वा बकरीका तक्र (छाछ) पथ्य देवै ॥ १३३ ॥ संग्रहणी दोषवालोंको तक्र (छाछ) दीपन है, और लघु ग्राही है. इसमें जो पथ्य है सो मधुर और परिपक होनेसे पित्तका कोप नहीं करता है१३४

रामबाणरस ।

सूतकं गन्धकं चैव शाणं पाणं च गृह्यते ।
दरदं टंकणं चैव मरिचं च विषं तथा ॥ १३५ ॥
चतुरोषधयः सर्वे द्विद्विटंकं च कथ्यते ।
जैपालबीजं संयोज्यं टंकं च दिक्प्रमाणतः॥१३६॥
तिंतिडीरससंमर्द्या गुंजामात्रा वटीकृता ।
तुलसीपत्रसंयुक्ता सर्वे च विषमज्वराः ॥१३७॥
एकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ।
शीतदाह्यादिकं सर्वं विनाशयाति वेगतः॥१३८॥
पथ्यं दुग्धोदनं देयं दधिभक्तं च भोजनम् ।
रामबाणरसो नाम सर्वरोगान्प्रणश्यति ॥१३९॥

भाषार्थ–शुद्धपारा १ टंक, और शुद्धगंधक १ तोला, लेवै और शिंगरफ, सोहागा, कालीमिर्च, विष ॥ १३५ ॥ यह सब चारौ औषध २ दो टंक और जमालगोटाके बीज १० टंक प्रमाण मिलाय देवै ॥ १३६ ॥ फिर इमलीके रसमें खरल करके १ रत्ती प्रमाणकी गोलियां बनालेवै, सो तुलसीके साथ खावै. यह रस सम्पूर्ण विषमज्वरोंको ॥ १३७ ॥ और एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहि (तिजारी), चातुर्थिक (चौथिया), शीत, दाह आदि सब रोगोंको शीघ्रही नाश कर देता है ॥ १३८ ॥ इसमें पथ्य, दूधभात, वा दहीभात भोजन देवै. यह रामबाण नाम रस सब रोगोंको नाश करता है ॥ १३९ ॥

चन्द्रप्रभावटी ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं मृतं स्वर्णं समं समम् ।
तुल्यं च खदिरं सारं तथा मोचरसं क्षिपेत् ॥ १४० ॥
द्रवैः शाल्मलिमूलोत्थैर्मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ।
चणमात्रां वटीं भक्षेन्निष्कैकं जीरकैः सह ॥ १४१ ॥
त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं नाशयेद्ध्रुवम् ।
चन्द्रप्रभा वटी नाम सर्वरोगविनाशिनी ॥ १४२ ॥

भाषार्थ–पाराभस्म, ताम्रभस्म, सुवर्णभस्म, यह बराबर २ लेवै और समानही खैरसार, मोचरस, डालै ॥ १४० ॥ और सब सेमरकी जडके रसमें दो प्रहरपर्यन्त खरल करै, फिर चनाबराबर गोलियां बनावै, सो १ गोली तीन मासे जीरेके साथ ॥ १४१ ॥ खावै, तो तीनों दोषोंसे उत्पन्न अतीसार और ज्वरको निश्चय नाश करै. यह चंद्रप्रभा नामावटी सब रोगोंको नाश करनेवाली है ॥

चित्राम्बररस ।

शुद्धसूतं मृतं चाभ्रं गन्धकं मर्दयेत्समम् ।
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते यामं मृद्वग्निना पचेत् ॥१४३॥
चालयेल्लोहदंडेन अवतार्य विभावयेत् ।
त्रिदिनं जीरकैः क्वाथैर्माषैकं भक्षयेन्नरः ॥ १४४ ॥
रसश्चित्राम्बरो नाम ग्रहणीं रक्तसंयुताम् ।
शमयेदनुपानेन आमशूलं प्रवाहिकाम् ॥ १४५ ॥

भाषार्थ–शुद्धपारा, अभ्रकभस्म, गन्धक, इनको बराबर भाग लेके मर्दन करै. अनंतर घीसे लिप्त कियेहुए लोहेके पात्रमें एकप्रहर धीमी अग्निसे सेकै ॥ १४३ ॥ लोहेकी कलछीसे चलावै फिर उतारकर तीनदिन जीरेके काढ़ासे खरल करै. एकमासा प्रमाण मनुष्य खावै ॥ १४४ ॥ यह चित्रांबरनाम रस संग्रहणी जो खूनमिले दस्तके साथ हो उसको और अनुपानके साथ खाय तो आम, शूल, प्रवाहिका इन रोगोंको नाश करै ॥ १४५ ॥

ग्रहणीकपाटरस ।

तारमौक्तिकहेमायःसारश्चैकैकभागिकाः ।
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेद्दिनम् १४६॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृंगैस्ततः क्षिपेत् ।
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ १४७ ॥
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा ।
लोध्रप्रतिविषामुस्ताधातकीन्द्रयवामृताः ॥ १४८ ॥
प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावनास्य त्रिधा त्रिधा ।

माषमात्ररसो देयो मधुना मरिचैः सह ॥ १४९ ॥
हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणीं पंचधामपि ।
कपाटग्रहणीऽनाम रसोऽयं चाग्निदीपनः ॥ १५० ॥

भाषार्थ–चांदी, मोती, सोना, लोहा, इन सबकी भस्म एक २ भाग, और शुद्धगंधक २ भाग, पारा ३ भाग, यह सब लेके १ दिनतक ॥ १४६ ॥ आंवलाके रससे मर्दन करै फिर मृग (हिरण) के सींगमें भरदे और कपरौटी करके गजपुटकी मध्यम आंच देवै फिर निकालकर ॥ १४७ ॥ बला (खरैंटी) के रसमें सातवार मर्दन करै, और आंगोंके रसमें तीन वार, तथा लोध, अतीस, मोथा, धायके फूल, इन्द्रयव, और गिलोय१४८॥ इन प्रत्येकके रसमें तीन २ भावना देवै. इसकी मात्रा एक मासा-प्रमाण शहत और मिर्चके साथ देवै ॥ १४९ ॥ यह सब प्रकारके अतीसार रोगोंको और पांच प्रकारकी संग्रहणीको नाश करता है तथा यह ग्रहणीकपाट नाम रस पेटकी अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ १५० ॥

वज्रकपाटरस ।

मृतसूताभ्रकं गन्धं यवक्षारं सटंकणम् ।
अग्निमंथं वचां कुर्यात्सूततुल्यामिमां सुधीः ॥१५१॥
ततो जयंतीजंबीरभृंगद्रावैर्विमर्दयेत् ।
त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् ॥१५२॥
लोहपात्रे च लवणमधोपरि निधापयेत् ।
अधोवह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं च तदुद्धरेत् ॥ १५३ ॥
रसतुल्यामतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा ।

कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेच्चैव सप्तधा ॥ १५४ ॥
ध.तकीन्द्रयवामुस्तालोध्रबिल्वगुडूचिकाः ।
एतद्रसैर्भावयित्वा वारैकं च विशोषयेत् ॥ १५५ ॥
रसवज्रं कपाटाख्यं माषैकं मधुना लिहेत् ।
वह्निशुंठीविडंगापि बिल्वं च लवणं समं ॥ १५६ ॥
पिबेदुष्णांबुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ।

भाषार्थ-मराहुआ पारा और अभ्रक तथा गंधक, जवाखार, सोहागा, अरणी, बच, ये सब पाराके समान भाग लेवै ॥ १५१ ॥ अनंतर जयंती, जंभीरी और भंगराके रसमें सबको तीनदिनपर्यन्त खरल करै फिर गोला बनाय, सुखाय लेवै ॥ १५२ ॥ लोहेके पात्रमें उसको रखकर, नीचेऊपर लवण भर देवै. नीचे उसके धीमी आंच आधे प्रहरपर्यंत देवै फिर उतार लेवै ॥ १५३ ॥ उपरांत पाराके बराबर अतीस तथा मोचरस डालै और कैथा भांगके रसकी सात २ भावना देवै ॥ १५४ ॥ फिर धायके फूल, इन्द्रजौ, मोथा, लोध, बेल, गिलोय, इनके रसमें एक २ वार भावना देकर सुखालेवै ॥१५५॥ यह वज्रकपाट नाम रस एक मासाप्रमाण शहतके साथ लेवै, ऊपरसे चित्रक, सोंठ, वायविडंग, बेल, लवण, यह सब समान लेके ॥ १५६ ॥ गरमजलके साथ पीवै तो सबप्रकारकी संग्रहणीको नाश करै ॥

संग्रहणीकपाटरस ।

मुक्ता सुवर्णं रसगंधटंकणं घनं कपर्दोऽमृत-
तुल्यभागम् । सर्वैः समं शंखकचूर्णयुक्तं
खल्वे च भाव्योऽतिविषाद्रवेण ॥ १५७ ॥

गोलं च कृत्वा मृतकर्परस्थं संरुध्य चाग्नौ
विपचेद्दिनार्धम् । सुस्वांगशीतो रस एष
भाव्यो धत्तूरवह्नि मुशलीद्रवैश्च ॥ १५८ ॥
लोहस्य पात्रे परिपाचितश्च सिद्धो भवेत्सं-
ग्रहणीकपाटः । वातोत्तरायां मरिचाज्य-
युक्तः पित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः ॥१५९॥
श्लेष्मोत्तरायां विजयारसेन कटुत्रयेणापि
युतो ग्रहण्याम् । क्षये ज्वरेऽप्यर्शसि बिड्वि-
कारे सामाऽतिसारेऽरुचिपीनसे च ॥ १६० ॥
मोहे च कृच्छ्रे गतधातुवृद्धौ गुंजाद्वयं चापि
महामयघ्नम् ॥ १६१ ॥

भाषार्थ-मोती, सुवर्ण, पारा, गंधक, सोहागा नागरमोथा कौडी, यह सब शुद्ध किये हुये समान भाग लेवै, और सबके बराबर शंखकी भस्म मिलाय अतीसके रसकी भावना देवै॥१५७॥ फिर गोली बनाकर मिट्टीके पात्रमें रख, संपुट करके, आधे दिनपर्यन्त अग्नि देवै. स्वांगशील होजानेपर उतार लेवै फिर धतूरा, चीता और मूशलीके रसकी भावना देवै ॥ १५८ ॥ फिर लोहेके पात्रमें पचानेसे यह ग्रहणीकपाट सिद्ध होता है. सो वातसंग्रहणीमें मिर्च और घीके साथ, पित्तज संग्रहणीमें शहत पीपरिके साथ ॥ १५९ ॥ कफज संग्रहणीमें भांगके रसके साथ त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपरि,) के साथ तथा क्षयी ज्वर, बवासीर, मलविकार, आमातिसार, अरुचि, पीनस ॥ १६० ॥

मोह, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षीण, इन सब रोगोंमें २ रत्ती प्रमाण मात्रा देवै. बड़े बड़े रोगोंको यह रस नाश करनेवाला है ॥ १६१ ॥

विजयभैरवरस ।

सूतकं गन्धकं लोहं विषं चित्रकमभ्रकम् ।
विडंगं रेणुका मुस्ता एलाकेशरपत्रकम् ॥ १६२ ॥
फलत्रयं त्रिकटुकं शुल्बभस्म तथैव च ।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ १६३ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ।
सूतायां ग्रहणीमांद्ये शूले पांड्वामये तथा ॥ १६४ ॥
हस्तपादादिरोगेषु गुटिकेयं प्रशस्यते ।

भाषार्थ–शुद्धपारा, शुद्धगंधक, लोहभस्म, विष, चित्रक, अभ्रकभस्म, बायबिडंग, रेणुका, नागरमोथा, इलायची, नागकेशर, तेजपात ॥ १६२ ॥ त्रिफला, त्रिकुटा, ताम्रभस्म, इन सबको समानभाग लेके, सबसे दूना गुड़ मिलाय देवै ॥ १६३ ॥ फिर खरल कर गोलियां बनालेवै. कास (खांसी), श्वास, क्षयी, बायगोला, प्रमेह, विषमज्वर, प्रसूता स्त्रीकी संग्रहणी, शूल, पांडु, तथा ॥ १६४ ॥ हस्त पाद आदि रोगोंमें यह गुटिका उत्तम है ॥

आनन्दभैरवस ।

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टंकणं कणा ॥ १६५ ॥
चूर्णयेत्समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः ।
गुंजैकं च द्विगुंजं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् ॥ १६६ ॥
मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलत्वचम् ।
चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषस्याऽतिसारजित् ॥ २६८ ॥

दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गव्याजं तक्रमेव च ।
पिपासायां जलं शीतं हिता च विजया निशि १६८

भाषार्थ–हिंगलू, बत्सनाभ, मिर्च, सोहागा, पीपरि, ॥ १६९ ॥ इन सबको समान भाग लेके चूर्ण करै यह आनन्दभैरवरस १ रत्ती वा २ रत्ती बलाबल जानकर लेवै ॥ १६६ ॥ ऊपरसे कुड़ाके फलके बक्कलका चूर्ण १ कर्ष प्रमाण शहतके साथ चाटै तो त्रिदोषज अतीसारको नाश करै ॥ १६७ ॥ और दहीभातका पथ्य देवै, एवं गौ बकरीका मठा देवै, प्यास लगनेपर ठंढा जल और रात्रिमें विजया (भांग) हितकारी है ॥ १६८ ॥

मेघाडम्बररस ।

तंदुलीयजलैः पिष्टं सूततुल्यं च गन्धकम् ।
अंधमूषागतं पच्याद्भूधरे भस्मतां नयेत् ॥ १६९ ॥
दशमूलकषायेण भावयेत्प्रहरद्वयम् ।
गुंजाद्वयं हरत्याशु हिक्कां कासं ज्वरं तथा १७० ॥
अनुपानेन दातव्यो रसोऽयं मेघडम्बरः ।

भाषार्थ–पारा और गंधक बराबर २ लेके चौलाईके रसमें पीसै फिर अंधमूषामें रख, भूधरयंत्रद्वारा पचावै. जब भस्म होजावै ॥ ६९ ॥ तब दशमूलके काढ़ामें २ प्रहर भावना देवै, दो रत्तीप्रमाण मात्रा दे तो हिचकी, खांसी तथा ज्वरको शीघ्र नाश करता है ॥ १७० ॥ यह मेघडम्बर नाम रस अनुपानके साथ देवै ॥

त्रिगुणाख्यरस ।

गंधकात्त्रिगुणं सूतं शुद्धं मृद्वग्निना पचेत् ॥ १७१ ॥
ततोऽवतार्य संचूर्ण्यचूर्णतुल्याभयायुतम् ।

सप्तगुंजामितं खादेद्वर्धयेच्च दिने दिने ॥ १७२ ॥
गुंजैकं च क्रमेणैव यावत्स्यादेकविंशतिः ।
क्षीराज्यशर्करामिश्रं शाल्यन्नं पथ्यमाचरेत् ॥ १७३ ॥
कंपवातप्रशान्त्यर्थं निर्वाते निवसेत्सदा ।
त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना त्रिपक्षात्कंपवातनुत्॥१७४॥

भाषार्थ-गंधक और गंधकसे दूना शुद्ध पारा, धीमी आंचसे पचावै ॥ १७१ ॥ फिर उतारकर चूर्ण करै और चूर्णके बराबर हर्रका चूर्ण मिलावै, सात रत्ती प्रमाण खावै फिर एक २ रत्ती प्रतिदिन बढ़ावै ॥ १७२ ॥ जबतक २१ रत्तीतक बढ़े, दुग्ध, घी, शकर, चावल, इनका पथ्य लेवै ॥ १७३ ॥ कंपवातशांतिके अर्थ सदा ऐसे स्थानमें वास करै जहां वायु न लगै, यह त्रिगुणाख्य नाम रस तीन पक्षमें कंपवातको हरता है॥१७४॥

वातारिरस ।

सूतहाटकवज्राणि तारं लोहं च माक्षिकम् ।
तालं नीलांजनं तुत्थमब्धिफेनं समांशकम् ॥१७५॥
पंचाना लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत् ।
वज्रक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पुटेत् ॥ १७६ ॥
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ।
पिप्पलीमूलजं क्काथं सकृष्णामनुपाययेत् ॥ १७७ ॥
सर्ववातविकारांस्तु निहंत्याक्षेपकादिकान् ।
रसः सर्वत्र विख्यातो नाम्ना वातरिपुः स्मृतः१७८॥

भाषार्थ-पाराभस्म, सुवर्णभस्म, हीराभस्म, चांदीभस्म, लोहसार, सोनामाखी भस्म, हरताल, नीलांजन, नीलाथोथा, समुद्रफेन यह सब बराबर लेवै ॥ १७५ ॥ और पांचौ लवण १ भाग लेके सबको थूहरके दूधमें एकदिन मर्दन करै फिर भूधर यंत्रमें पचावै ॥ १७६ ॥ एक मासेकी गोली अदरखके रसमें बनाय, अदरखके रससे लेवै तो वातविकारको नाश करै, तथा पिपलामूलका काढ़ा पीपरि मिलायके गोली लेवै ॥ १७७ ॥ तो सब प्रकारके वातविकारोंको और आक्षेपादिकोंको नाश करता है ऐसा यह सर्वत्र प्रसिद्ध वातारि नाम रस है ॥ १७८ ॥

वातगजांकुशरसः ।

मृतं लोहं सूतगंधं ताम्रतालकमाक्षिकम् ।
पथ्या शृंगीविषं त्र्यूषमग्निमंथं च टंकणम् ॥ १७९ ॥
तुल्ये खल्वे दिनं मर्द्य मुंडीनिर्गुंडजैर्द्रवैः ।
द्विगुंजां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये ॥ १८० ॥
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजांकुशः॥१८१॥

भाषार्थ-मराहुआ लोहा, पारा, गंधक, तांबा, हरताल तथा सोनामाखीभस्म, ककरासिंगी, तेलिया मीठा, त्रिकुटा, अरणी, सोहागा, ॥ १७९ ॥ यह सब बराबर लेके १ दिन खल्वमें डाल, मर्दन करै गोरखमुंडी और निर्गुंडीके रससें, फिर दो रत्तीप्रमाणकी गोली सबप्रकारके वातव्याधिशांतिके अर्थ खावै ॥ १८० ॥ तो सब प्रकारके साध्य और असाध्य वातविकारको शीघ्र नाश करता है. यह वातरूप हाथीको अंकुशसमान वातगजांकुश नाम रस है ॥ १८१ ॥

अम्लपित्तनाशक रस ।

मृतसूताभ्रलोहाना तुल्यां पथ्यां विचूर्णयेत् ।
माषत्रयं लिहेत्क्षौद्रे अम्लपित्तप्रशातये ॥ १८२ ॥

भाषार्थ–मरा पारा, अभ्रक, लोहसार, यह बराबर लेवै और सबके बराबर हर्र लेके खरल करै. यह रस अम्लपित्तशांतिके अर्थ शहतके साथ ३ माशे चाटै ॥ १८२ ॥

अग्निकुमाररस ।

सूतं गन्धं च नागानां चूर्णं हंसांघ्रिवारिणा ।
दिनं घर्मे विमर्द्याथ गोलिकां तस्य योजयेत्१८३
काचकूप्यां च संवेष्ट्य तां त्रिभिर्मृत्पुटैर्दृढम् ।
मुखं संरुध्य संशोष्य स्थापयेत्सिकताह्वये।१८४।
सार्धं दिनं क्रमेणाग्निं ज्वालयेत्तदधस्ततः ।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य षडंशेनामृतं क्षिपेत्।१८५।
मरिचान्यर्धभागेन समं वास्याथ मर्दयेत् ।
अयमग्निकुमाराख्यो रसो मात्रास्य रक्तिका १८६
ताम्बूलीरससंयुक्तो हन्ति रोगानमूनयम् ।
वातरोगान् क्षयं श्वासं कासं पांडुकफोल्बणम्१८७
अग्निमांद्यं सन्निपातं पथ्यं शाल्यादिकं लघु ।
जलयोगप्रयोगोपि शस्तस्तापप्रशांतये ॥१८८॥

भाषार्थ–पारा, गंधक, शीशा, इनके चूर्णको हंसपदीके रसमें १ दिनतक घाममें खरल करै फिर उसकी गोली बनाय लेवै ॥ १८३ ॥ और कांचकी कुप्पीमें भरकर, कपड़ा लपेट, मिट्टीके तीन पुट लगावै, फिर अच्छे प्रकार पुष्टतासे उसके मुखको बंदकर सुखाय लेवै और वालूके बीचमें रख देवै ॥१८४॥ क्रमसे ६ प्रहरतक, (मंद, मध्यम, प्रबल,) आंच उसके नीचे करै, फिर स्वांगशीतल होजानेपर उतारलेवै और छठा भाग विष (तेलिया मीठा) उसमें डाल देवै ॥ १८५ ॥ फिर आधा भाग वा समानभाग कालीमिर्च मिलाय मर्दन करै यह अग्निकुमारनाम रस १ रत्तीप्रमाण ॥ १८६ ॥ पानके रसके साथ खाय तो इन रोगोंको नाश करता है, वातरोगोंको, क्षयको, श्वास, और खांसीको, पांडुरोगको, कफकी अधिकताको ॥ १८७ ॥ मंदाग्निको, सन्निपातको और इसके सेवनमें चांवलआदि हलका भोजन पथ्य है और जलका प्रयोग भी तापकी शांतिके अर्थ श्रेष्ठ है ॥ १८८ ॥

लीलाविलासरस ।

रसो रविर्व्योमबलिः सुलोहं धात्र्यक्षनीरै-
स्त्रिदिनं विमर्द्य । तद्वल्पघृष्टं मृदु मार्कवेण
संमर्दयेदस्य च वल्लयुक्तम् ॥ १८९॥ हन्त्य-
म्लपित्तं मधुनावलीढं लीलाविलासो रसरा-
ज एषः । दुग्धं सकूष्माण्डरसं सधात्रीफलं
शनैस्तत्ससितं भजेद्वा ॥ १९० ॥

भाषार्थ–शोधा हुआ पारा, तांबाकी भस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, गन्धक, इन सबको आंवलाके रसमें ३ दिन खरल करै, फिर भंगराके रसमें घोटकर चार रत्तीप्रमाण सेवै ॥१८९॥ यह लीलाविलास रस शहतके साथ खाय तो अम्लपित्तको

नाश करता है, तथा दूध और कुम्हेड़ेके रससे, वा आंवलाके साथ, वा मिश्रीके साथ खावै ॥ १९० ॥

मंथानभैरवरस ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगु पुष्करमूलकम् ।
सैंधवं गन्धकं तालं टंकणं चूर्णयेत्समम् ॥ १९१ ॥
पुनर्नवादेवदारुनिर्गुंडीतंडुलीयकैः ।
तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ १९२ ॥
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रे रसो मंथानभैरवः ।
कफरोगप्रशान्त्यर्थं निंबक्वाथं पिबेदनु ॥ १९३ ॥

भाषार्थ-पाराकी भस्म, ताम्रभस्म, हींग, पुष्करमूल, सेंधालवण, गन्धक, हरताल, सोहागा, इनको बराबर लेके पीस लेवै ॥१९१ ॥ फिर, सांठी, देवदारु, निर्गुंडी, चौलाई, कुटकी, यह तोरईके रसमें १ दिन अच्छीतरह खरल करै ॥ १९२ ॥यह मंथानभैरव रस १ मासा प्रमाण शहतमें चाटै. ऊपरसे नींबका काढ़ा पीवै तो कफरोगशांति होवै ॥ १९३ ॥

लघुअग्निकुमाररस ।

टंकणं रसगंधौ च समभागं त्रयो विषम् ।
कपर्दी सर्जिकाक्षारं मागधी विश्वभेषजम् ॥ १९४ ॥
पृथक्पृथक्कर्षमात्रं त्वष्टभागं मरीचकम् ।
जम्बीराम्लैर्दिनं पिष्टं भवेदग्निकुमारकः ॥ १९५ ॥
विषूचीशूलवातादिवह्निमांद्यप्रशान्तये ।

भाषार्थ-सोहागा, पारा, गंधक, यह बराबर २ ले और इन तीनोंके बराबर विष (तेलिया मीठा) लेवै, तथा कौड़ी,

सज्जीखार, पीपरि, सोंठि ॥ १९४ ॥ यह चारों पृथक् २ एक २ कर्ष और स्याह मिर्च ८ भाग लेवै. इन सबको जंभीरी और इमलीके रसमें १ दिन खरल करै. यह अग्निकुमार रस होताहै ॥ १९५ ॥ विषूचिका (हैजा), शूल, वातविकार आदि रोग, और मंदाग्नि इन रोगोंकी शांतिके अर्थ उत्तम है ।

क्रव्यादनामरस ।

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्बायसी चार्धपलप्रमाणे । संचूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगादेरंडपत्रेषु निवेशनीयम् ॥ १९६ ॥ पिष्ट्वाऽथ तां पर्पटिकां निदध्याल्लोहस्य पात्रे वरपूतमस्मिन्। जंबीरजं पक्करसं पलानां शतं तलेऽस्याऽग्निमथाम्लमात्रम् ॥ १९७ ॥ जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सपंचकोलोद्भववारिपूरैः । सवेतसाम्लैः शतमत्र योज्यं समं रजष्टंकणजं सुभ्रष्टम्॥१९८॥ विडं तदर्धं मरिचं समं च तत्सप्तधार्द्रं चणकाम्लवारा । क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसः सुमंथानकभैरवोक्तः ॥ १९९ ॥ माषद्वयं सैंधवतक्रपीतमेतस्य धन्यैः खलु भोजनान्ते । गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्टीकृतानि खाद्यानि फलानि वेगात् ॥ २०० ॥ नाम्नातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रयत्नात् २०१॥

भाषार्थ–पारा १ पल (४ तोले), गंधक२पल, ताम्रभस्म २ तोले, लोहभस्म २ तोले, इन सबको मिलाय पीसै और कुछ आंच देके अंडेके पत्तोंमें रख देवै ॥ १९६ ॥ फिर उत्तम और साफ लोहपात्रमें रख पर्पटीके समान करै फिर पकी जंभीरीका रस १०० पल डाल देवै उसके नीचे धीमी अग्नि देवै ॥ १९७ ॥ जब पचकर सूखजाय तब पचास पल पंचकोलका काढ़ा तथा ५० पल अमिलतासका काढ़ा मिला देवै, फिर सुहागाका फूला ८ तोला ॥ १९८ ॥ और ४ तोले बिड लवण, उतनी ही स्याह मिर्च मिलावै फिर चनाके खारकी सात भावना देवै. यह सुमंथानभैरवका कहाहुआ क्रव्याद नाम रस बन जाता है ॥ १९९ ॥ यह रस दो माशाप्रमाण लेके सेंधालवण और मठाके साथ भोजनांतमें पीवै, और भारी मांस, दूध, मैदाके पदार्थ, खाने योग्य ताजे फल खावै ॥ २०० ॥ तथा अधिक खाया हुआ भी भोजन दो प्रहरमें पचा देता है. ऐसा यह प्रसिद्ध क्रव्याद नाम रस है ॥ २०१ ॥

अग्नितुंडा वटी।

शुद्धं सूतं समं गन्धमजमोदाफलत्रयम्।
सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैंधवजीरकम् ॥ २०२ ॥
सौवर्चलं विडंगानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम्।
विषं पुष्टं सर्वतुल्यं जंबीराम्लेन मर्दयेत्।
मरिचाभा वटीं खादेद्वह्निमांद्यप्रशान्तये ॥२०३॥

भाषार्थ–शुद्धपारा, उतनाही गंधक, अजमोद, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, चीता, सेंधालवण, जीरा ॥ २०२ ॥ सोंचरलोन, बायबिडंग, समुद्रलवण, त्र्यूषण (सोंठ, मिर्च, पीपर) यह सब-समानभाग लेवै फिर सबके बराबर कुचिला लेके सबको जंभीरीके रसमें खरल करै और काली मिर्चके बराबर गोली बनाय, जठराग्निकी मंदता दूर करनेके निमित्त खावै. यह जठराग्निको दीप्त करता है इस कारण यह अग्नितुंडा नाम रस है ॥ २०३ ॥

आनन्दोदयरस।

पारदं गंधकं लोहभस्मकं विषमेव च।
समांशं मरिचं चाष्टौ टंकणं च चतुर्गुणम् ॥२०४॥
भृंगराजरसैः सप्त भावना चाम्लदाडिमैः।
गुंजाढ्यं पर्णखंडैर्हन्ति सायं तु भक्षितः २०५॥
वातश्लेष्मोद्भवान् रोगान् मंदाग्निग्रहणीज्वरान्।
अरुचिं पाडुतां चैव जयेदचिरसेवनात् ॥२०६॥

भाषार्थ–पारा, गंधक, लोह, अभ्रक, विष (तेलिया मीठा) यह समान भाग लेवै; और आठगुणी मिर्च, और चौगुना सोहागा लेके ॥ २०४ ॥ सबको खरल करै फिर भँगरा और खट्टे अनारकी सात भावना देवै. यह रस दो रत्ती प्रमाण सायंकालको पानके साथ खावै ॥ २०५ ॥ तो बादीको, कफकृत रोगोंको, मन्दाग्निको, संग्रहणी रोगको, ज्वरको, अरुचि और पांडुरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २०६ ॥

महोदधिरस।

एकैकं विषसूतं च जातीटंकं द्विकं द्विकम्।
कृष्णात्रिकं विश्वषट्कं दग्धं कापर्दिकद्विकम्२०७

देवपुष्पं बाणपुष्पं सर्वं संमर्द्य यत्नतः ।
महोदध्याख्यवटिका नष्टस्याग्नेश्च दीपनी २०८॥

भावार्थ-एक २ भाग विष और पारा, दो २ भाग जायफल और सुहागा, पीपरि ३ भाग, सोंठि ६ भाग, कौड़ीभस्म२ भाग ॥ २०७ ॥ लौंग ५ भाग, इन सबको यत्नपूर्वक खरल करै फिर मूंगबराबर गोलियां बनालेवै. यह महोदधि नामा वटी नष्टहुई अग्निको प्रदीप्त करनेवाली है ॥ २०८ ॥

चिन्तामणिरस ।

रसं गंधं मृतं शुल्बं मृतमभ्रं फलत्रिकम् ।
त्र्यूषणं बीजजैपालं समं खल्वे विमर्दयेत्॥२०९॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद्वस्त्रगालितम् ।
चिंतामणिरसोऽप्येवं अजीर्णानां प्रशस्यते२१०॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलेषु शस्यते ।
गुंजैको वा द्विगुंजो वा आमरोगहरः परः२११॥

भावार्थ-पारा, गंधक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, त्रिफला, त्र्यूषण (सोंठ, मिर्च, पीपरि,) जमालगोटाके शुद्ध बीज, इन सबको समान भाग लेके, खल्वमें डाल, खरल करै ॥ २०९ ॥ फिर द्रोणपुष्पीके रसमें भावना दे फिर सुखायके वस्त्रसे छान लेवै. यह चिंतामणिरस अजीर्ण रोगवालोंको हितकारक है२१०॥ तथा १ रत्ती वा २ रत्तीप्रमाण लेवै तो आठप्रकारके ज्वरको हरै और सब प्रकारके शूलरोगमें हित है तथा आंवरोगको हरनेवाला है ॥ २११ ॥

राजवल्लभरस ।

रसनिष्कैकगंधैकं निष्कमात्रः प्रदीपनः ।
सार्धं पलं प्रदातव्यं चूलिकालवणं भिषक् २१२॥
खल्वे संमर्दयेत्तत्तु शुष्कवस्त्रेण गालयेत् ।
माषमात्रं प्रदातव्यो भुक्तमासादिजारकः२१३॥
अजीर्णेषु त्रिदोषेषु देयोऽयं राजवल्लभः ।

भावार्थ-पारा १ निष्क (४ माशे), गंधक १ टंक (४ माशे,) विष १ टंक, और नौसादर ६ तोले वैद्य लेवै ॥२१२॥ सबको खल्वमें खरल करै फिर सुखाय कपड़ेसे छान लेवै. एक माशेभर देवै तो खाये मांसको भस्म करताहै ॥ २१३ ॥ अजीर्ण और त्रिदोषमें यह राजवल्लभ रस देवै १

त्रिनेत्ररस ।

टंकणं हारिणं शृंगं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम् ॥ २१४ ॥
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्य रुध्वा पुटे पचेत् ।
त्रिनेत्राख्यो रसो नाम्ना माषैकं मधुसर्पिषा ॥२१५॥
सैंधवं जीरकं हिंगु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ।
पक्तिशूलहरं ख्यातं याममात्रान्न संशयः ॥ २१६ ॥

भावार्थ-सुहागा, हिरणका सींग, सुवर्ण, तांबा, पाराभस्म ॥ २१४ यह सब एक दिन अदरखके रसमें मर्दन करै फिर शरावसंपुटमें रखकर, फूंक दे. यह निनेत्र नाम रस १ माशा प्रमाण शहत और घीसे खावै ॥ २१५ ॥ पीछेसे सेंधालवण, जीरा, हींग, शहत, घी मिलाय चाटै तो यह रस निस्सन्देह एक प्रहरमें शूलरोगोंका नाश करता है ॥ २१६ ॥

मेहवज्ररस ।

भस्मसूतं मृतं कातं शुल्बभस्म शिलाजतु ।
शुद्धताप्यं शिलाव्योषं त्रिफलाकोल्हबीजकम् ॥
कापित्थरजनीचूर्णं भृंगराजेन भावयेत् ।
विंशद्वारं विशोध्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा॥२१८॥
निष्कमात्रं लिहेन्मेही मेहवज्रो महारसः ।
महानिंबस्य बीजानि पिष्ट्वा कर्षमितानि च २१९
पलं तंदुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ।
एकीकृत्य पिबेत्तोयं हंति मेहं चिरंतनम् ॥२२०॥

भावार्थ–पारेकी भस्म, कांतिसारकी भस्म, ताम्रभस्म, शिलाजीत, शुद्ध सोनामाखी, मैनशिल, त्रिकुटा, त्रिफला, अंकोलके बीज ॥२१७॥ कैथ और हलदीचूर्ण, इन सबको बराबर २ लेके, भंगराके रसमें बारबार भावना देवै फिर शहतके साथ लेवै ॥ २१८ ॥ प्रमेहरोगवाला मनुष्य एक टंकप्रमाण मात्रा इस मेहवज्रनाम रसको शहतके साथ चाटै. ऊपरसे बकायनके बीज १ कर्ष पीसकर ॥ २१९ ॥ एकपल (४ तोले) चावलका पानी और दो टंक घीके साथ एकमें मिलाय जल पीनेसे बहुत दिनोंके प्रमेहको नाश करता है ॥ २२० ॥

इन्द्रवटीरस ।

मृतं सूतं मृतं वंगमर्जुनस्य त्वचा सिता ।
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे शाल्मल्या मर्दयेद्द्रवैः २२१॥
दिनान्ते वटिका कार्या माषमात्रा प्रमेहहा ।
एषा इंद्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशांतये ॥ २२२ ॥

भावार्थ–पारेकी भस्म, वंगभस्म, और अर्जुनवृक्षकी छाल, मिश्री, यह सब बराबर लेके खल्वमें भरके रससे दिनभर खरल करै ॥ २२१ ॥ संध्यासमय गोली बनावै एकमाशे प्रमाणकी, प्रमेहको नाश करनेवाली यह इंद्रवटी नामा गोली मधुप्रमेहकी शांतिके अर्थ अत्यन्त हितकारी जानिये ॥ २२२ ॥

रसेन्द्रमंगलरस ।

तालसत्त्वं मृतं ताम्रं मृतं लोहं मृतं रसम् ।
हतमभ्रं हतं तारं गन्धं तुत्थं मनःशिला ॥ २२३ ॥
सौवीरांजनकासीसं नीलभल्लातकानि च ।
शिलाजत्वर्कमूलं तु कदलीकंदचित्रकम् ॥ २२४ ॥
त्वचमंकोलजां कृष्णां कृष्णधत्तूरमूलकम् ।
अवल्गुजानि बीजानि गौरीमाध्वीफलानि च॥२२५॥
हेमाह्वां फेनजात्यां च फलिनीं विषतिंदुकाम् ।
तैलिन्यो लोहकिट्टं च पुराणममृतं च तत् ॥ २२६ ॥
त्वचा च मीनकाक्षस्य पुनरुक्तं फलं पृथक् ।
तैलिन्यो वटकास्तास्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ २२७ ॥
खल्वे निधाय दातव्या पुनरेषा च भावना ।
ब्रह्मदंडी शिखा पुंखा देवदाली च नीलिका ॥२२८॥
वानशोना नृपतरुर्निंबसारो बिभीतकः ।
करंजो भृंगराजश्च गायत्री तिंतडीफलम् ॥ २२९ ॥
भांडे तद्धारयेद्भांडं मुद्रितं चाथ कारयेत् ।
याममात्राग्निना पच्यात्पुटमध्ये ह्यसौ रसः ॥ २३० ॥

पुंडरीकं निहन्त्येव नात्र कार्या विचारणा ।
द्विमासाभ्यन्तरे पुंसामपथ्यं न तु भोजयेत् ॥ २३१ ॥
रोगाः सर्वे विलीयंते कुष्ठानि सकलानि च ।
भानुभक्तिप्रवृत्तानां गुरुभक्तिकृतां सदा ॥ २३२ ॥
रसेन्द्रमंगलो नाम्ना रसोऽयं प्रकटीकृतः ।
अनुग्रहाय भक्तानां शिवेन करुणात्मना ॥ २३३ ॥

भाषार्थ–हरतालका सत्त्व, ताम्रभस्म, लोहभस्म, पारेकी भस्म, अभ्रकभस्म, चांदीकी भस्म, गन्धक, नीलाथोथा, मनशिल, ॥ २२३ ॥ सहोंजना, कसीस, काला भेलावा, शिलाजीत, आककी जड, केलाकंद, चित्रक ॥ २२४ ॥ तेजपात, अंकोल, स्याह धतूरेकी जड़, चिर्मिटी, तुलसीदल, महुआके फल॥२२५॥ दर्र, समुद्रफेन, चमेली, मालकांगनी, कुचिला, तेंदू, तेलिया, कौटी जो पुरानी बिना भस्मकी हुई हो ॥ २२६ ॥ मछेछीकी छाल, सबको एकत्र कर चूर्ण करै ॥ २२७ ॥ खल्वमें रख, खरल करने उपरांत फिर आगे लिखी औषधियोंकी भावना देवै कि ब्रह्मदंडी, शरफोंका, देवदारु, निलीका (हरसिंगार) ॥ २२८ ॥ वानशोत, अमिलतास, नींवसार, बहेड़ा, कंजा, भंमरा, खैर, इमली पकीहुई ॥ २२९ ॥ इनकी भावना देके हांडीमें रखकर, दूसरी हांडीमें रक्खै फिर मुद्रा (कपरौटी) करै और गजपुटके मध्य रख, १ प्रहरतक आंच देवै. यह रस ॥ २३० ॥ पुंडरीक (कुष्ठ) को नाश करता है. इसमें विचार नहीं करना. दो मासतक मनुष्य अपथ्य भोजन नहीं करै॥२३१॥ तो सब प्रकारके रोग और सम्पूर्ण कोढ़ नाश हो जाते हैं. सूर्यनारायणके भक्तोंको और गुरुकी भक्ति करनेवालोंको ॥ २३२॥

तथा समस्त भक्तोंके ऊपर अनुग्रहके हेतु करुणानिधान श्रीशिवजीने यह रसेंद्रमंगलनाम रस प्रकट किया है ॥ २३३ ॥

सर्वेश्वररस ।

मृतताम्राभ्रलोहानां हिंगुलं च पलं पलम् ।
जंबीरोन्मत्तभार्ङ्गीभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ॥२३४॥
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकं च दिनं दिनम् ।
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ॥ २३५ ॥
वालुकायंत्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ।
आदाय चूर्णयेत्सर्वं पलैकं योजयेद्विषम् ॥ २३६ ॥
द्विपलं पिप्पलीचूर्णमिश्रं सर्वेश्वरं रसम् ।
द्विगुंजं लेहयेत्क्षौद्रैर्मुनिमण्डलकुष्ठनुत् ॥ २३७ ॥
बाकुची चैव दारू च कर्षमात्रं विचूर्णनम् ।
लिहेदैरण्डतैलेन ह्यनुपानं सुखावहम् ॥ २३८ ॥
रक्ताधिक्ये शिरामोक्षः पादे बाहौ ललाटके ।
कर्तव्यो दृष्टिरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः ॥ २३९ ॥
बलिनो बहुदोषस्य वयस्थस्य शरीरिणः ।
एतत्प्रमाणमिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥ २४० ॥
व्यभ्रे वर्षासु विंद्यात्तु ग्रीष्मकाले तु शीतले ।
हेमन्तकाले मध्याह्ने शस्त्रकालास्त्रयः स्मृताः २४१॥

भाषार्थ–ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शिंगरफ, यह चारों एक २ पल लेके, जंभीरी, धतूरा, भारंगी, सेहुंड, आक,

पोस्तकी बुड्डी ॥ २३४ ॥ और कनेर, इन प्रत्येक औषधियोंके रसमें एक २ दिन खरल करै. एवं सात दिन मर्दन करके उसका गोला बनाय, कपड़ेसे लपेट ॥ २३५ ॥ बालुकायंत्रमें रख, तीन दिनतक धीमी आंचमें पचावै फिर उसको ले, चूर्ण करै ॥ २३६ ॥ दो पल पीपरिका चूर्ण मिलाय देवै तो सर्वेश्वररस होता है, यह रस २ रत्ती प्रमाण शहतके साथ खावै तो चकत्ता और कोढ़को नाश करता है ॥ २३७ ॥ बकुची और देवदारुका चूर्ण १ कर्ष मात्र अंडीके तेलके साथ चाटै तो यह अनुपान सुखको देता है ॥ २३८ ॥ तथा रक्तकी अधिकतामें, पांव, बाहु, ललाटमें, फस्त खुलवाय रुधिर निकलवाय देवै, नेत्ररोगमें, तथा विशेषकरके कुष्ठियोंको ऐसा करै ॥ २३९ ॥ बलवान् बहुत दोषोंसे युक्त मनुष्योंको और युवा पुरुषोंको एक प्रस्थ प्रमाण रुधिर निकलाना चाहिये ॥ २४० ॥ वर्षाकालमें जिस दिन बादल न होवे, ग्रीष्मकाल (गर्मियों) में शीतल समय, हेमंतऋतुमें मध्याह्नसमय, यह फसद खुलवानेमें हथियार (नस्तर) लगवानेके तीन समय हैं ॥ २४१ ॥

तालेश्वररस ।

द्वादशं कर्षतालं च कूष्मांडस्वरसे क्षिपेत् ।
स्वेदयेद्दोलिकायंत्रे यावत्तोयं न विद्यते ॥ २४२ ॥
पश्चात्तं मेलयेत्खल्वे सूतं कर्षद्वयं क्षिपेत् ।
तन्मर्द्य बहुवाराणि नीलाभा कज्जली भवेत् ॥२४३॥
स्नुहीक्षीरं रविक्षीरं छागीक्षीरं च बाकुची ।
पातालगारुडी कोल्हा चक्रमर्दकहिज्जलम् ॥ २४४ ॥
कुमारीपत्रभल्लाता त्रिफला तु पुनर्नवा ।

निम्बत्वं च महौषध्या पुटं देयं त्रयं त्रयम् ॥ २४५ ॥
षट्कर्ष चूककलिकां हंडिकायां तु धापयेत् ।
चतुर्थांशमधः स्थाप्य मध्ये स्थाप्यं तु तालकम् २४६॥
पश्चादुपरि चूर्णं तत्सर्वं स्थाप्यं प्रयत्नतः ।
हंडिकाखण्डपर्यन्तं मज्जानं कन्यकोद्भवम् ॥२४७॥
ततो मुद्रां दृढं कुर्यादूर्ध्वास्यं शोषितां किल ।
चतुर्यामं तु दीप्ताग्निं विदध्याद्यामं हताग्निना ॥ २४८ ॥
स्वागशीतलमुद्धृत्य भवेत्तालेश्वरो रसः ।
पथ्यं मुद्गं तु शाल्यन्नं कुष्ठानष्टादशान् जयेत् ॥२४९॥

भावार्थ–१२ कर्ष हरतालको लेके कुम्हेड़ेके रसमें डालै और दोलायंत्रमें रख, स्वेदन करै जबलग जलन रहै ॥ २४२ ॥ फिर उसको खरलमें डाल, दो कर्ष पारा मिलावै और बहुत वार घोटै यहांतक कि नीले रंगकी कजली होजावै ॥ २४३ ॥ फिर सेहुंडका दुग्ध, आकका दूध, बकरीका दूध, बाकुची, खरैंटी, कोल्हा (बड़ी पीपरि), पवांर, समुद्रफल ॥ २४४ ॥ घीग्वारका पाठा, भिलावां, त्रिफला, सांठी, नींबकी छाल, सोंठ, इनकी तीन २ पुट देवै ॥ २४५ ॥ फिर ६ कर्ष चूककी गोली बनाय, हांड़ीमें रक्खै, चौथाई नीचे रखकर, बीचमें हरतालको रक्खै ॥ २४६ ॥ पीछे उसपरसे चूर्णको यत्नसे स्थापन करै. हांड़ीके गलेतक ग्वारके पाठेका गूदा भर देवै ॥२४७॥ अनंतर दृढ मुद्रा करै. जिससे मुख उसका ऊपरको रहै फिर सुखायके चार प्रहर प्रबल अग्निकी आंचसे फिर एक प्रहर मंदाग्निसे पकावै ॥ २४८ ॥ जब स्वांगशीतल होजावै तब उतार लेवै.

यह तालेश्वर रस है. इसमें पथ्य मूंग और चांवल है. यह रस १८ प्रकारके कुष्ठरोगको जीतता है ॥ २४९ ॥

स्वर्णक्षीरीरस।

हेमाह्वां पंचपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत्।
तक्रे जीर्णे समुद्धृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत्॥२५०॥
क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य क्षालयित्वा विशोषयेत्।
चूर्णितं तत्पंचपलं मरिचानां पलद्वयम् ॥२५१॥
पलैकं मूर्छितं सूतमेकीकृत्वा च भक्षयेत्।
निष्कैकं सुप्तिकुष्ठारिः स्वर्णक्षीरीरसोह्ययम्॥२५२॥

भाषार्थ-धतूरेके बीज ५ पल, मठाके घड़ामें डाल देवै-मठा सूख जानेपर निकालकर फिर दूधके घड़ामें डालदे ॥ २५० ॥ दूध सूख जानेपर निकालकर, सुखाय ले फिर उस पांचपल बीजोंका चूर्ण कर, उसमें २ पल स्याह मिर्च मिलावै ॥ २५१ ॥ और १ पल मराहुआ पारा मिलाय, सब एकत्र कर, मर्दन करै फिर खावै. एक टंक मात्रा सुप्तिकुष्ठको नाश करनेवाला यह स्वर्णक्षीरी नाम रस है ॥ २५२ ॥

शूलगजकेसरीरसः।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद्दृढम्।
द्वयोस्तुल्यं भस्म ताम्रं सम्पुटे तं निरोधयेत्२५३
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्दृढम्।
ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् २५४
संपुटं चूर्णितं सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुंजके।

भक्षयेच्छूलपीडार्थे हिंगुशुंठीसजीरकं ॥ २५५ ॥
वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत्।
असाध्यं साधयेच्छूलं रसः स्याच्छूलकेसरी२५६
व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च।
वेगरोधं शुक्ररोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २५७ ॥

भाषार्थ-शुद्धपारा १ भाग, गंधक २ भाग, इनको १ प्रहर अच्छे प्रकार खरल करै, दोनोंके बराबर ताम्रभस्म लेके, संपुटमें रख, सबको भरै ॥२५३॥ और उसके नीचे लवण भर, मिट्टीकी हांडीमें अच्छी तरह रख देवै फिर गजपुटकी आंचसे पकावै. शीतल हो जानेपर उतार लेवै ॥ २५४ ॥ अनंतर संपुटसे निकाल, बारीक पीस ले और २ रत्ती प्रमाण मात्रा पानके साथ शूलकी पीडा दूर होनेके अर्थ खावै. ऊपरसे हींग सोंठ जीरा ॥२५५॥ बच, मिर्च, इनका चूर्ण १ कर्ष गरम जलके साथ पीवे तो असाध्य शूलको नाश करै. यह शूलरूप हाथीके लिये केसरी (सिंह) समान है ॥ २५६ ॥ शूलरोगवाला मनुष्य व्यायाम (दंडकसरत), मैथुन (स्त्रीप्रसंग), मद्य (मदिरापान), लवण, कडुवा, वेगोंका रोकना, वीर्य रोकना, यह सब वर्जित करै२५७॥

तालेश्वररस।

सूतौ द्वौ वल्युजा त्रीणि कणा विश्वा त्रिकं त्रिकम्।
सार्धैकं ब्रह्मपुत्रस्य मरिचस्य चतुष्टयम् ॥ २५८ ॥
एकैकं निम्बधत्तूरं बीजतो गन्धकत्रयम्।
जातीटंकणतालाया भागा दश दश स्मृताः॥२५९॥
युक्त्या सर्वं विमर्द्याथामृतास्वरसभाविताः।

सप्तधा शोषयित्वाथ धत्तूरस्यैव दापयेत् ॥ २६० ॥
संमर्द्य गोलकं सार्द्रं धत्तूरैर्वेष्टयेद्दलैः ।
गोमये वेष्टयेत्तच्च कुक्कुटाख्यपुटे पचेत् ॥ २६१ ॥
रसः कुष्ठहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियैः ।

भाषार्थ–पारा २ भाग, वलगुजा ३ भाग, पीपरि, सोंठि तीन ३ भाग, ब्रह्मपुत्र (विषभेद) १॥ भाग, मिर्च ४ भाग, ॥ २५८ ॥ नींब और धतूरेके बीज एक २ भाग, गन्धक ४ भाग, और जावित्री, सोहागा, हरताल, ये तीनौं दश २ भाग ॥ २५९ ॥ युक्तिसे इन सबको मर्दन करके, गिलोयके रसकी भावना देवै, सात वार फिर सुखाकर, धतूरके रसकी भावना देवै ॥ २६० ॥ फिर अदरखके रसमें खरल करके गोली बनालेवै, ऊपरसे धतूरेके पत्ता लपेट देवै फिर गोबर लपेट कुकुटयंत्रमें रख. पकावै ॥ २६१ ॥ यह रस कुष्ठको हरनेवाला, सर्वदा सेवनके योग्य है. भोजनमें प्रिय है. यह तालेश्वर रस है ॥

ब्रह्मरस ।

भागैकं मूर्छितं सूतं गन्धकं वह्निबाकुची ।
चूर्णं च ब्रह्मबीजानां प्रतिद्वादशभागकम् ॥ २६२ ॥
त्रिंशद्भागं गुडस्यापि क्षौद्रेण गुटिका कृता ।
अयं ब्रह्मरसो नाम्ना ब्रह्महत्याविनाशनः ॥ २६३ ॥
द्विनिष्कभक्षणाद्धन्ति प्रसुप्तिं कुष्ठमंडलम् ।
पातालगरुडीमूलं जले पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ २६४ ॥

भाषार्थ–पारेकी भस्म १ भाग, गंधक, चित्रक, बाकुची, और ढाकके बीज, यह प्रत्येक बारह २ भाग ॥ २६२ ॥ तीस-

भाग गुड, इन सबको कूट पीस मिलाय, शहतके साथ गोली बनावै. यह ब्रह्मरस नामकरके रस ब्रह्महत्यासे उत्पन्न रोगका नाश करनेवाला है ॥ २६३ ॥ दो टंक खानेसे प्रसुप्तिकुष्ठमंडलको नाश करता है. यह रस खाकर, ऊपरसे कड़वी घीयाकी जड़को जलमें पीस कर पीवै ॥ २६४ ॥

शशिधररस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं तुत्थं च मृतताम्रकम् ।
मर्दितं बाकुचीक्वाथैर्दिनैकं वटकीकृतम् ॥ २६५ ॥
निष्कमात्रं सदा खादेच्छ्वेतघ्नेन्दुधरो रसः ।
बाकुचीतैलकर्षैकं सक्षौद्रमनुपाययेत् ॥ २६६ ॥

भाषार्थ–शुद्ध पारा और पाराके बराबर गन्धक, नीलाथोथा, तांबेकी भस्म, यह सब बाकुचीके काढ़ामें १ दिन खरल करके, गोली बनावै ॥ २६५ ॥ एक टंक प्रमाण सदैव खावै. यह श्वेतकुष्ठको नाश करनेवाला शशिधर नाम रस है. परंतु इस रसको खाकर, ऊपरसे १ कर्ष बाकुचीका तेल और शहत मिलाय पीवै तो हित है ॥ २६६ ॥

पारिभद्ररस ।

मूर्छितं सूतकं धात्रीफलं निंबस्य चाहरेत् ।
तुल्यांशं खादिरक्वाथैर्दिनं मर्द्यं च भक्षयेत् २६७॥
निष्कैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राह्वयो रसः ।

भाषार्थ–मूर्छित (मराहुआ) पारा, आंवला, निंबौली, यह बराबर भाग लेके खैरके काढ़ामें १ दिन खरल करके, खावै ॥ २६७ ॥ एक टंक प्रमाण खानेसे दाद और कोढ़को नाश करनेवाला यह पारिभद्र रस है ॥

श्वेतारिरस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं त्रिफलाभ्रं च बाकुची ॥२६८॥
भल्लातं च शिला कृष्णा निंबबीजं समं समम् ।
मर्दयेद्भृंगजद्रावैः शोष्यं शोष्यं पुनः पुनः ॥२६९ ॥
इत्थं कुर्यात्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत् ।
मध्वाज्ये खादयेन्निष्कं हंति शूलं विनाशयेत्२७०॥

भावार्थ-शुद्ध पारा और उसके बराबर गंधक, त्रिफला, अभ्रक और बाकुची ॥ २६८ ॥ भिलावां, शिलाजीत, पीपरि, नींबके बीज, इन सबको बराबर २ लेके भंगराके रससे खरल करै, बार २ इस प्रकार सुखाय लेवै ॥ २६९ ॥ ऐसे २१ दिन करै तो श्वेतारिनाम रस बन जाता है. शहत और घीके साथमें एक टंक प्रमाण खावै तो दांतोंकी पीडाको नाश करै२७०॥

कालाग्निरुद्ररस ।

सूताभ्रं ताम्रतीक्ष्णानां भस्ममाक्षिकगन्धकम् ।
वन्ध्याकर्कोटकीद्रावै रसो मर्द्यो दिनावधि ॥२७१ ॥
वन्ध्याकर्कोटकीकंदे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः ।
भूधराख्ये पुटे पाच्यं दिनैकं तु विचूर्णयेत् ॥२७२॥
दशमांशं विषं योज्यं माषमात्रं च भक्षयेत् ।
रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत् ॥ २७३ ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ।

भावार्थ-पारा, अभ्रक, तांबा, लोहा, सोनामाखी, गंधक, इन सबकी भस्म लेके वंध्याककोंटीके रसमें १ दिनतक खरल करै ॥ २७१ ॥ फिर बाझकाकोरीकी जडमें रखके. कपडमिट्टी करै. अनंतर भूधरयंत्रमें रख कर १ दिन पचावै. ठंढा होजानेपर निकाल ले और चूर्ण कर लेवै ॥ २७२ ॥ और दशवा हिस्सा सींगिया विष उसमें मिलावै १ मासा प्रमाण मात्रा भक्षण करै. यह कालाग्निरुद्ररस दश दिनमें विसर्प रोगको नाश करता है ॥ २७३ ॥ इसके ऊपर पीपरि और शहत मिलाय, अनुपान लेवै ॥

अजीर्णकंटकरस ।

शुद्धं सूतं विषं गन्धं समं चूर्णं विचूर्णयेत् ।
मरिचं सर्वतुल्यांशं कंटकार्याः फलद्रवैः ॥ २७४ ॥
मर्दयेद्भावयेत्सर्वानेकविंशतिवारकान् ।
वटीगुंजात्रयं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २७५ ॥

भावार्थ-शुद्धपारा, विप, गन्धक, ये बराबर लेके, चूर्ण करै और सबके बराबर काली मिर्चका चूर्ण कर, मिलाय, सबको कटेरीके फलके रसमें ॥ २७४ ॥ एकीस बार भावना देकर, सुखाय लेवै फिर ३ रत्ती प्रमाणकी गोलियां बनाय लेवै१ गोली सब प्रकारके अजीर्णशांतिके अर्थ खावै अर्थात् इसके खानेसे सब प्रकारका अजीर्ण शांत हो जाता है ॥ २७५ ॥

उदयभास्कररस ।

गन्धकेन मृतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ।
ऊषणं पंचभागं स्यादमृतं च द्विभागकम् ॥ २७६ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं रक्तिकैकप्रमाणतः ।
दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः ॥ २७७ ॥

गलिते स्फुटिते चैव विषूच्या मंडले तथा ।
विचर्चिकादद्रुपामाकुष्ठाष्टादशशान्तये ॥ २७८ ॥

भाषार्थ-शुद्ध गन्धक १ भाग, उससे दश गुणी (१० भाग) तांबेकी भस्म, और स्याह मिर्च ५ भाग, विष २ भाग, ॥ २७६ ॥ इन सबको बारीक पीस, चूर्ण करै. एक रत्ती प्रमाण मात्रा कुष्ठीको अच्छेप्रकार अनुपानके साथ देवै ॥ २७७ ॥ तथा गलितकुष्ठ, शरीर फूटना, विषूचिका, मंडल (चकत्ता) विचर्चिका, दाद, खाज, अठारह प्रकारका कोढ़, इन रोगोंकी शांतिके अर्थ देवे तो यह सब रोग नाश होवैं ॥ २७८ ॥

रौद्ररस ।

शुद्धं सूतं समं गन्धं मर्द्यं यामचतुष्टयम् ।
नागवल्लीरसैर्युक्तं मेघनादपुनर्नवैः ॥ २७९ ॥
गोमूत्रे पिप्पलीयुक्ते मर्द्य रुध्वा पुटेल्लघु ।
लिहेत्क्षौद्रे रसो रौद्रो गुंजामात्रोऽर्बुदं जयेत् ॥२८०॥

भाषार्थ-शुद्ध पारा, गंधक, ये दोनौं बराबर लेके ४ प्रहरतक पान, चौलाई और सांठीके रसमें खरल करै ॥ २७९ ॥ फिर गोमूत्र और पीपरिमें खरल करके, लघुपुटमें रखकर, फूंक देवै. यह रौद्ररस १ रत्ती प्रमाण लेके, शहतके साथ लेवै तो अर्बुदरोगको नाश करै ॥ २८० ॥

नित्योदित रस ।

मृतभूतार्कलोहाभ्रविषगन्धं समं समम् ।
सर्वतुल्याशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत ॥ २८१ ॥

द्रवैः सूरणकन्दोत्थैः खल्वे मर्द्यं दिनत्रयम् ।
माषमात्रं लिहेदाज्ये रसश्चार्शांसि नाशयेत् ॥२८२॥
रसो नित्योदितो नाम्ना गुदोद्भवकुलांसके ।
हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा ॥ २८३ ॥
शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्यार्शसंहितः ।
असाध्यस्यापि कर्तव्या चिकित्सा शंकरोदिता २८४

भाषार्थ-पारा, तांबा, अभ्रक, विष, गन्धक, इनकी भस्म बराबर २ लेवै और सबके बराबर भेलायेके फलोंका चूर्ण मिलाय, सबको एकत्र करै ॥ २८१ ॥ फिर जिमीकन्दके रसमें ३ दिन खरल करै. अनंतर यह रस १ मासा प्रमाण घींके साथ लेवै तो बवासीररोगको नाश करै ॥ २८२ ॥ यह नित्योदित नाम रस गुदासे उत्पन्न रोगोंको तथा हाथ, पांव, मुख, नाभि, गुदा, अंडकोष ॥ २८३ ॥ सूजन, हृदय, पसली, इन समस्त अंगोंके रोगोंमें और जिसके असाध्य ववासीर हो इन सब रोगोंमें यह रस हित है. यह शंकर (महादेव) जीकी कहीहुई चिकित्सा असाध्य रोगीकी भी करनी चाहिये ॥ २८४ ॥

अर्शकुठाररस।

शुद्धसूतं पलैकं तु द्विपलं शुद्धगंधकम् ।
मृतं ताम्रं मृतं लोहं प्रत्येकं तु पलत्रयम् ॥ २८५ ॥
त्र्यूषणं लांगली दन्ती पीलुकं चित्रकं तथा ।
प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं च टंकणम् ॥ २८६ ॥
उभौ पंचपलौ योज्यौ सैंधवं पंचकं तथा ।
द्वाविंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम् ॥ २८७ ॥

मृद्भिना पचेत्सर्वं स्थाल्यां यावत्सुपिंडितम् ।
माषद्वयं सदा खादेद्रसोऽप्यर्शःकुठारकः ॥ २८८ ॥

भाषार्थ–शुद्धपारा १ पल, शुद्धगंधक २ पल, ताम्रभस्म लोहभस्म, यह प्रत्येक तीनपल ॥२८५ ॥ और त्र्यूषण (सोंठि, मिर्च, पीपरि,) कलियारी, दन्ती, पीलू, चित्रक, यह प्रत्येक दो २ पल मिलावै, जवाखार, सोहागा, ॥ २८६ ॥ यह दोनौं पांच २ पल मिलावै, सेंधालवण ५ पल, गौका मूत्र २० पल, सेंहुंडका दूध भी २० पल ॥ २८७ ॥ इन सबको धीमी आंचसे पचावै जबतक थाली पर जमनेके योग्य हो अर्थात् पिंड बँधजावै, फिर उतार ले दो माशे प्रमाण सदा खावै. यह अर्शकुठाररस ववासीर रोगको कुठारके समान है ॥ २८८ ॥

विद्याधररस ।

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला ।
शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥२८९ ॥
पिप्पल्याश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ।
निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैः प्लीहगुल्मादिकं जयेत् ॥२९०॥
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु ।

भाषार्थ–गंधक, हरताल, सोनामाखी, ताम्रभस्म, मनशिल और बराबर शुद्ध पारा इन सबको लेके १ दिन खरल करै ॥ २८९ ॥ फिर पीपरिके काढ़ासे और थूहरके दुग्धसे एक २ दिन मर्दन करै. यह रस आधा टंक (२ माशे) शहतके साथ खावै तो प्लीह (तापतिल्ली), गुल्म (बायगोला) आदिको नाश करता है ॥ २९० ॥ यह विद्याधर नाम रस है. इसके ऊपरसे गौका दूध पीवै ॥

वंगेश्वररस ।

भस्मसूतं भस्मवंगं भागैकैकं प्रकल्पयेत् ॥ २९१ ॥
गंधकं मृतताम्रं च प्रत्येकं च चतुर्गुणम् ।
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम् ॥ २९२ ॥
रुद्ध्वा तद्भूधरे पाच्यं पुटैकेन समुद्धरेत् ।
एवं वंगेश्वरो नाम्ना प्लीहगुल्मोदरं जयेत् ॥ २९३ ॥
घृतैर्गुंजाद्वयं लिह्यान्निष्कां श्वेतपुनर्नवाम् ।
गवा मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ॥२९४॥

भाषार्थ–पारेकी भस्म, वंगकी भस्म, एक २ भाग लेवै ॥ ॥ २९१ ॥ गंधक, ताम्रभस्म यह प्रत्येक चार २ भाग, इन सबको आकके दुग्धमें एक दिन मर्दन करके, उसकी गोली बना-लेवै ॥ २९२ ॥ फिर भूधरयंत्रमें रख, पचावै. यह वंगेश्वररस प्लीह (तापतिल्ली), गुल्म और उदररोगको नाश करता है २९३। और इस रसकी दो रत्ती प्रमाण मात्रा घीके साथ खावै. ऊपरसे १ टंक श्वेत सांठीका चूर्ण फांककर, गौका मूत्र पीवे, अथवा ह-ल्दीका चूर्ण फांककर, गोमूत्र पीलेवै ॥ २९४ ॥

उदरारिरस ।

पारदं शुक्तितुत्थं च जैपालं पिप्पलीसमम् ।
आरग्वधफलोन्मज्जा वज्रीदुग्धेन मर्दयेत् ॥ १९५ ॥
माषमात्रां वटीं खादेद्धरेत्स्त्रीणां जलोदरम् ।
चिंताफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥२९६ ॥
जलोदरहरं चैव कठिने रेचनेन तु ।

भावार्थ–पारा, शुक्ती (सीपी), नीलाथोथा, जमालगोटा, पीपरि, अमलतासकी गूदी, यह सब बराबर लेके थूहरके दूधमें खरल करै ॥ २९५ ॥ फिर एक २ मासेकी गोलियां बनावै. एक गोली खावै और ऊपरसे इमलीके पत्ताका रस पीवै तो स्त्रियोंके जलोदररोगको हरै. इसमें पथ्य दही और भातका हित है ॥ २९६ ॥ और कठिन जुलाबसे जलोदररोग बेग नाश हो जाता है ॥

जलोदराररिस ।

पिप्पली मरिचं ताम्रं कांचनीचूर्णसंयुतम् ॥ २९७ ॥
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम् ।
निष्कं खादेद्विरेकं स्यात्सद्यो हन्ति जलो दरम् २९८
रेचनानां च सर्वेषां दध्यन्नं स्तंभनं हितम् ।
दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम् ॥२९९ ॥

भावार्थ–पीपरि, स्याह मिर्च, ताम्रभस्म, हल्दीका चूर्ण, इन सबको मिलाय ॥ २९७ ॥ थूहरके दूधमें १ दिन खरल करके बराबर भाग जमालगोटा मिलाय १ टंक खावै तो दस्त होवै और शीघ्र जलोदर रोग नाश होवै ॥ २९८ ॥ और सब प्रकारके दस्तोंमें दही भात हितकारी है, अथवा सायंकालमें मूंगका यूष देना चाहिये ॥ २९९ ॥

नाराचरस ।

सूतं टंकणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् । गन्धकं पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ ३०० ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजानि

निस्तुषाणि च । द्विगुंजं रेचने सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ॥ ३०१ ॥ गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तं चोष्णवारिणा ।

भावार्थ–पारा, सोहागा, काली मिर्च, एक २ भाग, गंधक, पीपरि, सोंठ दो २ भाग, लेके सबका चूर्ण करै ॥ ३०० ॥ सबके बराबर विना छिलकाके जमालगोटाके बीज मिलावै. यह नाराचरस २ रत्ती प्रमाण दस्त करानेमें सिद्ध है ॥ ३०१ ॥ तथा यह नाराचरस गुल्म (बायगोला), प्लीह (तापतिल्ली), उदररोग इनको नाश करता है. इसमें ऊपरसे गरम जल पीवै ॥

इच्छाभेदी रस ।

शुंठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकटंकणम् ॥ ३०२ ॥
जैपालस्त्रिगुणः प्रोक्तः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
इच्छाभेदी द्विगुंजः स्यात्सितया सह दापयेत् ३०३
पिबेच्च चुलिकां यावत्तावद्वारान् विरेचयेत् ।
तैक्रादंन प्रदातव्यं इच्छाभेदी यथेच्छया ॥ ३०४ ॥
दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जितालंघनपाचनैः ।

भावार्थ–सोंठि, स्याह मिर्च, पारा, गंधक, सोहागा, यह सब एक २ भाग ॥ ३०२ ॥ जमालगोटा ३ भाग, सब एकत्र कर, चूर्ण करै. यह इच्छाभेदीरस दो रत्तीप्रमाण लेके, मिश्रीके साथ खानेको देवै ॥ ३०३ ॥ जितने चुल्लू ऊपरसे पीवै उतनेही वार दस्त होवै. मठ्ठा और भात इच्छानुसार देवै ॥ ३०४ ॥ जो कदाचित् दोष कुपित हो जावैं तो लंघन कराकर, पचाय, दोषोंको जीतै ॥

हेमसुंदररस ।

मृत्सूतं हेमपादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत् ॥ ३०५ ॥
क्षीराज्यं मधुना युक्तं माषैकं कांस्यपात्रके ।
लेहयेन्माषषट्कं तु जरामृत्युविनाशनम् ॥ ३०६ ॥
बाकुचीचूर्णकर्षैकं धात्रीरसपरिप्लुतम् ।
अनुपानं लिहेन्नित्यं स्याद्रसो हेमसुन्दरः ॥ ३०७ ॥

भाषार्थ–पारेकी भस्म जितनी हो उससे चौथाई सुवर्णभस्म लेवै ॥ ३०५ ॥ दोनोंको मिलाय खरल करै. इसमेंसे एक माशा प्रमाण मात्रा लेके छे मासे दूध, घी, शहतके साथ काँसेके पात्रमें रख, चाटै तो जरा (बुढ़ापा) और मृत्युको नाश करै ॥ ॥ ३०६ ॥ इसके ऊपरसे बाकुचीका चूर्ण १ कर्ष लेके, आँवलेके रसमें मिलाय पीवै. यह हेमसुंदरनाम रस है ॥ ३०७ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां रसयोजनभक्षणकं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥ ७ ॥

रसायनाधिकार ।

प्रणम्य निर्भयं नाथं खेन्द्रदेवं जगत्पतिम् ।
दिगम्बरं त्रिनेत्रं च जरामृत्युविनाशनम् ॥ १ ॥
अमृतं च विषं चैव शिवेनोक्तं रसायनम् ।
अमृतं विधिसंयुक्तं विधिहीनं तु तद्विषम् ॥ २ ॥

रेचनांते इदं सेव्यं सर्वदोषापनुत्तये ।
मृताभ्रं भक्षयेदादौ मासमेकं विचक्षणः ॥ ३ ॥
पश्चात्तु योजयेद्देहे क्षेत्रीकरणमिच्छतः ।
यत्क्षेत्रीकरणे सूतस्त्वमृतोऽपि विषं भवेत् ॥ ४ ॥
फलसिद्धिः कुतस्तस्य सुबीजस्योषरे यथा ।
न क्षेत्रकरणाद्देवि किंचित्कुर्याद्रसायनम् ॥ ५ ॥
कर्तव्यं क्षेत्रकरणं सर्वस्मिंश्च रसायने ।

भाषार्थ–निर्भय (भयरहित), नाथ (भक्तोंके स्वामी) ज्योतिःस्वरूप, जगतके स्वामी, दिगम्बर, तीन नेत्र धारण करनेवाले और जरामृत्युके नाश करनेवाले ॥ १ ॥ श्रीशिवजीको प्रणाम करके रसायनाधिकार कहताहूँ कि श्रीमहादेवजीने कहा जो अमृत और विष रूप रसायन, सो विधिसमेत सेवन करनेसे अमृतसमान है, और उसीको विधिरहित सेवन करै तो विष है ॥ २ ॥ रेचनके अन्तमें सम्पूर्ण दोषोंके नाश होनेके अर्थ इसका सेवन करना चाहिये. प्रथम एकमासतक बुद्धिमान् अभ्रककी भस्म भक्षण करै ॥ ३ ॥ पश्चात् शरीरशुद्धिके अर्थ पारेका सेवन करै, शरीरशुद्धिके विना अमृत पारा भी विष हो जाता है ॥ ४ ॥ क्षेत्रकी शुद्धिके विना फलसिद्धि होना कहां, जैसे ऊसर पृथ्वीमें बीज बोना, इसकारण (शिवजी कहते हैं कि) हे देवि (पार्वती), विना क्षेत्रीकरणके कुछ रसायन नहीं करै ॥ ५ ॥ सर्व रसायनोंमें क्षेत्रकरण (शरीरकी शुद्धि) करै ॥

गन्धामृतरसायन ।

भस्मसूतं द्विधा गंधं क्षणं कन्याविमर्दितम् ।
रुद्ध्वा गजपुटे पश्चादुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥ ६ ॥

निष्कं खादेज्जरां मृत्युं हन्ति गन्धामृतो रसः ।
समूलं भृंगराजं तु छायाशुष्कं विचूर्णयेत ॥७॥
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत् ।
पलैकं भक्षयेच्चानु तच्च मृत्युरुजापहम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ–पारेकी भस्म और दूनी गंधक लेके, थोड़ी देर घीग्वारके पाठेके रसमें मर्दन करै फिर गजपुटमें रखकर, फूँक देवै. शीतल हो जानेपर निकाल लेवै, इसको शहत और घीके-साथ ॥ ६ ॥ एक टंक प्रमाण मात्रा खावै तो यह गंधामृतरस जरा और मृत्युको नाश करता है. और जडसमेत भंगराको छाया-में सुखायके चूर्ण करै ॥ ७ ॥ उसके बराबर त्रिफलाका चूर्ण और दोनोंके बराबर मिश्री मिलाय देवै. प्रथम १ पल गंधामृत भक्षण करै. घी शहतसे, ऊपरसे इसको फाँक लेवै तो मृत्यु-समान रोगको नाश करै. ऐसा यह गंधामृत रसायन है ॥ ८ ॥

मकरध्वजरस ।

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेद्द्वित्वगन्धकम् ।
रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्या त्रिदिनं ततः ॥९॥
मुखं काचघटे रुद्ध्वा वालुकायंत्रगं हठात् ।
भस्म कुर्याद्रसेंद्रस्य नवार्ककिरणोपमम् ॥ १० ॥
भागोऽस्य भागाश्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः ।
लवंगं मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया ॥ ११ ॥
मेलयेन्मृगनाभिं च गद्याणकमितां ततः ।
श्लक्ष्णपिष्टो रसः श्रीमान् जायते मकरध्वजः १२

भाषार्थ–सुवर्णके वर्क और उससे आठगुणा पारा, पा-रासे दूना गंधक, इन तीनोंको लेके, कपासके लाल फूलोंके रस-खरल करै फिर घीग्वारके पट्ठाके रसमें ३ दिन खरल करै ॥ ९ ॥ अनन्तर उसको कांचकी शीशीमें भर, उसका मुख बंद करै और वालुकायंत्रमें रखकर, तीक्ष्ण आँचसे फूँक देवै तो नवीन सूर्यके किरणसमान लाल २ भस्म हो जाती है. सो नि-काललेवे ॥ १० ॥ इस रसके १ भागमें ४ भाग कपूर, चार भाग लौंग, ४ भाग काली मिर्च, ४ भाग जायफल मिलावै ॥ ११ ॥ और एक गद्याण (६ माशे) प्रमाण कस्तूरी मिलावै फिर पीस करके, रख छोड़ै. इसप्रकार यह मकरध्वज रस बनता है ॥१२॥

मकरध्वजरससेवनप्रकार ।

वल्लं वल्लद्वयं वास्य ताम्बूलदलसंयुतम् ।
भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं लघुमांसमवातुलम् ॥ १३ ॥
शृतं शीतं सितायुक्तं दुग्धं गोधूममाज्यकम् ।
माषाश्च पिष्टमपरं मत्स्यानि विविधानि च॥१४॥
करोत्यग्निबलं पुंसां वलीपलितनाशनः ।
मेधायुःकांतिजनकः कामोद्दीपनकृन्महान्॥१५॥
अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः।
रतिकाले रतान्ते वा पुनः सेव्यो रसोत्तमः॥१६॥
मदहानिं करोत्येषः प्रमदानां सुनिश्चितम् ।
कृत्रिमं स्थावरविषं जंगमं विषवारिजम् ॥ १७ ॥
न विकाराय भवति साधकेन्द्रस्य मत्सरात् ।

मृत्युंजयरसाभ्यासान्मृत्युं जयति देहभृत्॥१८॥
तथायं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ।

भाषार्थ–इसकी मात्रा २ रत्ती वा ४ रत्ती प्रमाण पानमें रखकर, खावै. इसपर मधुर, चिकना और हलका मांस खावै ॥ ॥ १३ ॥ और अधौटा दूध शकर डाल पीवै तथा गेहूँके पदार्थ घीमें भून खावै. उड़दकी पीठीके पदार्थ घीमें भुनेहुए और अनेक प्रकारकी मछली खावै ॥ १४ ॥ यह सम्पूर्ण पदार्थ रसके साथ जठराग्निको बढ़ाते हैं और मनुष्योंको बलवान् तथा बुढ़ापेका नाश करते हैं, बुद्धि स्मृति और कांतिको करते हैं, कामदेवको बहुतही प्रबल करते हैं ॥ १५ ॥ अभ्यास करके इस रसको सेवन करनेवाला मनुष्य नित्य सौ स्त्रियोंको जीत सकता है, मैथुनसमय वा मैथुनके अन्तमें इस उत्तम रसको पुनः सेवन करै ॥ १६ ॥ यह रस निश्चय करके स्त्रियोंके मद (गर्व) को दूर करता है और कृत्रिम, स्थावर, जंगम और जलके विष ॥ १७ ॥ इस रसके सेवन करनेवालोंको विकार नहीं करसकते, जैसे एक वर्षपर्यन्त मृत्युंजयरसके अभ्याससे मनुष्य मृत्युको जीतता है ॥ १८ ॥ तैसे ही यह रस साधन करनेवालेकी जरा और मृत्युको नाश करता है ॥

मदनकामदेवरस ।

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं च सूतगन्धकम् ।
लोहं च कमवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया १९॥
विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये घटे ।
मुद्रितं पिठरीमध्ये धारयेत्सैंधवैर्भृते ॥ २० ॥

पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक् ततश्चुल्यां निवेशयेत् ।
वह्निं शनैः शनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत्॥२१॥
स्वांगशीतं च संचूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ।
अश्वगंधा च कंकोली वानरी मुशली क्षुरः॥२२॥
त्रिवेलस्वरसं भाव्यं शतावर्या विभावयेत् ।
पद्मकन्दकसेरूणां रसे कांसस्य भावयेत् ॥२३॥
कस्तूरीब्योषकर्पूरैः कंकोलैलालवंगकम् ।
पूर्वचूर्णादष्टमांशमितचूर्णं विमिश्रयेत् ॥ २४ ॥
सर्वैः समां शर्करां च दत्वा शाणोन्मितं ददेत् ।
गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेविनः॥ २५ ॥
अस्य प्रभावात्सौंदर्यं बलं तेजो हि वर्धते ।
तरुणी रमते बह्वीर्वीर्यहानिर्न जायते ॥ २६ ॥

भाषार्थ–चाँदी, हीरा, सुवर्ण, तांबा, पारा, गंधक, लोह, इनकी भस्म क्रमवृद्धिपूर्वक अर्थात् चाँदी भस्म १ भाग, हीरा भस्म २ भाग, इत्यादि लेवै ॥ १९ ॥ और सबको मिलाय घीग्वारके पाठाके रसमें खरल करके काँचकी कुप्पीमें रख देवै, फिर अच्छेप्रकार उसका मुख बंद करके, कपड़मिट्टी करै और सेंधालवणसे भरीहुई हाँडीमें धरकर ऊपरसे ॥ २० ॥ दूसरी हाँड़ी रख, मुद्रा करके चुल्हेपर चढा देवै और एक दिन मंद २ आंचसे पकावै फिर उतार लेवै ॥२१॥ और स्वांगशीतल होजानेपर आकके दूधकी भावना देवै फिर असगंध, कंकोल, कौंच, मुशली, तालमखाना ॥२२॥ शतावरी, इनके रसकी पृथक् २तीन२

वार भावना देवै फिर कमलकंद, कसेरू, काँस, इनके रसकी एक २ भावना देवै ॥२३॥ फिर कस्तूरी, व्योष (सोंठि, मिर्च, पीपरि,) कपूर, कंकोल, इलायची, लौंग, यह सब पूर्वोक्त चूर्णसे अष्टमांश लेके सबको मिलावै ॥ २४ ॥ फिर सब चूर्णके बराबर मिश्री मिलाकर पीस लेवै और उसमेंसे १ टंकप्रमाण मात्रा रोगीको देवै. २ पल गौके दूधके साथ यह चूर्ण खावै और भोजन मीठा और हलका करै ॥ २५ ॥ इस रस सेवनके प्रभावसे सुंदरता, बल और तेज बढ़ता है और बहुतसी युवा नवस्थावाली स्त्रियोंसे रमण करै, तथा वीर्यकी हानि नहीं होती है ॥ २६ ॥

पूर्णेन्दुरस।

शाल्मल्युत्थैर्द्रवैर्मर्द्य पक्षैकं शुद्धसूतकम्।
यामद्वयं पचेदाज्ये वस्त्रैर्बध्वाथ मर्दयेत् ॥ २७ ॥
दिनैकं शाल्मलिद्रावैर्मर्दयित्वा वटीं कृताम्।
वेष्टयेन्नागवल्ल्या च निक्षिपेत्काचभाजने ॥२८॥
भाजनं शाल्मलीद्रावैः पूर्णं यामद्वयं पचेत्।
वालुकायंत्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् ॥२९॥
द्विगुंजं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलांतरे।
मुशलीं संमितां क्षीरैः पलैकं पाचयेदनु ॥ ३० ॥
रसः पूर्णेन्दुनामायं सम्यग् वीर्यकरो भवेत्।
कामिनीनां सहस्रैकं नरः कामयते ध्रुवम् ॥३१॥

भाषार्थ-शुद्ध पारेको सेमरकी जडके रसमें १५ दिनतक खरल करै फिर वस्त्रमें बाँधकर दो प्रहर घीमें पकावै ॥ २७ ॥

अनंतर १ दिन फिर सेमरके रसमें खरल करै फिर पानके रसमें मर्दन करके, गोली बनाय, ऊपरसे पान लपेट काचकी कुप्पीमें भरदे ॥ २८ ॥ और उस कुप्पीको सेमरके कंदके रससे भर देवै फिर वालुकायंत्रमें रखकर, दो प्रहरतक पकावै. रस सूख जानेपर उतार लेवै ॥ २९ ॥ यह रस दो रत्तीप्रमाण लेके, प्रातःकाल पानमें रखके, खाय. ऊपरसे १ पल मुशली दूधमें पकाय, मिश्री मिलाय, पीवै ॥ ३० ॥ यह पूर्णेन्दु नाम रस सम्यक् प्रकार वीर्यको बढ़ाता है. इसको सेवन करनेवाला मनुष्य निश्चय हजार स्त्रियोंकी इच्छा करै ॥ ३१ ॥

कामिनीमदभंजनरस।

शुद्धं सूतं समं गंधं त्र्यहं कल्हारजद्रवैः।
मर्दितं वालुकायंत्रे यामं संपुटगं पचेत् ॥ ३२ ॥
रक्तागस्तिद्रवैर्भाव्यं दिनैकं तु सितायुतम्।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ-शुद्ध पारा और उसके बराबर गंधक लेके कलियारीके रसमें तीन दिनतक मर्दन करै फिर शीशीमें भर, संपुट करके, वालुकायंत्रमें रख पकावै ॥ ३२ ॥ फिर लाल अगस्तके रससे १ दिन खरल करै और मिश्री मिलाय, मात्राप्रमाण प्रातः समय खाय, ऊपरसे दुग्ध पीवै तो सौ स्त्रियोंके साथ भोग करनेकी वह मनुष्य इच्छा करै ॥ ३३ ॥

मदनोदयरस।

शुद्धं सूतं समं गंधं रक्तोत्पलदलद्रवैः।
यामं मर्द्यं पुनर्गन्धं पूर्वादर्धं विनिक्षिपेत् ॥३४॥

दिनैकं मर्दयेत्तत्तु पुनर्गन्धं च मर्दयेत् ।
पद्मपत्ररसैरेव काचकुप्यां निरुध्य च ॥ ३५ ॥
दिनैकं वालुकायंत्रे पक्वमुद्धृत्य भक्षयेत् ।
पंचगुंजासितासार्धं रसोऽयं मदनोदयः ॥ ३६ ॥
समूलं वानरीबीजं मुशलीशर्करासमम् ।
गवा क्षीरेण तत्पेयं पलार्धमनुपानकम् ॥ ३७ ॥

भाषार्थ–शुद्ध पारा और बराबर गंधक, दोनोंको लेके लाल कमलके पत्तोंके रसमें १ प्रहरतक खरल करै फिर पहलेसे ही आधी गंधक डालके, लाल कमलके पत्तोंके रसमें ॥ ३४ ॥ एक दिन खरल करै फिर आधी गंधक मिला उसीके रसमें मर्दन करै और काँचकी कुप्पीमें धरकर कपरौटी करै ॥ ३५ ॥ फिर वालुकायंत्रमें एक दिन पकावै. शीतल हो जाय तब उतारकर पाँच रत्तीप्रमाण लेके मिश्रीके साथ खावै. यह मदनोदय रस है ॥ ३६ ॥ इसके ऊपरसे कौंचकी जड, और बीज, तथा मुशली, और बराबर मिश्री वा शकर मिलाय, आधा पल (२ तोला) फाँककर, गौका दूध पीवै ॥ ३७ ॥

अनंगसुंदररस ।

पलद्वयं द्वयं शुद्धं पारदं गन्धकं तथा ।
मृतहेम्नस्तु कर्षैकं पलैकं मृतताम्रकम् ॥ ३८ ॥
मृततारं चतुर्निष्कं मर्द्यं पंचामृतैर्दिनम् ।
रुद्ध्वा तु वै पुटेत्पश्चाद्दिनैकं तु समुद्धरेत् ॥३९॥
पिष्ट्वा पंचामृतैः कुर्याद्वटिकां बदराकृतिम् ।
अनंगसुंदरो नाम परं पुष्टिप्रदायकः ॥ ४० ॥

भाषार्थ–शुद्ध पारा २ पल तथा शुद्ध गंधक २ पल, सुवर्णकी भस्म १ कर्ष, ताम्रभस्म १ पल ॥ ३८ ॥ चाँदीकी भस्म ४ टंक, इन सबको लेके, पंचामृतमें एक दिन मर्दन करके संपुटमें रख, वालुकायंत्रद्वारा पकावै. एक दिन पीछे निकाल लेवै ॥ ३९ ॥ फिर पंचामृतमें पीस करके, बेर समान गोली बना-लेवै. यह अनंगसुंदर नाम रस अत्यन्त पुष्टिदायक है ॥ ४० ॥

कामेश्वररस ।

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगन्धामृता मेथी मोचरसो विदारिमुशली गोक्षूरकं क्षूरकम् । रंभाकन्दशतावरी अजमुदा माषास्तिला धान्यकं ज्येष्ठी नागबला कचूरमदनं जातीफलं सैंधवम् ॥ ४१ ॥ भार्ङ्गीकर्कटशृंगिका त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं चातुर्जातपुनर्नवागजकणाद्राक्षासमं वासकम् । बीजं मर्कटिशाल्मलीफलत्रिकं चूर्णं समं कल्पयेत्कर्षार्धा गुटिकाऽवलेहमथवा सेव्यं सदा सर्वथा ॥ ४२ ॥ पेयं क्षीरसिता तु वीर्यकरणं स्तंभोऽप्ययं कामिनीरामावश्यकरं सुखातिसुखदं प्रौढांगनाद्रावकम् । क्षीणे पुष्टिकरं क्षये क्षयहरं सर्वामयध्वंसनं कासश्वासमहातिसारशमनं मन्दाग्निसंदीपनम् ॥ ४३ ॥ धातोर्वृद्धिकरं रसायनवरं

नास्त्यन्यदस्मात्परं अर्शांसि ग्रहणीप्रमेह-
निचयश्लेष्मातिरक्तप्रणुत्। अभ्यासेन निह-
न्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात्सर्वेषां
हितकारको निगदितः श्रीवैद्यनाथेन यः ॥४४॥

भाषार्थ-अच्छे प्रकार माराहुआ अभ्रक, कायफल, कूठ, असगन्ध, गुर्च, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मूशली, गोखरू, केलाकंद, शतावरी, अजमोद, उड़द, तिल, धनियां, गंगेरन बड़ी, कचूर, मैनफल, जायफल, सेंधालवण, ॥ ४१ ॥ भारंगी, काकड़ासिंगी, त्रिकुटा, दोनौं जीरे, चित्रक, चातुर्जात (इलायची, तेजपात, नागकेशर, तज,) सांठी, गजपीपरि, दाख, अडूसा, कौंचके बीज, सेमर, त्रिफला (आंवला, हर्र, बहेड़ा,) इन सबको बराबर लेकर, चूर्ण बनालेवै वा गोली बनायले. इसकी मात्रा आधी कर्षकी गोली अथवा चटनी सर्वदा सेवन करै ॥४२॥ इसके ऊपर दुग्ध और मिश्री पीवै तो वीर्यको बढ़ावै, और स्त्रियोंमें स्तंभन करै, तथा स्त्रियोंको वश्य करै, अत्यन्त सुख देता है, और स्त्रियोंको द्रवीभूत करता है, क्षीण देहवालेको पुष्ट करता है, क्षयीरोगको हरता है, तथा संपूर्ण रोगोंका नाश करता है और खांसी, श्वास, अतीसारको दूर करता है, तथा मन्दाग्निको प्रदीप्त करता है ॥४३॥ यह धातुकी वृद्धि करनेवाला और श्रेष्ठ रसायन है. इससे परे अन्य कोई रसायन नहीं है. और ववासीर, संग्रहणी, प्रमेह, श्लेष्मा, रुधिरविकारको नाश करता है, तथा मनुष्य इसके अभ्याससे मृत्यु और बुढ़ापेको जीतता है. यह कामेश्वररस श्रीवैद्यनाथजीने सबका हित करनेवाला वर्णन किया है ॥४४ ॥

मृतसंजीवनी गुटिका ।

शुद्धसूतं वंगभस्म सत्वमभ्रकताप्ययोः ।
कान्तलोहसमं हेम जम्बीरे मर्दयेद्दृढम् ॥४५॥
सप्ताहं सर्वतुल्यांशं गोलं कृत्वा समुद्धरेत् ।
गोजिह्वां वायसीवन्ध्यानिर्गुंडीमधुसैंधवैः ॥४६॥
लेपयेद्वज्रमूषांते गोलकं तत्र निःक्षिपेत् ।
तत्कल्कैश्छादितं कृत्वा पक्षैकं भूधरे पचेत् ॥४७॥
यामं यामं समुद्धृत्य लिप्त्वा मूषां पुनःपुनः ।
रुद्ध्वाथ पूर्ववत्पाच्यमेनं पक्षात्समुद्धरेत् ॥ ४८ ॥
यवचिंचीपलाशाख्यराजीकार्पासतंदुलैः ।
एतैः प्रलेपयेन्मूषां गुटिकां तत्र निक्षिपेत् ॥४९॥
टंकणं श्वेतकाचं च दत्त्वा यामे दृढं दृढम् ।
खदिरांगारयोगेन द्रुतोऽयं जायते रसः ॥ ५० ॥
मूषायां विडयोगेन समं हेम च जारयेत् ।
ततस्त्रियामकैर्मर्द्यं सगोमूत्रं दिनैकतः ॥ ५१ ॥
अंधमूषगतो ध्मातो बद्धो भवति वज्रवत् ।
मृतसंजीवनीनाम गुटिका वक्त्रमध्यमा ॥ ५२ ॥
कर्षमात्राज्जरामृत्युं हंति सत्यं शिवोदितम् ।
शस्त्रस्तंभं च कुरुते ब्रह्मायुर्जायते नरः ॥ ५३ ॥

भाषार्थ-शुद्ध पारा, वंगकी भस्म, अभ्रक और चांदीका सत्व, कांतिसार लोह और बराबर सुवर्ण, इन सबको लेके, जंभीरीके रसमें मर्दन करै ॥ ४५ ॥ इस प्रकार सात दिन

खरल करके, गोला बनाय लेवै, फिर गोभी, काकमाची, बांझक-कोडी, निर्गुंडी, शहत, सेंधालवण ॥ ४६ ॥ इनका लेपन वज्र-मूषापर कर देवै. उसके बीच उस गोलाको रख देवै और लेप-की लुगदीसे ढक देवै और एक पक्ष (१५ दिन) भूधर यंत्रमें रख, पचावै ॥ ४७ ॥ परंतु प्रहर २ उपरांत निकाल कर, मूषा-पर बार २ लेप कर देवै. पूर्ववत् मुख बंद करके, पकाताजाय. इसी प्रकार १५ दिन पचाकर, निकाल लेवै ॥ ४८ ॥ फिर जौ, इमिली, ढाक, राई, कपास, चावल, इनका लेप मूषा-पर करके, गोलीको रक्खै ॥ ४९ ॥ फिर सुहागा और सपेद कांचको उसमें डालकर, प्रहरभर खूब रगड़ै और खैरकी लक-ड़ीकी आंच देवै तो शीघ्र रस बन जाता है ॥ ५० ॥ मूषामें सोंचरलवणको योगसे समान सुवर्णको जलावै फिर तीन प्रहर खरल करके गोमूत्रके साथ १ दिन रगड़ै ॥ ५१ ॥ और अंधमूषमें रखकर,आंच देनेसे वज्रके समान बँध जाता है. यह मृतसंजीवनी नाम गुटिका है ॥ ५२ ॥ एक कर्ष प्रमाण मात्रा खानेसे जरा मृत्युको नाश करता है. यह सत्य सत्य शिवजीने कहा है, तथा यह गुटिका शस्त्र (हथियार) का स्तम्भन करता है और इसके सेवनसे आयु बहुत होती है ॥ ५३ ॥

वीर्यरोधिनी गुटिका ।

नागवल्लीदलद्रावैः सप्ताहं शुद्धसूतकम् ।
मर्दयेत्क्षालयेदम्लैश्चतुर्निष्कप्रमाणकम् ॥ ५४ ॥
विषकंदगतं कृत्वा विषेणैव निरोधयेत् ।
ततः शूकरमांसस्य गर्भे कृत्वाथ सिंचयेत् ॥ ५५ ॥
संध्याकाले बलिं दत्वा कुक्कुटीवारुणीयुतम् ।

ततश्चुल्ल्यां लोहपात्रे तैलधत्तूरसंयुते ॥ ५६ ॥
क्षिप्त्वा त्रिंशत्पले पाच्यं तद्रसं मांसपिंडगम् ।
सन्ध्यामारभ्य मंदाग्नौ यावत्सूर्योदयं पचेत्५७॥
हठाज्जागरणं कुर्यादन्यथा तन्न सिद्धिभाक् ।
प्रातरुद्धृत्य गुटिकां क्षीरभांडे विनिक्षिपेत् ॥५८॥
तत्क्षीरं शुष्यति क्षिप्रमेतत्प्रत्ययकारकम् ।
रतिकाले मुखे धार्या गुटिका वीर्यरोधिनी॥५९॥
क्षीरं पीत्वा रमेद्रामां कामाकुलकुलान्विताम् ।
स्वमुखाद्धारयेद्धस्ते तदा वीर्यं विमुंचति ॥ ६०॥

भाषार्थ–पानके रसमें सात दिन शुद्ध पारेको खरल करै फिर ४ निष्क प्रमाण इमलीके जलसे धोवै ॥ ५४ ॥ फिर ते-लियामीठाके कंदमें रखकर, उसीसे ढक देवै. अनन्तर सूअरके मांसके बीचमें रखकर, सींच देवै ॥ ५५ ॥ और सायंकालमें कुक्कुटी और मदिराका बलि देके, उसको चूल्हेपर लोहेकी कढ़ा-ईमें ३० पल तेल और धतूरा मिलाय, चढ़ा देवै और मन्दीमन्दी आंचसे पचावै; जिससे उसका रस मांसके पिंडमें भरजाय. संध्या-से लेकर, सूर्योदयपर्यंत धीमी आंच देता रहै ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हठसे जागरण करै. शयन नहीं करै. नहीं तो सिद्धि नहीं होगी. फिर प्रातःसमय उसमेंसे गुटिकाको निकाल कर, दूधके पात्रमें डाल देवै ॥ ५८ ॥ दूध डालदेवै. वह दूध शीघ्र सूख जाता है. यही इसकी परीक्षा है इस गुटिकाको मैथुन करनेके समय मुखमें धरै तो वीर्यको स्तम्भन करती है ॥ ५९ ॥ और दूध पीकर, कामसे पीडित स्त्रियोंके साथ रमण करै तो जब अपने

खरल करके, गोला बनाय लेवै, फिर गोभी, काकमाची, बांझक-कोडी, निर्गुंडी, शहत, सेंधालवण ॥ ४६ ॥ इनका लेपन वज्र-मूषापर कर देवै. उसके बीच उस गोलाको रख देवै और लेप-की लुगदीसे ढक देवै और एक पक्ष (१५ दिन) भूधर यंत्रमें रख, पचावै ॥ ४७ ॥ परंतु प्रहर २ उपरांत निकाल कर, मूषा-पर बार २ लेप कर देवै. पूर्ववत् मुख बंद करके, पकाताजाय. इसी प्रकार १५ दिन पचाकर, निकाल लेवै ॥ ४८ ॥ फिर जौ, इमिली, ढाक, राई, कपास, चावल, इनका लेप मूषा-पर करके, गोलीको रक्खै ॥ ४९ ॥ फिर सुहागा और सपेद कांचको उसमें डालकर, प्रहरभर खूब रगड़ै और खैरकी लक-ड़ीकी आंच देवै तो शीघ्र रस बन जाता है ॥ ५० ॥ मूषामें सोंचरलवणको योगसे समान सुवर्णको जलावै फिर तीन प्रहर खरल करके गोमूत्रके साथ १ दिन रगड़ै ॥ ५१ ॥ और अंधमूषमें रखकर,आंच देनेसे वज्रके समान बँध जाता है. यह मृतसंजीवनी नाम गुटिका है ॥ ५२ ॥ एक कर्ष प्रमाण मात्रा खानेसे जरा मृत्युको नाश करता है. यह सत्य सत्य शिवजीने कहा है, तथा यह गुटिका शस्त्र (हथियार) का स्तम्भन करता है और इसके सेवनसे आयु बहुत होती है ॥ ५३ ॥

वीर्यरोधिनी गुटिका ।

नागवल्लीदलद्रावैः सप्ताहं शुद्धसूतकम् ।
मर्दयेत्क्षालयेदम्लैश्चतुर्निष्कप्रमाणकम् ॥ ५४ ॥
विषकंदगतं कृत्वा विषेणैव निरोधयेत् ।
ततः शूकरमांसस्य गर्भे कृत्वाथ सिंचयेत् ॥ ५५ ॥
संध्याकाले बलिं दत्वा कुकुटीवारुणीयुतम् ।

ततश्चुल्ल्यां लोहपात्रे तैलधत्तूरसंयुते ॥ ५६ ॥
क्षिप्त्वा त्रिंशत्पले पाच्यं तद्रसं मांसपिंडगम् ।
सन्ध्यामारभ्य मंदाग्नौ यावत्सूर्योदयं पचेत्५७॥
हठाज्जागरणं कुर्यादन्यथा तत्र सिद्धिभाक् ।
प्रातरुद्धृत्य गुटिकां क्षीरभांडे विनिक्षिपेत् ॥५८॥
तत्क्षीरं शुष्यति क्षिप्रमेतत्प्रत्ययकारकम् ।
रतिकाले मुखे धार्या गुटिका वीर्यरोधिनी॥५९॥
क्षीरं पीत्वा रमेद्रामां कामाकुलकुलान्विताम् ।
स्वमुखाद्धारयेद्धस्ते तदा वीर्यं विमुंचति ॥ ६०॥

भाषार्थ–पानके रसमें सात दिन शुद्ध पारेको खरल करै फिर ४ निष्क प्रमाण इमलीके जलसे धोवै ॥ ५४ ॥ फिर ते-लियामीठाके कंदमें रखकर, उसीसे ढक देवै. अनन्तर सूअरके मांसके बीचमें रखकर, सींच देवै ॥ ५५ ॥ और सायंकालमें कुकुटी और मदिराका बलि देके, उसको चूल्हेपर लोहेकी कढ़ा-ईमें ३० पल तेल और धतूरा मिलाय, चढ़ा देवै और मन्दीमन्दी आंचसे पचावै; जिससे उसका रस मांसके पिंडमें भरजाय. संध्या-से लेकर, सूर्योदयपर्यंत धीमी आंच देता रहै ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हठसे जागरण करै. शयन नहीं करै. नहीं तो सिद्धि नहीं होगी. फिर प्रातःसमय उसमेंसे गुटिकाको निकाल कर, दूधके पात्रमें डाल देवै ॥ ५८ ॥ दूध डालदेवै. वह दूध शीघ्र सूख जाता है. यही इसकी परीक्षा है इस गुटिकाको मैथुन करनेके समय मुखमें धरै तो वीर्यको स्तम्भन करती है ॥ ५९ ॥ और दूध पीकर, कामसे पीडित स्त्रियोंके साथ रमण करै तो जब अपने

मुखसे गुटिकाको निकालकर, हाथमें लेवे तब वीर्य स्खलित होत है ॥ ६० ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसाद मुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां रसायनगुटिकाकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥ ८ ॥

अंजनविधि ।

अथ संपक्वदोषस्य प्रोक्तमंजनमाचरेत् ।
हेमंते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽजनमिष्यते ॥ १ ॥
पूर्वाह्णे चापराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ।
वर्षासु कुर्यादत्युष्णे वसन्ते च सदैव हि ॥ २ ॥
श्रांते वांते तथा भीते पीतमद्ये नवज्वरे ।
अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रशस्यते ॥ ३ ॥

भाषार्थ-अब दोषके पकनेपर जो अंजन कहा है सो लगावै, हेमंत और शिशिर ऋतुमें मध्याह्नमें अंजन लगाना कहा है ॥१॥ ग्रीष्मऋतु और शरदऋतुमें पूर्वाह्ण और अपराह्ण कालमें अंजन लगाना कहा है, वर्षासमयमें अत्यंत गरमी जिस समय हो तब लगावै और वसन्तकालमें सदैव हितकारक है ॥ २ ॥ तथा थकावटमें, वांति होनेपर, भयमें, मद्य पीनेमें, नवीन ज्वरमें, अजीर्णमें, वेगकी अधिकतामें, अंजन लगाना शुभ नहीं है ॥ ३ ॥

वर्तिप्रमाण ।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णांजने भिषक् ।
प्रमाणं मध्यमे सार्धं द्विगुणं च मृदौ भवेत् ॥४॥

भाषार्थ-वैद्यजन तीक्ष्ण अंजनमें मटरके बराबर गोली वा वर्ती बनावै, मध्यमांजनमें डेढ़ मटरभर और मृदुमें मटरसे दुगुनी बनावै ॥ ४ ॥

नेत्ररोगनाशकांजन ।

सूतकं गन्धकोपेतं चांगेरीरसमूर्च्छितम् ।
अंजनं दृष्टिदं नृणां नेत्रामयविनाशनम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ-पारा और गंधकको लेके, चांगेरीके रसमें खरल करै और नेत्रोंमें अंजन करै. यह अंजन दृष्टि देनेवाला अर्थात् ज्योति बढ़ावनेवाला और मनुष्योंके नेत्ररोगोंको नाश करनेवाला है ५

नयनामृतांजन ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमंजनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं नयनामृतम् ॥ ६ ॥

भाषार्थ-पारा और शीशा ये दोनों बराबर लेके, इनसे दूना सुरमा मिलावै और कुछ थोड़ा कपूर डाल देवै. यह नयनामृत नाम अंजन है ॥ ६ ॥

नेत्रामयनाशकांजन ।

कृष्णा सर्पवसा शंखः कतकं कट्फलांजने ।
रस एष मरीचेन अंधानां दर्शनं परम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ-स्याह सर्पकी चर्बी, शंख, निर्मली वृक्षका फल, कायफल और सुरमा, इनको स्याह मिर्चके जलमें खरल करै. यह अंजन अंधोंको दृष्टि देता है ॥ ७ ॥

तथाच ।

शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्धमरिचं मरिचार्धेन पिप्पली ॥ ८ ॥

मुखसे गुटिकाको निकालकर, हाथमें लेवे तब वीर्य स्खलित होत है ॥ ६० ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसाद मुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषा-टीकायां रसायनगुटिकाकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥ ८ ॥

अंजनविधि ।

अथ संपक्वदोषस्य प्रोक्तमंजनमाचरेत् ।
हेमंते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽजनमिष्यते ॥ १ ॥
पूर्वाह्ने चापराह्ने वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ।
वर्षासु कुर्यादत्युष्णे वसन्ते च सदैव हि ॥ २ ॥
श्रांते वांते तथा भीते पीतमद्ये नवज्वरे ।
अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रशस्यते ॥ ३ ॥

भाषार्थ–अब दोषके पकनेपर जो अंजन कहा है सो लगावै, हेमंत और शिशिर ऋतुमें मध्याह्नमें अंजन लगाना कहा है ॥ १ ॥ ग्रीष्मऋतु और शरदऋतुमें पूर्वाह्न और अपराह्न कालमें अंजन लगाना कहा है, वर्षासमयमें अत्यंत गरमी जिस समय हो तब लगावै और वसन्तकालमें सदैव हितकारक है ॥ २ ॥ तथा थकावटमें, वांति होनेपर, भयमें, मद्य पीनेमें, नवीन ज्वरमें, अजीर्णमें, वेगकी अधिकतामें, अंजन लगाना शुभ नहीं है ॥ ३ ॥

वर्तिप्रमाण ।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णांजने भिषक् ।
प्रमाणं मध्यमे सार्धं द्विगुणं च मृदौ भवेत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ–वैद्यजन तीक्ष्ण अंजनमें मटरके बराबर गोली वा वर्ती बनावै, मध्यमांजनमें डेढ़ मटरभर और मृदुमें मटरसे दुगुनी बनावै ॥ ४ ॥

नेत्ररोगनाशकांजन ।

सूतकं गन्धकोपेतं चांगेरीरसमूर्च्छितम् ।
अंजनं दृष्टिदं नृणां नेत्रामयविनाशनम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ–पारा और गंधकको लेके, चांगेरीके रसमें खरल करै और नेत्रोंमें अंजन करै. यह अंजन दृष्टि देनेवाला अर्थात् ज्योति बढ़ावनेवाला और मनुष्योंके नेत्ररोगोंको नाश करनेवाला है ५

नयनामृतांजन ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमंजनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं नयनामृतम् ॥ ६ ॥

भाषार्थ–पारा और शीशा ये दोनों बराबर लेके, इनसे दूना सुरमा मिलावै और कुछ थोड़ा कपूर डाल देवै. यह नयनामृत नाम अंजन है ॥ ६ ॥

नेत्रामयनाशकांजन ।

कृष्णा सर्पवसा शंखः कतकं कट्फलांजने ।
रस एष मरीचेन अंधानां दर्शनं परम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ–स्याह सर्पकी चर्बी, शंख, निर्मली वृक्षका फल, कायफल और सुरमा, इनको स्याह मिर्चके जलमें खरल करै. यह अंजन अंधोंको दृष्टि देता है ॥ ७ ॥

तथाच ।

शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्धमरिचं मरिचार्धेन पिप्पली ॥ ८ ॥

वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हंति मस्तुना ।
चिर्पिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण च पुष्पकम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ–शंख ४ भाग, मनाशिल २ भाग, मनशिलसे आधी (१ भाग) मिर्च, मिर्चसे आधी (आधा भाग) पीपरि, इन सबकी गोली बना लेवै ॥ ८ ॥ यह गोली जलमें घिसकर, लगानेसे तिमिरको नाश करती है, तोड़के साथ लगानेसे अर्बुदरोगको, शहतके साथ लगानेसे नेत्रोंकी खुजाहटको, स्त्रीके दूधके साथ लगानेसे नेत्रोंकी फुल्लीको नाश करती है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

अपामार्गशिखां घृष्ट्वा मधुना सैंधवेन च ।
ताम्रपात्रे कृता नेत्रे हन्ति पीडां सुदुस्तराम् ॥१०॥
दंतैर्दन्तिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ।
शंखमुक्ताम्भोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णयेत् ॥ ११ ॥
हन्ति वर्तिः कृता श्लक्ष्णं नेत्राणां सकलामयान् ।

भाषार्थ–अपामार्ग (ओंगा) की शिखाको शहत और सेंधालवणमें घिसकर, ताम्रपात्रमें रख लेवै. यह अंजन नेत्रोंमें लगानेसे कठिन पीडाको भी नाश करता है ॥ १० ॥ और दंती (हाथी), सुअर, ऊंट, गौ, घोड़ा, बकरी, गदहा, इनके दांत, शंख, मोती, समुद्रफेन, इन सबको पीसकर, चूर्ण करलेवै. फिर चिकनी बत्ती बना लेवै. यह नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगोंको नाश करती है ॥ ११ ॥

चन्द्रोदयवर्ती ।

शंखनाभिर्बिभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ १२ ॥

छागीक्षीरेण संपिष्ट्वा वर्तिं कृत्वा यवोन्मिताम् ।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथांजनम् ॥ १३ ॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् ।
रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥१४॥

भाषार्थ–शंख, बहेड़ेकी मींगी, हर्रे, मनाशिल, पीपरि, मिर्च, कूट, बच, ये सब बराबर २ लेवै ॥ १२ ॥ और बकरीके दूधमें पीसकर, जौंके बराबर बत्ती बना लेवै, और मटरके बराबर गोली जलमें घिसकर, नेत्रोंमें अंजन करै ॥ १३ ॥ तो तिमिर (धुंधलापन), मांसवृद्धि (मांसबढजाना), काच, पटल, अर्बुद, रतौंधी, सालभरकी फुल्ली, इतने नेत्ररोगोंको यह चंद्रोदया वर्ती नाश करती है ॥ १४ ॥

अमृतांजन ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धसूतं विनिक्षिपेत् ।
कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १५ ॥
दशमांशेन कर्पूरमस्मिँश्चूर्णे प्रदापयेत् ।
एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ–शुद्धनाग (शीशे) को लेके, पिघलाय उसके बराबर शुद्ध पारा उसमें मिला देवै, और दोनोके बराबर काला सुर्मा मिलाय, सबको एकत्र कर, पीस लेवै ॥१५॥ और उसमें दशवां हिस्सा कपूर डाल देवै. यह अंजन नेत्रोंका रोग नाश करनेको नयनामृत है ॥ १६ ॥

तथाच ।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जाता रोगाः प्रणश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥१७॥

वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हंति मस्तुना ।
चिर्पिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण च पुष्पकम् ॥ ९ ॥

भाषार्थ–शंख ४ भाग, मनाशिल २ भाग, मनाशिलसे आधी (१ भाग) मिर्च, मिर्चसे आधी (आधा भाग) पीपरि, इन सबकी गोली बना लेवै ॥ ८ ॥ यह गोळी जलमें घिसकर, लगानेसे तिमिरको नाश करती है, तोड़के साथ लगानेसे अर्बुदरोगको, शहतके साथ लगानेसे नेत्रोंकी खुजाहटको, स्त्रीके दूधके साथ लगानेसे नेत्रोंकी फुल्लीको नाश करती है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

अपामार्गशिखां घृष्ट्वा मधुना सैंधवेन च ।
ताम्रपात्रे कृता नेत्रे हन्ति पीडां सुदुस्तराम् ॥१०॥
दंतैर्दन्तिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ।
शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णयेत् ॥ ११ ॥
हन्ति वर्तिः कृता श्लक्ष्णं नेत्राणां सकलामयान् ।

भाषार्थ–अपामार्ग (ओंगा) की शिखाको शहत और सेंधालवणमें घिसकर, ताम्रपात्रमें रख लेवै. यह अंजन नेत्रोंमें लगानेसे कठिन पीडाको भी नाश करता है ॥ १० ॥ और दंती (हाथी), सुअर, ऊंट, गौ, घोड़ा, बकरी, गदहा, इनके दांत, शंख, मोती, समुद्रफेन, इन सबको पीसकर, चूर्ण करलेवै. फिर चिकनी बत्ती बना लेवै. यह नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगोंको नाश करती है ॥ ११ ॥

चन्द्रोदयवर्ती ।

शंखनाभिर्बिभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ १२ ॥

छागीक्षीरेण संपिष्ट्वा वर्तिं कृत्वा यवोन्मिताम् ।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथांजनम् ॥ १३ ॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् ।
रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥१४॥

भाषार्थ–शंख, बहेड़ेकी मींगी, हर्रे, मनाशिल, पीपरि, मिर्च, कूट, बच, ये सब बराबर २ लेवै ॥ १२ ॥ और बकरीके दूधमें पीसकर, जौके बराबर बत्ती बना लेवै, और मटरके बराबर गोली जलमें घिसकर, नेत्रोंमें अंजन करै ॥ १३ ॥ तो तिमिर (धुंधलापन), मांसवृद्धि (मांसबढजाना), काच, पटल, अर्बुद, रतौंधी, सालभरकी फुल्ली, इतने नेत्ररोगोंको यह चंद्रोदया वर्ती नाश करती है ॥ १४ ॥

अमृतांजन ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धसूतं विनिक्षिपेत् ।
कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १५ ॥
दशमांशेन कर्पूरमस्मिँश्चूर्णे प्रदापयेत् ।
एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ–शुद्धनाग (शीशे) को लेके, पिघलाय उसके बराबर शुद्ध पारा उसमें मिला देवै, और दोनोके बराबर काला सुर्मा मिलाय, सबको एकत्र कर, पीस लेवै ॥१५॥ और उसमें दशवां हिस्सा कपूर डाल देवै. यह अंजन नेत्रोंका रोग नाश करनेको नयनामृत है ॥ १६ ॥

तथाच ।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जाता रोगाः प्रणश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥१७॥

त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १८ ॥

भाषार्थ–भोजन करके दोनो हथेलियोंको घिस कर, जो नेत्रोंमें लगावै, तो उत्पन्नहुए नेत्ररोग नाश हो जाते हैं और फिर कभी नहीं होते ॥ १७ ॥ त्रिफलाके काढ़ेसे प्रातःसमय नेत्र धोनेसे वह जल बहुत कालसे भी उत्पन्न नेत्रोंके तिमिर आदिको तत्काल दूर करता है ॥ १८ ॥

अन्यच्च ।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थशिवाशंखमनःशिला ।
गैरिकोदकफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ १९ ॥
संयोज्य मधुना कुर्यादन्धानां सा रसक्रिया ।
वर्ध्मरोगं च तिमिरं काचशुक्रहरं परम् ॥ २० ॥

भाषार्थ–नीलाथोथा, सोनामाखी, सेंधालवण, शंख, मनशिल, गेरू, समुद्रफेन स्याहमिरच, इन सबका चूर्ण करै ॥१९॥ और शहतसे मिलाय, नेत्रोंमें अंजन करै. यह अंधोंको रसक्रिया है. यह अंजन वर्ध्मरोग, तिमिर (धुन्द), काच, फुलीआदि रोगोंको हरता है ॥ २० ॥

केशरंजन ।

त्रिफलालोहचूर्णं तु वारिणा पेषयेत्समम् ।
द्वयोस्तुल्येन तैलेन पचेन्मृद्वग्निना क्षणम् ॥२१॥
तैलतुल्ये भृंगरसे तत्तैलं तु विपाचयेत ।
स्निग्धभांडगतं भूमौ स्थितं मासात्समुद्धरेत् २२॥

सप्ताहं लेपयेद्वेष्ट्य कदल्याश्च दलैः शिरः ।
निर्वाते क्षीरभोजी स्यात्क्षालयेत्रिफलाजलैः २३॥
नित्यमेवं प्रकर्तव्यं सप्ताहं रंजनं भवेत् ।
यावज्जीवं न संदेहः कचाः स्युर्भ्रमरोपमाः ॥२४॥

भाषार्थ–त्रिफला (आंवला, हर्र, बहेरा), लोहचूर्ण, इनको बराबर लेके, जलमें पीस लेवै; फिर दोनोंके बराबर तेल डालकर थोड़ी देर धीमी आंचसे पकावै ॥ २१ ॥ फिर तेलके बराबर भंगराका रस उस तेलमें पचावै. अनन्तर उस तेलको चिकनी हांडीमें भरकर, पृथिवीमें गाड़ देवै. एक महीना उपरांत निकाले ॥ २२ ॥ इस तेलको शिरमें सातदिन लेप करै. लेपकरके केलाके पत्ता लपेट देवै. वायु न लगने पावै. त्रिफलाके जलसे धोवै. दुग्ध भोजन करै ॥ २३ ॥ इसी प्रकार सात दिन करै तो केशरंजन होवै. जबतक जीवै तबतक केश भ्रमर (भौंरा) के समान काले होवैं ॥ २४ ॥

तथा ।

काकमाची यवा जाती समं कृष्णा तिलं ततः ।
तत्तैलं भ्रामयेत् यंत्रे तेन स्यात्केशरंजनम् ॥ २५ ॥

भाषार्थ–काकमाची, जौ, चमेली, स्याह तिल, इन सबका तेल यंत्रद्वारा निकाल लेवै और केशोंपर मलै तो केश काले होवैं ॥ २५ ॥

अन्यच्च ।

लौहमलामलकल्कैः सजपाकुसुमैर्नरः सदास्नायी ।
पलितानीह निहन्याद्गंगास्नायीव नरकौघम् ॥ २६॥

भाषार्थ–लोहेका मल (कीटी), आंवले, जपाके फूल, इनसे मनुष्य सदैव स्नान करै तो पलित (बालोंकी सपेदाई) को नाश करै. जैसे गंगास्नानसे पापोंके समूह नाश होते हैं तैसे बालोंकी सपेदी नाश होकर, सर्वदा काले बने रहैं ॥ २६ ॥

अन्यच्च ।

काश्मर्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकीनां
च मूलं लौहं चूर्णं सभृंगं त्रिफलजलयुतं तैल-
मेभिर्विपक्वम् । कृत्वा वै लोहभांडे क्षितितल-
निहितं मासमेकं निधाय केशाः काशप्रका-
शा भ्रमरकुलनिभा लेपनादेव कृष्णाः॥२७॥

भाषार्थ–कुम्हेरनकी जड़, पियावासके फूल, केतकीकी जड़, लोहचूरा, भंगरा, त्रिफलाका जल और तेल, इन सबको लेके, लोहेके पात्रमें भरकर, पकाय लेवै फिर पृथ्वीमें एक महीनातक गाड़ देवै. उपरांत निकालकर केशोंपर लेप करै तो भौराओंके समान काले और लंबे केश हो जावैं ॥ २७ ॥

केशशुक्लीकरण ।

वज्रीक्षीरेण सप्ताहं सुश्वेतं भावयेत्तिलम् ।
तैलेन लिप्ताः केशाः क्ष्युः शुक्ला वै नाऽत्र संशयः२८

भाषार्थ–सेहुंडके दूधकी सपेद तिलोंको सात दिन भावना देवै फिर उस तेलके लेपसे केश श्वेतवर्ण होवैं इसमें संशय नहीं २८

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादसुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां नेत्रांजनकेशरंजनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमाऽध्यायः ॥ ९ ॥

वीर्यस्तंभन ।

कर्पूरं टंकणं सूतं तुल्यं मधुरसं मधु ।
मर्दयित्वा लिपेल्लिंगं स्थित्वा यामं तथैव च ॥ १ ॥
ततः प्रक्षालयेल्लिंगं रमेद्रामां यथोचिताम् ।
वीर्यस्तम्भकरं पुंसां सम्यग् नागार्जुनोदितम् ॥ २ ॥

भाषार्थ–कपूर, सोहागा, पारा, ये बराबर भाग लेवै और अगस्तके रस तथा शहतमें मर्दन करके लिंगपर लेप और एक प्रहरतक लेप रहनेदे॥१॥फिर लिंगको धोकरके स्त्रीसे रमण करै तो वीर्यका स्तम्भन होवै. यह नागार्जुनका कहाहुआ है॥२॥

अन्यच्च ।

कृकलासस्य पुच्छाग्रमुद्रिका प्रोततन्तुभिः ।
वेष्ट्या कनिष्ठिकाधार्या नरो वीर्यं न मुंचति ॥ ३ ॥

भाषार्थ–(गिर्गिट) की पुच्छका अग्रभाग लेके सूत्रसे उसको गूंथ करके अर्थात् उसपर सूत लपेट कर, अंगूठी बनालेवै फिर जो उस अंगूठीको छोटी अंगुलीमें पहन लेवै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥ ३ ॥

तथा च ।

मधुना पद्मबीजानि पिष्ट्वा नाभिं प्रलेपयेत् ।
यावत्तिष्ठत्यसौ लेपस्तावद्वीर्यं न मुंचति ॥ ४ ॥

भाषार्थ–शहतमें कमलगट्टाकी मींगी पीसकर, नाभीपर लेप करै तो जबतक लेप रहै तबतक वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥ ४॥

भाषार्थ–लोहेका मल (कीटी), आंवले, जपाके फूल, इनसे मनुष्य सदैव स्नान करै तो पलित (बालोंकी सपेदाई) को नाश करै. जैसे गंगास्नानसे पापोंके समूह नाश होते हैं तैसे बालोंकी सपेदी नाश होकर, सर्वदा काले बने रहैं ॥ २६ ॥

अन्यच्च ।

काश्मर्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकीनां
च मूलं लौहं चूर्णं सभृंगं त्रिफलजलयुतं तैल-
मेभिर्विपक्वम् । कृत्वा वै लोहभांडे क्षितितल-
निहितं मासमेकं निधाय केशाः काशप्रका-
शा भ्रमरकुलनिभा लेपनादेव कृष्णाः॥२७॥

भाषार्थ–कुम्हेरनकी जड़, पियावासके फूल, केतकीकी जड़, लोहचूरा, भंगरा, त्रिफलाका जल और तेल, इन सबको लेके, लोहेके पात्रमें भरकर, पकाय लेवै फिर पृथ्वीमें एक महीनातक गाड़ देवै. उपरांत निकालकर केशोंपर लेप करै तो भौरा-ओंके समान काले और लंबे केश हो जावैं ॥ २७ ॥

केशशुक्लीकरण ।

वज्रीक्षीरेण सप्ताहं सुश्वेतं भावयेत्तिलम् ।
तैलेन लिप्ताः केशाः स्युः शुक्ला वै नाऽत्र संशयः२८

भाषार्थ–सेहुंडके दूधकी सपेद तिलोंको सात दिन भावना देवै फिर उस तेलके लेपसे केश श्वेतवर्ण होवैं इसमें संशय नहीं २८

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषा-टीकायां नेत्रांजनकेशरंजनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमाऽध्यायः ॥ ९ ॥

वीर्यस्तंभन ।

कर्पूरं टंकणं सूतं तुल्यं मधुरसं मधु ।
मर्दयित्वा लिपेल्लिंगं स्थित्वा यामं तथैव च ॥ १ ॥
ततः प्रक्षालयेल्लिंगं रमेद्रामां यथोचिताम् ।
वीर्यस्तम्भकरं पुंसां सम्यग् नागार्जुनोदितम् ॥ २ ॥

भाषार्थ–कपूर, सोहागा, पारा, ये बराबर भाग लेवै और अगस्तके रस तथा शहतमें मर्दन करके लिंगपर लेप और एक प्रहरतक लेप रहनेदे॥१॥फिर लिंगको धोकरके स्त्रीसे रमण करै तो वीर्यका स्तम्भन होवै. यह नागार्जुनका कहाहुआ है॥२॥

अन्यच्च ।

कृकलासस्य पुच्छाग्रमुद्रिका प्रोततन्तुभिः ।
वेष्ट्या कनिष्ठिकाधार्या नरो वीर्यं न मुंचति ॥ ३ ॥

भाषार्थ–(गिर्गिट) की पुच्छका अग्रभाग लेके सूत्रसे उसको गूंथ करके अर्थात् उसपर सूत लपेट कर, अंगूठी बना-लेवै फिर जो उस अंगूठीको छोटी अंगुलीमें पहन लेवै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥ ३ ॥

तथा च ।

मधुना पद्मबीजानि पिष्ट्वा नाभिं प्रलेपयेत् ।
यावत्तिष्ठत्यसौ लेपस्तावद्वीर्यं न मुंचति ॥ ४ ॥

भाषार्थ–शहतमें कमलगट्टाकी मींगी पीसकर, नाभीपर लेप करै तो जबतक लेप रहै तबतक वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥ ४॥

तथान्यः प्रकारः ।

चटकांडं तु संग्राह्य नवनीतेन पेषयेत् ।
तेन प्रलेपयेत्पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥ ५ ॥
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुंचति ।

भाषार्थ–गगैंया पक्षीके अंडाको लेके, मक्खनमें पीस लेवै. उसका लेप चरणोंके तलोंपर करै तो वीर्यस्तंभन होता है ॥५॥ जबतक पृथिवी स्पर्श न करै तबतक वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥

तथा च ।

वनक्रोडस्य दंष्ट्राग्रं दक्षिणं च समाहरेत् ।
कट्योपरि यदा बद्ध्वा शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥६॥

भाषार्थ–वनशूकरकी दक्षिणदाढ़का अग्रभाग लेके, कमरपर बाँधकर, जो रति करै तो वीर्य स्तम्भन होता है ॥ ६ ॥

तथान्यः प्रकारः ।

डुंडुभो नामतः सर्पः कृष्णावर्णस्तमाहरेत् ।
तस्यास्थि धारयेत्कट्यां नरो वीर्यं न मुंचति ७॥
विमुञ्चति विमुक्तेन सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ८ ॥

भाषार्थ–डुंडुभनामसे जो काले रंगका साँप उसके हाड़को लेके जो कमरपर बाँधै और रति करै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होता है ॥ ७ ॥ उसके खोलनेसे स्खलित होता है. यह सिद्ध किया हुआ योग कहा गया है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

रक्तापामार्गमूलं तु सोमवाराभिमंत्रितम् ।
भौमे प्रातः समुद्धृत्य कट्यां बद्ध्वा न वीर्यमुक् ९

भाषार्थ–लाल ओंगाकी जड़को सोमवारकी संध्याको न्यौत आवै. मंगलको प्रातःकाल लाकर, जो कमरमें बाँधकर, रति करै तो वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

खसपलशुंठीकाथः षोडशशेषेण गुडेन निशि पीतः ।
कुरुते रतौ न पुंसो रेतःपतनं विनाम्लेन ॥ १० ॥

भाषार्थ–खस १ पल, सोंठके काढ़ामें सोलहवां भाग गुड मिलाय, रात्रिसमय पीके रति करै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होवै. जब खटाई खावै तब स्खलित होवै ॥ १० ॥

सूरणं तुलसीमूलं ताम्बूलैः सह भक्षयेत् ।
न मुंचति नरो वीर्यमेकैकेन न संशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थ–जिमीकन्द और तुलशीकी जड़को लेके,जो पानके साथ खावै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होता है. यह एकही एक गुण करनेवाले हैं. तीनौं खानेसे तो बिशेष गुण होताही है ११॥

लिंगस्थूलीकरण ।

वराहवसया लिंगं मधुना सह लेपयेत् ।
स्थूलं दृढं च दीर्घं च पुंसो लिंगं प्रजायते ॥ १२ ॥

भाषार्थ–शूकरकी चर्बीको लेके, जो शहतके साथ लेप करै तो मनुष्यका लिंग दृढ (पुष्ट) और बड़ा हो जाता है ॥ १२ ॥

लिंगध्वस्तकरण ।

क्षौद्रेण च समं घृष्टं पुंडरीकस्य केशरम् ।
ध्वस्तं कुर्यात्ततो मेढ्रं रत्यन्यत्राप्यसंशयः ॥ १३ ॥

तथान्यः प्रकारः ।

चटकांडं तु संग्राह्य नवनीतेन पेषयेत् ।
तेन प्रलेपयेत्पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥ ५ ॥
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुंचति ।

भाषार्थ–गगैंया पक्षीके अंडाको लेके, मक्खनमें पीस लेवै. उसका लेप चरणोंके तलोंपर करै तो वीर्यस्तंभन होता है ॥५॥ जबतक पृथिवी स्पर्श न करै तबतक वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥

तथा च ।

वनक्रोडस्य दंष्ट्राग्रं दक्षिणं च समाहरेत् ।
कट्योपरि यदा बद्ध्वा शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥६॥

भाषार्थ–वनशूकरकी दक्षिणदाढ़का अग्रभाग लेके, कमरपर बाँधकर, जो रति करै तो वीर्य स्तम्भन होता है ॥ ६ ॥

तथान्यः प्रकारः ।

डुंडुभो नामतः सर्पः कृष्णावर्णस्तमाहरेत् ।
तस्यास्थि धारयेत्कट्यां नरो वीर्यं न मुंचति ७॥
विमुञ्चति विमुक्तेन सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ८ ॥

भाषार्थ–डुंडुभनामसे जो काले रंगका साँप उसके हाड़को लेके जो कमरपर बाँधै और रति करै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होता है ॥ ७ ॥ उसके खोलनेसे स्खलित होता है. यह सिद्ध किया हुआ योग कहा गया है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

रक्तापामार्गमूलं तु सोमवाराभिमंत्रितम् ।
भौमे प्रातः समुद्धृत्य कट्यां बद्ध्वा न वीर्यमुक् ९

भाषार्थ–लाल ओंगाकी जड़को सोमवारकी संध्याको न्यौत आवै. मंगलको प्रातःकाल लाकर, जो कमरमें बाँधकर, रति करै तो वीर्य स्खलित नहीं होवै ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

खसपलशुंठीकाथः षोडशशेषेण गुडेन निशि पीतः ।
कुरुते रतौ न पुंसो रेतःपतनं विनाम्लेन ॥ १० ॥

भाषार्थ–खस १ पल, सोंठके काढ़ामें सोलहवां भाग गुड मिलाय, रात्रिसमय पीके रति करै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होवै. जब खटाई खावै तब स्खलित होवै ॥ १० ॥

सूरणं तुलसीमूलं ताम्बूलैः सह भक्षयेत् ।
न मुंचति नरो वीर्यमेकैकेन न संशयः ॥ ११ ॥

भाषार्थ–जिमीकन्द और तुलशीकी जड़को लेके,जो पानके साथ खावै तो मनुष्यका वीर्य स्खलित नहीं होता है. यह एकही एक गुण करनेवाले हैं. तीनौं खानेसे तो बिशेष गुण होताही है ११॥

लिंगस्थूलीकरण ।

वराहवसया लिंगं मधुना सह लेपयेत् ।
स्थूलं दृढं च दीर्घं च पुंसो लिंगं प्रजायते ॥ १२ ॥

भाषार्थ–शूकरकी चर्बीको लेके, जो शहतके साथ लेप करै तो मनुष्यका लिंग दृढ (पुष्ट) और बड़ा हो जाता है ॥ १२ ॥

लिंगध्वस्तकरण ।

क्षौद्रेण च समं घृष्टं पुंडरीकस्य केशरम् ।
ध्वस्तं कुर्यात्ततो मेढ्रं रत्यन्यत्राप्यसंशयः ॥ १३ ॥

भाषार्थ-जो शहतके संग कमलकी केशरको घिसकरके, लिंगपर लेप करै तो रतिसमय लिंग टेढ़ा हो जाय इसमें संशय नहीं है१३

नपुंसकत्व ।

अनुराधासुनक्षत्रे लांगलीमूलिका ध्रुवम् ।
निखाता मैथुनस्थाने पुंस्त्वखंडत्वकारिणी ॥ १४ ॥
निशाषट्तिंदुचूर्णेन भावितेनाजवारिणा ।
पानाशनप्रयुक्तेन षण्ढत्वं जायते नृणाम् ॥ १५ ॥

भाषार्थ-निश्चय करके अनुराधा नक्षत्रमें कलिहारीकी जड-को मैथुनस्थानमें गाड़ देवै तो मनुष्यको नपुंसकत्व करता है १४॥ तथा ६ रात्रि तेंदूका चूर्ण बकरेके मूत्रमें भावना देके खानेपीनेसे मनुष्योंको नपुंसकत्व रोग हो जाता है ॥ १५ ॥

नपुंसकत्वनाशनप्रकार ।

तिलगोक्षुरयोश्चूर्णं छागीदुग्धेन पाचितम् ।
शीतलं मधुना युक्तं भुक्तं षण्ढत्वनाशनम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ-तिल और गोखरूको लेके चूर्ण करै और बकरीके दुग्धमें औटाय लेवै फिर शीतल हो जानेपर जो शहत मिलाय खावै तो नपुंसकत्व नाश हो जाता है ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

ऊर्णनाभिस्तु यो जीवो मधुना सह लेपयेत् ।
तेन लेपयतो नाभिं बद्धषाण्ढ्यं विमुच्यते ॥ १७ ॥

भाषार्थ-मकारीको लेके, शहतके साथ लपेट देवै और नाभिपर इसका लेप करनेसे नपुंसकत्व दूर हो जाता है ॥१७॥

स्त्रीद्रावण ।

एक एव महाद्रावी मालतीसंभवो रसः ।
किं पुनर्यदि युज्येत मधुकर्पूरपारदैः ॥ १८ ॥

भाषार्थ-स्त्रीद्रावणके अर्थ केवल चमेलीहीका रस बहुत है. जो शहत कपूर पारा उसमें मिला दे तो फिर क्या कहना ॥ १८ ॥

तथान्यायप्रकार ।

आर्द्रकं गंधकं चैव राजिकं चाथ टंकणम् ।
संपेष्य सममात्राणि क्षेपयेन्निम्बुजे जले ॥ १९ ॥
स्थापयेत् घटिकास्तिस्रो हस्ते वै धारयेत्ततः ।
यावंत्यो ललनाः पंच आघ्रायन्ति द्रवन्ति वै ॥२०॥

भाषार्थ-अदरख, गंधक, राई, सोहागा यह सब बराबर-भाग लेके पीसके नींबूके रसमें डाल देवै ॥ १९ ॥ तीन घड़ी रक्खै. उपरांत निकालकर, हाथपर रख लेवै. इसको जितनी स्त्रियाँ पाँच बार सूँघें वे सब द्रवीभूत हो जावै ॥ २० ॥

वाजीकरण ।

स्वर्णमाक्षिकलोहं च पारदं च शिलाजतु ।
पथ्या विडंगधत्तूरविजयाजातिपत्रिकाः ॥ २१ ॥
अश्वगन्धागोक्षुराणामकैर्भाव्यं पृथक् पृथक् ।
सप्तभागं तु विश्वैकं मध्वाज्याभ्यां लिहेत्ततः ॥२२॥
गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ।
गोधूमचूर्णं तु तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥ २३ ॥

भाषार्थ—जो शहतके संग कमलकी केशरको घिसकरके, लिंगपर लेप करै तो रतिसमय लिंग टेढ़ा हो जाय इसमें संशय नहीं है १३

नपुंसकत्व ।

अनुराधासुनक्षत्रे लांगलीमूलिका ध्रुवम् ।
निखाता मैथुनस्थाने पुंस्त्वखंडत्वकारिणी ॥ १४ ॥
निशाषट्तिंदुचूर्णेन भावितेनाजवारिणा ।
पानाशनप्रयुक्तेन षण्ढत्वं जायते नृणाम् ॥ १५ ॥

भाषार्थ—निश्चय करके अनुराधा नक्षत्रमें कलिहारीकी जड़को मैथुनस्थानमें गाड़ देवै तो मनुष्यको नपुंसकत्व करता है १४॥ तथा ६ रात्रि तेंदूका चूर्ण बकरेके मूत्रमें भावना देके खानेपीनेसे मनुष्योंको नपुंसकत्व रोग हो जाता है ॥ १५ ॥

नपुंसकत्वनाशनप्रकार ।

तिलगोक्षुरयोश्चूर्णं छागीदुग्धेन पाचितम् ।
शीतलं मधुना युक्तं भुक्तं षण्ढत्वनाशनम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—तिल और गोखरूको लेके चूर्ण करै और बकरीके दुग्धमें औटाय लेवै फिर शीतल हो जानेपर जो शहत मिलाय खावै तो नपुंसकत्व नाश हो जाता है ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

ऊर्णनाभिस्तु यो जीवो मधुना सह लेपयेत् ।
तेन लेपयतो नाभिं बद्धषाण्ढ्यं विमुच्यते ॥ १७ ॥

भाषार्थ—मकारीको लेके, शहतके साथ लपेट देवै और नाभिपर इसका लेप करनेसे नपुंसकत्व दूर हो जाता है ॥१७॥

स्त्रीद्रावण ।

एक एव महाद्रावी मालतीसंभवो रसः ।
किं पुनर्यदि युज्येत मधुकर्पूरपारदैः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—स्त्रीद्रावणके अर्थ केवल चमेलीहीका रस बहुत है. जो शहत कपूर पारा उसमें मिला दे तो फिर क्या कहना ॥ १८ ॥

तथान्यायप्रकार ।

आर्द्रकं गंधकं चैव राजिकं चाथ टंकणम् ।
संपेष्य सममात्राणि क्षेपयेन्निम्बुजे जले ॥ १९ ॥
स्थापयेत् घटिकास्तिस्रो हस्ते वै धारयेत्ततः ।
यावंत्यो ललनाः पंच आघ्रायन्ति द्रवन्ति वै ॥२०॥

भाषार्थ—अदरख, गंधक, राई, सोहागा यह सब बराबर-भाग लेके पीसके नींबूके रसमें डाल देवै ॥ १९ ॥ तीन घड़ी रक्खै. उपरांत निकालकर, हाथपर रख लेवै. इसको जितनी स्त्रियाँ पाँच बार सूँघैं वे सब द्रवीभूत हो जावै ॥ २० ॥

वाजीकरण ।

स्वर्णमाक्षिकलोहं च पारदं च शिलाजतु ।
पथ्या विडंगधत्तूरविजयाजातिपत्रिकाः ॥ २१ ॥
अश्वगन्धागोक्षुराणामकैर्भाव्यं पृथक् पृथक् ।
सप्तभागं तु विश्वैकं मध्वाज्याभ्यां लिहेत्ततः ॥२२॥
गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ।
गोधूमचूर्णं तु तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥ २३ ॥

भुक्त्वा हि व्यक्तिजीर्णोऽपि दशदारान् व्रजत्यपि ।
ब्रह्मचर्यं प्रकर्तव्यमेकविंशद्दिनावधि ॥ २४ ॥

भाषार्थ–सोनामाखी, लोहा, पारा, शिलाजीत, हर्र, बायविडंग, धतूरा, भाँग, जावित्री ॥ २१ ॥ यह सब लेके असगन्ध और गोखरूके अर्ककी पृथक् पृथक् भावना देवै, फिर इसमेंसे लेके सात भाग सोंठि और एक २ भाग शहत, घीके साथ चाटै ॥ २२ ॥ ऊपरसे जवान वछड़ेकी गौके दूधमें गेहूँकी सूजी डाल खीर बनाय, मिश्री वा शकर, शहत घी डाल देवै ॥ २३ ॥ फिर उसके खानेसे अत्यंत जीर्णमनुष्य भी दश स्त्रियोंसे भोग कर सकता है. परंतु ब्रह्मचर्यसे रहकर,२१ दिन पर्यन्त इस औषधका सेवन करै ॥ २४ ॥

प्रदरनाशनोपाय ।

सितादुग्धेन संयुक्तमाभार्कस्य पलद्वयम् ।
घृतदुग्धाशनी नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ २५ ॥

भाषार्थ–जो मिश्री और दूधके साथ वंबूलका २ पल अर्क पीवै. घी दूधका सेवन करै तो स्त्री प्रदररोगसे छूट जावै ॥ २५ ॥

अन्यच्च ।

अशोकवल्कलाऽर्कश्च घृतं दुग्धं च शीतलम् ।
यथावच्च पिबेत्प्रातः स्त्रीणां प्रदरशान्तये ॥ २६ ॥

भाषार्थ–प्रदररोगवाली स्त्री अपने रोगकी शांतिके लिये अशोककी छालका अर्क प्रातःसमय पीवै और ऊपरसे यथायोग्य घी और कच्चा दूध पीवै ॥ २६ ॥

प्लीहनाशनोपाय ।

समुद्रशक्तिजो ह्यर्कः पिप्पल्यर्क, सदुग्धकः ।
अर्कार्को वा सलवणः प्लीहरोगविनाशनः ॥ २७ ॥

भाषार्थ–समुद्रफेनका अर्क, पीपरिका अर्क दुग्धमें मिलाय पीनेसे, अथवा आकका अर्क लवण डालकर पीनेसे यह अर्क प्लीह (तापतिल्ली) रोगका नाश करनेवाला है ॥ २७ ॥

अश्मरीनाशनोपाय ।

कूष्मांडाऽर्को यवक्षारहिंगुयुक् चाश्मरीप्रणुत् ॥ २८ ॥

भाषार्थ–कुम्हेड़ेका अर्क, जवाखार और हींग मिलाय, पीनेसे अश्मरी (पथरी) रोगको नाश करता है ॥ २८ ॥

बहुमूत्ररोगयत्न ।

चक्रमर्द्दकमूलं तु संपिष्टं तंदुलाम्बुना ।
प्रभातसमये पीतस्तदर्को बहुमूत्रहृत् ॥ २९ ॥

भाषार्थ–जो पवाँरवृक्षकी जड़को चाँवलोके जलसे पीसै और प्रातःसमयमें पीवै तो यह अर्क बहुमूत्ररोगको हरता है ॥ २९ ॥

गर्भकारक यत्न ।

अश्वगन्धाभवाऽर्केण सिद्धं दुग्धं कृतान्वितम् ।
ऋतुस्नातांगनापीतः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ ३० ॥

भाषार्थ=असगंधके अर्कमें दूधको औट करके, मिला देवै. उसको ऋतुमती स्त्री स्नान करके पीवे तो इस दूधको पीकरके, स्त्री गर्भको धारण करती है ॥ ३० ॥

भुक्त्वा हि व्यक्तिजीर्णोऽपि दशदारान् व्रजत्यपि ।
ब्रह्मचर्यं प्रकर्तव्यमेकविंशद्दिनावधि ॥ २४ ॥

भाषार्थ–सोनामाखी, लोहा, पारा, शिलाजीत, हर्र, बायविडंग, धतूरा, भाँग, जावित्री ॥ २१ ॥ यह सब लेके असगन्ध और गोखरूके अर्ककी पृथक् पृथक् भावना देवै, फिर इसमेंसे लेके सात भाग सोंठि और एक २ भाग शहत, घीके साथ चाटै ॥ २२ ॥ ऊपरसे जवान वछड़ेकी गौके दूधमें गेहूँकी सूजी डाल खीर बनाय, मिश्री वा शकर, शहत घी डाल देवै ॥ २३ ॥ फिर उसके खानेसे अत्यंत जीर्णमनुष्य भी दश स्त्रियोंसे भोग कर सकता है. परंतु ब्रह्मचर्यसे रहकर, २१ दिन पर्यन्त इस औषधका सेवन करै ॥ २४ ॥

प्रदरनाशनोपाय ।

सितादुग्धेन संयुक्तमाभार्कस्य पलद्वयम् ।
घृतदुग्धाशनी नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ २५ ॥

भाषार्थ–जो मिश्री और दूधके साथ बंबूलका २ पल अर्क पीवै. घी दूधका सेवन करै तो स्त्री प्रदररोगसे छूट जावै ॥ २५ ॥

अन्यच्च ।

अशोकवल्कलाऽर्कश्च घृतं दुग्धं च शीतलम् ।
यथावच्च पिबेत्प्रातः स्त्रीणां प्रदरशान्तये ॥ २६ ॥

भाषार्थ–प्रदररोगवाली स्त्री अपने रोगकी शांतिके लिये अशोककी छालका अर्क प्रातःसमय पीवै और ऊपरसे यथायोग्य घी और कच्चा दूध पीवै ॥ २६ ॥

प्लीहनाशनोपाय ।

समुद्रशक्तिजो ह्यऽर्कः पिप्पल्यर्क, सदुग्धकः ।
अर्कार्को वा सलवणः प्लीहरोगविनाशनः ॥ २७ ॥

भाषार्थ–समुद्रफेनका अर्क, पीपरिका अर्क दुग्धमें मिलाय पीनेसे, अथवा आकका अर्क लवण डालकर पीनेसे यह अर्क प्लीह (तापातिल्ली) रोगका नाश करनेवाला है ॥ २७ ॥

अश्मरीनाशनोपाय ।

कूष्मांडाऽर्कौ यवक्षारहिंगुयुक् चाश्मरीप्रणुत् ॥ २८ ॥

भाषार्थ–कुम्हेड़ेका अर्क, जवाखार और हींग मिलाय, पीनेसे अश्मरी (पथरी) रोगको नाश करता है ॥ २८ ॥

बहुमूत्ररोगयत्न ।

चक्रमर्दकमूलं तु संपिष्टं तंदुलाम्बुना ।
प्रभातसमये पीतस्तदर्कौ बहुमूत्रहृत् ॥ २९ ॥

भाषार्थ–जो पवाँरवृक्षकी जड़को चाँवलोके जलसे पीसै और प्रातःसमयमें पीवै तो यह अर्क बहुमूत्ररोगको हरता है ॥ २९ ॥

गर्भकारक यत्न ।

अश्वगन्धाभवाऽर्केण सिद्धं दुग्धं कृतान्वितम् ।
ऋतुस्नातांगनापीतः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ ३० ॥

भाषार्थ=असगंधके अर्कमें दूधको औट करके, मिला देवै. उसको ऋतुमती स्त्री स्नान करके पीवे तो इस दूधको पीकरके, स्त्री गर्भको धारण करती है ॥ ३० ॥

स्त्रीवशीकरण ।

मधुसैंधवसंयुक्तं पारावतमलान्वितम् ।
एतल्लिप्त्वेन्द्रिये रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥३१॥

भाषार्थ-शहत और सेंधालवण मिलाय, उसमें कबूतरकी विष्ठा डालकर, खरल करै फिर उसका लेप लिंगपर करके, स्त्रीको संभोग करै तो स्त्री रतिसमय दासीके समान हो जाती है३१

अन्यच्च ।

कपीन्द्रियं शशी सूतं कुंकुमं कनकं मधु ।
एतल्लिप्त्वेन्द्रिये रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥ ३२॥

भाषार्थ-कौंचके बीज, कपूर, पारा, केशर, धतूरा, शहत, इन सबका लेप बनाय, लिंगपर करके, स्त्रीसंभोग करै तो रतिमें स्त्रीको दासीके समान करै अर्थात् स्त्री दासीके तुल्य हो जाती है ॥ ३२ ॥

तथाच ।

चन्दनं तगरं कुष्ठं प्रियंगुं नागकेशरम् ।
कृष्णां तिंतिडीकं चैव समभागानि कारयेत् ॥३३॥
सप्ताहं दापयेद्युक्त्या आत्मपंचमलेन तु ॥
खाने पाने प्रदातव्यं स्त्रियं वा पुरुषं तथा ॥ ३४ ॥
यावज्जीवेत्सदा दासी आत्मना च धनेन च ।
ॐ नमो भगवते उमामहेश्वराय ॐ नमो मोहिनीये मिलिमिलि सुभगे स्वाहा ॥ अनेन सप्ताभिमंत्रितं कृत्वा नियोजयेत् वशीकरणं भवति ॥

भाषार्थ--श्वेतचंदन, तगर, कूठ, मालकांगनी, नागकेशर, पीपरि, तिंतिडीक, यह सब समान भाग लेवै ॥ ३३॥ और अपने पाँचमल (नासिका, कान, आँख, लिंग, गुदा, इनके मलके) साथ सात दिवसतक जिस स्त्री वा पुरुषको खान पान देवै३४॥ वह जबतक जीवै तबतक अपनी आत्मा और धनसे सदैव दासीसमान रहै. परन्तु मूलमें लिखे हुए मंत्रसे सातवार अभिमंत्रित (फूँक) करके, देवै तो वशीकरण होता है ॥

तथाच ।

शंखपुष्पी मधूपुष्पी तथा कंचुकिपत्रिका ।
श्वेता गिरिसमायुक्ता समभागानि कारयेत्॥३५॥
दापयेच्चैव सप्ताहमात्मपंचमलेन तु ।
खाने पाने प्रदातव्यं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ३६ ॥
पूर्वोक्तमंत्रेण सप्ताभिमंत्रितं कृत्वा दापयेत् ।

भाषार्थ-शंखाहूली, महुआ, कंचुकीके पत्र, श्वेतकनेर, यह सब बराबर २ लेवै ॥ ३५ ॥ और ७ दिन पूर्वोक्त पांच मलोंके संग खानपानमें देवै तो उत्तम वशीकरण होवै ॥ ३६ ॥ परंतु पूर्वोक्त मंत्रसे सातवार अभिमंत्रित करके देवै ॥

भगसंकोचन ।

प्रक्षालने भगे नित्यं कृते चामलवल्कलैः ।
वृद्धापि कामिनी कामं बालेव कुरुते रतिम् ॥ ३७॥

भाषार्थ-भगको नित्य आंवलेकी छालसे धोवै तो वृद्धा स्त्री भी बाला (षोडशवर्षवाली) के समान रति (संभोग) करती है ॥ ३७॥

स्त्रीवशीकरण ।

मधुसैंधवसंयुक्तं पारावतमलान्वितम् ।
एतल्लिप्त्वेन्द्रिये रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥३१॥

भाषार्थ-शहत और सेंधालवण मिलाय, उसमें कबूतरकी विष्ठा डालकर, खरल करै फिर उसका लेप लिंगपर करके, स्त्रीको संभोग करै तो स्त्री रतिसमय दासीके समान हो जाती है३१

अन्यच्च ।

कपीन्द्रियं शशी सूतं कुंकुमं कनकं मधु ।
एतल्लिप्त्वेन्द्रिये रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥ ३२॥

भाषार्थ-कौंचके बीज, कपूर, पारा, केशर, धतूरा, शहत, इन सबका लेप बनाय, लिंगपर करके, स्त्रीसंभोग करै तो रतिमें स्त्रीको दासीके समान करै अर्थात् स्त्री दासीके तुल्य हो जाती है ॥ ३२ ॥

तथाच ।

चन्दनं तगरं कुष्ठं प्रियंगुं नागकेशरम् ।
कृष्णां तिंतिडीकं चैव समभागानि कारयेत् ॥३३॥
सप्ताहं दापयेद्युक्त्या आत्मपंचमलेन तु ॥
खाने पाने प्रदातव्यं स्त्रियं वा पुरुषं तथा ॥ ३४ ॥
यावज्जीवेत्सदा दासी आत्मना च धनेन च ।
ॐ नमो भगवते उमामहेश्वराय ॐ नमो मोहिनीये मिलिमिलि सुभगे स्वाहा ॥ अनेन सप्ताभिमंत्रितं कृत्वा निर्योजयेत् वशीकरणं भवति ॥

भाषार्थ--श्वेतचंदन, तगर, कूठ, मालकांगनी, नागकेशर, पीपरि, तिंतिडीक, यह सब समान भाग लेवै ॥ ३३॥और अपने पाँचमल (नासिका, कान, आँख, लिंग, गुदा, इनके मलके) साथ सात दिवसतक जिस स्त्री वा पुरुषको खान पान देवै३४॥ वह जबतक जीवै तबतक अपनी आत्मा और धनसे सदैव दासीसमान रहै. परन्तु मूलमें लिखे हुए मंत्रसे सातवार अभिमंत्रित (फूँक) करके, देवै तो वशीकरण होता है ॥

तथाच ।

शंखपुष्पी मधूपुष्पी तथा कंचुकिपत्रिका ।
श्वेता गिरिसमायुक्ता समभागानि कारयेत्॥३५।
दापयेच्चैव सप्ताहमात्मपंचमलेन तु ।
खाने पाने प्रदातव्यं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ३६ ॥
पूर्वोक्तमंत्रेण सप्ताभिमंत्रितं कृत्वा दापयेत् ।

भाषार्थ-शंखाहूली, महुआ, कंचुकीके पत्र, श्वेतकनेर, यह सब बराबर २ लेवै ॥ ३५ ॥ और ७ दिन पूर्वोक्त पांच मलोंके संग खानपानमें देवै तो उत्तम वशीकरण होवै ॥ ३६ ॥ परंतु पूर्वोक्त मंत्रसे सातवार अभिमंत्रित करके देवै ॥

भगसंकोचन ।

प्रक्षालने भगे नित्यं कृते चामलवल्कलैः ।
वृद्धापि कामिनी कामं बालेव कुरुते रतिम् ॥ ३७॥

भाषार्थ-भगको नित्य आंवलेकी छालसे धोवै तो वृद्धा स्त्री भी वाला (षोडशवर्षवाली) के समान रति (संभोग) करती है ॥ ३७॥

लोमशातन ।

हरितालचूर्णकलिकालेपात्तेनैव वारिणा सद्यः ।
निपतन्ति केशनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं कुरुते ३८

भाषार्थ–हरताल और चूनाको लेके चूनेहीके पानीसे पीसकर, लगानेसे बहुत शीघ्र केश गिर पड़ते हैं. यह अद्भुत कौतुक करता है ॥ ३८ ॥

तथा च ।

पलाशचिंचातिलमाषशंखं दहेदपामार्गसपिप्प-
लोऽपि । मनःशिला तालकचूर्णलेपात्करोति
निर्लोम शिरः क्षणेन ॥ ३९ ॥

भाषार्थ–ढाक, इमली, तिल, उड़द, शंख, ओंगा, पीपरि, मनशिल, हरताल, चूना, इन सबके लेपसे क्षणमात्रमें शिरके केश गिर जाते हैं ॥ ३९ ॥

विद्वेषकरण।

गर्दभस्य रजो गृह्य लुलितं गात्रसंभवम् ।
मृतकस्य तथा भस्म स्त्रीरजश्च समन्वितम् ४०
एकीकृत्य क्षिपेद्रात्रौ शय्यायामासनेऽपि वा ।
नूनं संजायते द्वेषः कथितो मालतीमते ॥४१॥

भाषार्थ–गदहा लोटनेके स्थानकी मिट्टी, मृतककी भस्म, स्त्रीका रज, इन सबको मिलावै ॥ ४० ॥ और एकमें करके जिन दोमें विद्वेष किया चाहै उनके आसन वा शय्यापर रात्रिसमयमें डाल देवै तो निश्चय उन दोनोमें द्वेष हो जाता है. यह मालतीके मतसे कहा है ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

अन्यद्योगवरं वक्ष्ये विद्वेषकरणं परम् ।
युध्यमानावुभौ श्वानौ परस्परविरोधिनौ ॥ ४२ ॥
तयोर्धूलिं समादाय हन्यते योषितां रतिः ।
सत्यं भवति विद्वेषो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥४३॥

भाषार्थ–अन्य (दूसरा) उत्तम उपाय विद्वेष (कलह) करानेका कहता हूं, कि जो दो कुत्ता आपसमें विरोधपूर्वक युद्ध करते होवें ॥४२॥ उन दोनोंके नीचेकी धूलको लेकर जो स्त्रीपुरुषोंको मार देवै तो सत्य उनमें विद्वेष (कलह) होता है इसमें संदेह नहीं करना ॥ ४३ ॥

स्तनदृढीकरण ।

सपद्मबीजं सितया भक्षितं पद्मवारिणा ।
दृढं स्त्रीणां स्तनद्वन्द्वं मासेन कुरुते भृशम् ॥ ४४ ॥

भाषार्थ–कमलगट्टाकी मींगी और मिश्री मिलाय चूर्ण करै फिर उसको कमलके जलके साथ फांके तो एक महीनामें स्त्रियोंके दोनो स्तन (कुच) दृढ (कड़े) हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

तथाच ।

मुंडीचूर्णकषायेण युतं तैलं विपाचितम् ।
पतितं यौवनं यस्यास्तस्याःस्तन्योन्नतिर्भवेत्॥ ४५ ॥

भाषार्थ–गोरखमुंडीके चूर्णके काढ़ाको तेलमें पचावै और स्तनोंपर लेप करै तो जिस स्त्रीका यौवन पतित हो गया हो उसके कुच नवीन स्त्रीके तुल्य कड़े हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

लोमशातन ।

हरितालचूर्णकलिकालेपात्तेनैव वारिणा सद्यः ।
निपतन्ति केशनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं कुरुते ३८

भाषार्थ–हरताल और चूनाको लेके चूनेहीके पानीसे पीसकर, लगानेसे बहुत शीघ्र केश गिर पड़ते हैं. यह अद्भुत कौतुक करता है ॥ ३८ ॥

तथा च ।

पलाशचिंचातिलमाषशंखं दहेदपामार्गसपिप्पलोऽपि । मनःशिला तालकचूर्णलेपात्करोति निर्लोम शिरः क्षणेन ॥ ३९ ॥

भाषार्थ–ढाक, इमली, तिल, उड़द, शंख, ओंगा, पीपरि, मनशिल, हरताल, चूना, इन सबके लेपसे क्षणमात्रमें शिरके केश गिर जाते हैं ॥ ३९ ॥

विद्वेषकरण।

गर्दभस्य रजो गृह्य लुलितं गात्रसंभवम् ।
मृतकस्य तथा भस्म स्त्रीरजश्च समन्वितम् ४०
एकीकृत्य क्षिपेद्रात्रौ शय्यायामासनेऽपि वा ।
नूनं संजायते द्वेषः कथितो मालतीमते ॥४१॥

भाषार्थ–गदहा लोटनेके स्थानकी मिट्टी, मृतककी भस्म, स्त्रीका रज, इन सबको मिलावै ॥ ४० ॥ और एकमें करके जिन दोमें विद्वेष किया चाहै उनके आसन वा शय्यापर रात्रिसमयमें डाल देवै तो निश्चय उन दोनोमें द्वेष हो जाता है. यह मालतीके मतसे कहा है ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

अन्यद्योगवरं वक्ष्ये विद्वेषकरणं परम् ।
युध्यमानावुभौ श्वानौ परस्परविरोधिनौ ॥ ४२ ॥
तयोर्धूलिं समादाय हन्यते योषितां रतिः ।
सत्यं भवति विद्वेषो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥४३॥

भाषार्थ–अन्य (दूसरा) उत्तम उपाय विद्वेष (कलह) करानेका कहता हूं, कि जो दो कुत्ता आपसमें विरोधपूर्वक युद्ध करते होवें ॥४२॥ उन दोनोंके नीचेकी धूलको लेकर जो स्त्रीपुरुषोंको मार देवै तो सत्य उनमें विद्वेष (कलह) होता है इसमें संदेह नहीं करना ॥ ४३ ॥

स्तनदृढीकरण ।

सपद्मबीजं सितया भक्षितं पद्मवारिणा ।
दृढं स्त्रीणां स्तनद्वन्द्वं मासेन कुरुते भृशम् ॥ ४४ ॥

भाषार्थ–कमलगट्टाकी मींगी और मिश्री मिलाय चूर्ण करै फिर उसको कमलके जलके साथ फांके तो एक महीनामें स्त्रियोंके दोनो स्तन (कुच) दृढ (कड़े) हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

तथाच ।

मुंडीचूर्णकषायेण युतं तैलं विपाचितम् ।
पतितं यौवनं यस्यास्तस्याःस्तन्योन्नतिर्भवेत्॥ ४५ ॥

भाषार्थ–गोरखमुंडीके चूर्णके काढ़ाको तेलमें पचावै और स्तनोंपर लेप करै तो जिस स्त्रीका यौवन पतित हो गया हो उसके कुच नवीन स्त्रीके तुल्य कड़े हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

वन्ध्याकरण ।

तुण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तंदुलवारिणा ।
ऋत्वन्ते त्रिदिनं पीत्वा वन्ध्या भवति सागना॥४६॥

भाषार्थ–चौलाईकी जड़ चांवलोंके जलमें पीसकर, ऋतुके अन्तमें तीनदिन पीकरके स्त्री वन्ध्या (बांझ) होती है ॥४६ ॥

तथा ।

कांजिकेन जपापुष्पं पिष्ट्वा पिबति यांगना ।
ऋतौ त्र्यहं निपीतानि वन्ध्यां कुर्वन्ति योषितम् ४७

भाषार्थ–जपाके फूलको कांजीमें पीसकर, जो स्त्री तीन दिनतक ऋतुकालमें पीवै तो वन्ध्या हो जावै ॥ ४७ ॥

तथाच ।

धत्तूरं मल्लिकापुष्पं गृहीत्वा कटिसंस्थितम् ।
गर्भं निवारयत्येव रंडावेश्यादियोषिताम् ॥ ४८ ॥

भाषार्थ–जो धतूरा और चमेलीके फूल लेके कमरमें बांधै रंडाओं (विधवा) और वेश्याआदि स्त्रियोंका गर्भ गिर जाता है४८

अन्यच्च ।

धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठेन युक्तितः ।
ऋत्वन्ते रमते सा स्त्री गर्भदुःखविवर्जिता ॥ ४९ ॥

भाषार्थ–जो नींबकी लकड़ीका यत्नपूर्वक ऋतुकालके अंतमें अपनी योनिमें धुवां देवै फिर रति करै तो वह स्त्री गर्भके दुःखसे रहित होवै अर्थात् उसके कभी गर्भ नहीं रहै ॥ ४९ ॥

१ छाल ।

वन्ध्यात्वनिवारणम् ।

नागकेशरपुष्पाणां चूर्णं गोसर्पिषा सह ।
सेवनाल्लभते पुत्रमृतौ दुग्धान्नभोजिनी॥ ५० ॥

भाषार्थ–नागकेशरके फूलोंका चूर्ण गौके घीके साथ खानेसे पुत्र उत्पन्न होवै ऋतुकालमें दुग्ध चांवल भोजन करै ॥ ५० ॥

तथा।

बीजानि मातुलिंगस्य दुग्धस्विन्नानि सर्पिषा ।
सगर्भामिति कुर्वन्ति पानाद्वन्ध्यामपि स्त्रियम्॥५१॥

भाषार्थ–विजौरा नींबूके बीज जो दुग्धमें भिगो कर, घीके साथ खावै तो वन्ध्या स्त्री भी गर्भवती होजाती है ॥ ५१ ॥

तथाच ।

मातुलिंगस्य बीजानि कुमार्या सह पेषयेत् ।
क्षीरेण सह दातव्यं गर्भमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ५२ ॥

भाषार्थ-जो विजौराके बीजोंको घीग्वारके रसमें पीसकर दुग्धके साथ देवै तो स्त्रीको गर्भ प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं करना५२

तथान्यच्च ।

पिप्पलीं शृंगवेरं च मरिचं केशरं तथा ।
घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यागर्भप्रदं परम् ॥ ५३ ॥
पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टं च कन्यया ।
ऋत्वन्ते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वा प्राप्नोति संयुतम्॥५४॥

भाषार्थ–पीपरि, अदरख, कालीमिर्च, नागकेशर, इनको घीके साथ खानेसे वंध्या स्त्री गर्भवती होती है ॥ ५३ ॥ तथा

वन्ध्याकरण ।

तुण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तंदुलवारिणा ।
ऋत्वन्ते त्रिदिनं पीत्वा वन्ध्या भवति सागना॥४६॥

भाषार्थ-चौलाईकी जड़ चांवलोंके जलमें पीसकर, ऋतुके अन्तमें तीनदिन पीकरके स्त्री वन्ध्या (बांझ) होती है ॥४६ ॥

तथा ।

कांजिकेन जपापुष्पं पिष्ट्वा पिबति यांगना ।
ऋतौ त्र्यहं निपीतानि वन्ध्यां कुर्वन्ति योषितम् ४७

भाषार्थ-जपाके फूलको कांजीमें पीसकर, जो स्त्री तीन दिनतक ऋतुकालमें पीवै तो वन्ध्या हो जावै ॥ ४७ ॥

तथाच ।

धत्तूरं मल्लिकापुष्पं गृहीत्वा कटिसंस्थितम् ।
गर्भं निवारयत्येव रंडावेश्यादियोषिताम् ॥ ४८ ॥

भाषार्थ-जो धतूरा और चमेलीके फूल लेके कमरमें बांधै रंडा तो (विधवा) और वेश्याआदि स्त्रियोंका गर्भ गिर जाता है४८

अन्यच्च ।

धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठेन युक्तितः ।
ऋत्वन्ते रमते सा स्त्री गर्भदुःखविवर्जिता ॥ ४९ ॥

भाषार्थ-जो नींबकी लकड़ीका यत्नपूर्वक ऋतुकालके अंतमें अपनी योनिमें धुवां देवै फिर रति करै तो वह स्त्री गर्भके दुःखसे रहित होवै अर्थात् उसके कभी गर्भ नहीं रहै ॥ ४९ ॥

१ छाल ।

वन्ध्यात्वनिवारणम् ।

नागकेशरपुष्पाणां चूर्णं गोसर्पिषा सह ।
सेवनाल्लभते पुत्रमृतौ दुग्धान्नभोजिनी॥ ५० ॥

भाषार्थ-नागकेशरके फूलोंका चूर्ण गौके घीके साथ खानेसे पुत्र उत्पन्न होवै ऋतुकालमें दुग्ध चांवल भोजन करै ॥ ५० ॥

तथा।

बीजानि मातुलिंगस्य दुग्धस्विन्नानि सर्पिषा ।
सगर्भामिति कुर्वन्ति पानाद्वन्ध्यामपि स्त्रियम्॥५१॥

भाषार्थ-विजौरा नींबूके बीज जो दुग्धमें भिगो कर, घीके साथ खावै तो वन्ध्या स्त्री भी गर्भवती होजाती है ॥ ५१ ॥

तथाच ।

मातुलिंगस्य बीजानि कुमार्या सह पेषयेत् ।
क्षीरेण सह दातव्यं गर्भमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ५२ ॥

भाषार्थ-जो विजौराके बीजोंको घीग्वारके रसमें पीसकर दुग्धके साथ देवै तो स्त्रीको गर्भ प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं करना ५२

तथान्यच्च ।

पिप्पलीं शृंगवेरं च मरिचं केशरं तथा ।
घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यागर्भप्रदं परम् ॥ ५३ ॥
पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टं च कन्यया ।
ऋत्वन्ते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वा प्राप्नोति संयुतम्॥५४॥

भाषार्थ-पीपरि, अदरख, कालीमिर्च, नागकेशर, इनको घीके साथ खानेसे वंध्या स्त्री गर्भवती होती है ॥ ५३ ॥ तथा

पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ कर लाईहुई लक्ष्मणाकी जड घीग्वारके पाठेके रसमें पीसै और ऋतुके अंतमें घी और दूधके साथ पीवै. इसको पीकरके स्त्री गर्भ धारण करती है ॥ ५४ ॥

पुष्पोद्भवविधि।

यासां पुष्पागमो नास्ति ऋतुकाले च योषिताम्।
तासा कार्या चिकित्सेयं पुनःपुष्पागमो भवेत्॥५५॥
पिप्पली च यवक्षारं विडंगं मन्मथं फलम्।
शुभ्रं तु तुंबिनीबीजं गुटिकां कारयेद्भिषक्॥ ५६ ॥
मुंडी च क्षीरसंयुक्ता योनिद्वारेऽगना शुभा।
त्रिपंचसप्तरात्रेण पुष्पं भवति नाऽन्यथा ॥ ५७ ॥

भाषार्थ-जिन स्त्रियोंके ऋतुकालमें पुष्प (फूल अर्थात् रज) का आगम नहीं होता है अर्थात् गर्भधारणयोग्य रज नहीं है उन स्त्रियोंकी यह चिकित्सा करै जिससे फिर पुष्पका आगमन होता है ॥ ५५ ॥ पीपरि, जवाखार, बायबिडंग, मैनफल, सपेद तोमड़ीके बीज, इन सबको पीस करके वैद्य गोली बनालेवै ॥५६॥ सो गोली गोरखमुंडी और दूधके साथ योनिके द्वारमें जो स्त्री तीन, पांच वा सातदिन रक्खै तो पुष्प (फूल 'रज') उत्पन्न होता है. इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५७ ॥

तथाच।

अन्यद्योगवरं वक्ष्ये येन सा सफला भवेत्।
उशीरमधुयष्टी च लोध्र इन्द्रयवानपि ॥ ५८ ॥
घृतं सर्जरसं चैव माक्षिकं त्रायमाणकम्।

सौभांजनकमूलानि समभागानि कारयेत् ॥ ५९ ॥
पेषयित्वा ततो द्रव्यमजाक्षीरेण पाचयेत्।
सप्तरात्रं पिबेन्नारी यावत्तिष्ठति शोणितम् ॥ ६० ॥
तस्य योनौ विशुद्धायां पश्चाद्द्यान्महौषधम्।
कुमारीक्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत ॥ ६१ ॥
तेन सा लभते पुत्रं सत्यं चैव सुरार्चितम्।

भाषार्थ-अब अन्य (दूसरा) श्रेष्ठ उपाय कहता हूं, जिससे स्त्री सफला (फलसहित) होवै. खस, मुलहटी, लोध, इन्द्रयव ॥ ५८ ॥ घी, सर्जरस (राल), सोनामक्खी, त्रायमाण, सहँजनेकी जड़, इन सबको बराबर भाग लेवै॥ ५९ ॥ और पीसकर बकरीके दूधके साथ सातदिनक जबतक कि स्त्री रुधिरयुक्त रहे तबतक पीवै ॥ ६० ॥ फिर योनि शुद्ध होनेके पश्चात् घीग्वारके पाठाके रसमें दुग्ध मिलाय, सोंठका नस्य सुंघावै और पीनेको देवै ॥ ६१ ॥ इस उपायसे स्त्रीको पुत्र उत्पन्न होवै. यह सत्य है और बृहस्पतिका कहा है ॥

अन्यच्च।

लशुनं क्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत ॥ ६२ ॥
अश्वगंधाकृतं चूर्णमजाक्षीरेण दापयेत्।
यवक्षारं विडंगं च गुडूची च सरेणुका ॥ ६३ ॥
सर्वाणि समभागानि कृत्वा च वरचूर्णितम्।
एतत्पीत्वा लभेत्पुत्रं सा नारी नाऽत्र संशयः ॥६४॥

भाषार्थ-लहसन और दुग्ध मिलाय सूंघने और पीनेमें देवै ॥ ६२ ॥ असगंधका चूर्ण बकरीके दूधमें देवै. जवाखार, बाय-

पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ कर लाईहुई लक्ष्मणाकी जड घीग्वारके पाठेके रसमें पीसै और ऋतुके अंतमें घी और दूधके साथ पीवै. इसको पीकरके स्त्री गर्भ धारण करती है ॥ ५४ ॥

पुष्पोद्भवविधि ।

यासां पुष्पागमो नास्ति ऋतुकाले च योषिताम् ।
तासा कार्या चिकित्सेयं पुनःपुष्पागमो भवेत्॥५५॥
पिप्पली च यवक्षारं विडंगं मन्मथं फलम् ।
शुभ्रं तु तुंबिनीबीजं गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ५६ ॥
मुंडी च क्षीरसंयुक्ता योनिद्वारेंऽगना शुभा ।
त्रिपंचसप्तरात्रेण पुष्पं भवति नाऽन्यथा ॥ ५७ ॥

भाषार्थ-जिन स्त्रियोंके ऋतुकालमें पुष्प (फूल अर्थात् रज) का आगम नहीं होता है अर्थात् गर्भधारणयोग्य रज नहीं है उन स्त्रियोंकी यह चिकित्सा करै जिससे फिर पुष्पका आगमन होता है ॥ ५५ ॥ पीपरि, जवाखार, बायबिडंग, मैनफल, सपेद तोमड़ीके बीज, इन सबको पीस करके वैद्य गोली बनालेवै ॥५६॥ सो गोली गोरखमुंडी और दूधके साथ योनिके द्वारमें जो स्त्री तीन, पांच वा सातदिन रक्खै तो पुष्प (फूल 'रज') उत्पन्न होता है. इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५७ ॥

तथाच ।

अन्यद्योगवरं वक्ष्ये येन सा सफला भवेत् ।
उशीरमधुयष्टी च लोध्र इन्द्रयवानपि ॥ ५८ ॥
घृतं सर्जरसं चैव माक्षिकं त्रायमाणकम् ।

सौभांजनकमूलानि समभागानि कारयेत् ॥ ५९ ॥
पेषयित्वा ततो द्रव्यमजाक्षीरेण पाचयेत् ।
सप्तरात्रं पिबेन्नारी यावत्तिष्ठति शोणितम् ॥ ६० ॥
तस्य योनौ विशुद्धायां पश्चाद्द्यान्महौषधम् ।
कुमारीक्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत ॥ ६१ ॥
तेन सा लभते पुत्रं सत्यं चैव सुरार्चितम् ।

भाषार्थ-अब अन्य (दूसरा) श्रेष्ठ उपाय कहता हूं, जिससे स्त्री सफला (फलसहित) होवै. खस, मुलहटी, लोध, इन्द्रयव ॥ ५८ ॥ घी, सर्जरस (राल), सोनामक्खी, त्रायमाण, सहँजनेकी जड़, इन सबको बराबर भाग लेवै॥ ५९ ॥ और पीसकर बकरीके दूधके साथ सातदिनक जबतक कि स्त्री रुधिरयुक्त रहे तबतक पीवै ॥ ६० ॥ फिर योनि शुद्ध होनेके पश्चात् घीग्वारके पाठाके रसमें दुग्ध मिलाय, सोंठका नस्य सुंघावै और पीनेको देवै ॥ ६१ ॥ इस उपायसे स्त्रीको पुत्र उत्पन्न होवै. यह सत्य है और बृहस्पतिका कहा है ॥

अन्यच्च ।

लशुनं क्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत ॥ ६२ ॥
अश्वगंधाकृतं चूर्णमजाक्षीरेण दापयेत् ।
यवक्षारं विडंगं च गुडूची च सरेणुका ॥ ६३ ॥
सर्वाणि समभागानि कृत्वा च वरचूर्णितम् ।
एतत्पीत्वा लभेत्पुत्रं सा नारी नाऽत्र संशयः ॥६४॥

भाषार्थ-लहसन और दुग्ध मिलाय सूंघने और पीनेमें देवै ॥ ६२ ॥ असगंधका चूर्ण बकरीके दूधमें देवै. जवाखार, बाय-

बिडंग, गुर्च, रेणुका ॥ ६३ ॥ इन सबको समान भाग लेके, बारीक पीस कर, चूर्ण बनालेवै और दूधके साथ पीवै. इन सबको पीनेसे स्त्रीके निस्सन्देह पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६४ ॥

गर्भाधानविधिः ।

हिंगुं च शतवीरां च दाडिमं सैंधवं तथा ।
त्रिकटुः शतपुष्पा च नागपुष्पं शतावरी ॥ ६५ ॥
मधुकं सुमना चैव कार्षकाणि प्रदापयेत् ।
क्षीरेण सह दातव्या नार्याश्च पुरुषस्य च ॥ ६६ ॥
दिनत्रयं तु भुंजीत शालितन्दुलदुग्धकम् ।
भुक्तं तु लभते गर्भं नारीणां नाऽत्र संशयः ॥६७॥

भाषार्थ–हींग, शतवीरा (श्वेतदूर्वा), अनार, सेंधालवण, त्रिकुटा (सोंठि, मिर्च, पीपरि), सौंफ, नागकेशर, शतावरी, ॥ ६५ ॥ महुआ, चमेली, इन सबको एक २ कर्ष लेके दुग्धके साथ स्त्री और पुरुषको देवै ॥ ६६ ॥ तीनदिन यह औषध खावै ऊपरसे चांवल, दूग्धका पथ्य लेवै तो इसके योगसे स्त्रियोंके गर्भ होवै इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥

अन्यच्च ।

अर्कमूलं प्रियंगुं च कुसुम्भं नागकेशरम् ।
बला चातिबला छागीक्षीरं पीतं दिनत्रयम् ॥ ६८ ॥
विशोधयन्ति योनिं च ततो दद्यान्महौषधम् ।
उत्पलं तगरं कुष्ठं यष्टीमधु सचन्दनम् ॥ ६९ ॥
अजाक्षीरेण पिष्टानि दापयेत्पंचवासरम् ।

लक्ष्मणा गोपयोयुक्ता तस्यै पाने प्रदापयेत् ॥७०॥
तेन सा लभते पुत्रं लक्षणाढ्यं सुपंडितम् ।

भाषार्थ–आककी जड़, कांगनी, कुसुम, नागकेशर, खरैंटी, तालमखाना, ये सब बकरीके दूधमें तीनदिन पीवै ॥ ६८ ॥ और योनि शुद्ध होजानेपर सोंठ, कमल, तगर, कूठ, मौरेठी, चन्दन, ॥ ६९ ॥ इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर, पांचदिन देवै और गोदुग्धके साथ लक्ष्मणा उसको देवै ॥ ७० ॥ इस योगसे स्त्री सुंदर पंडितके लक्षणोंसे युक्त पुत्रको प्राप्त होवै ॥

तथान्यच्च ।

गतरक्ते भगे शुद्धे सक्षीरा लक्ष्मणा तथा ॥७१॥
नस्ये पाने प्रदातव्या लभते सुतमंगना ।
श्वेतार्कक्षुद्रिणी श्वेता श्वेता च गिरिकर्णिका॥७२॥
लक्ष्मणावन्ध्यककोंटी देयं गोक्षीरसंयुतम् ।
नस्ये पाने कृते गर्भं लभते रतिसंगमात् ॥७३॥

भाषार्थ–जब रक्त निकलजावै और योनि शुद्ध होजावै तब दुग्ध और लक्ष्मणा ॥ ७१ ॥ स्त्रीको सूँघने और पीनेको देवै तो पुत्र उत्पन्न होवै, तथा सफेद आक, सपेद कटाई, और सपेद कनेर ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणा, बाँझकाकोरी, इनको गौके दूधके साथ सूँघने और पीनेको देवै तो स्त्री रति करनेसे गर्भको धारण करै ॥ ७३ ॥

गर्भस्तंभन ।

पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका ।
मधुच्छागीपयः पीत्वा किंवा श्वेताद्रिकर्णिका ॥७४॥

बिडंग, गुर्च, रेणुका ॥ ६३ ॥ इन सबको समान भाग लेके, बारीक पीस कर, चूर्ण बनालेवै और दूधके साथ पीवै. इन सबको पीनेसे स्त्रीके निस्सन्देह पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६४ ॥

गर्भाधानविधिः ।

हिंगुं च शतवीरां च दाडिमं सैंधवं तथा ।
त्रिकटुः शतपुष्पा च नागपुष्पं शतावरी ॥ ६५ ॥
मधुकं सुमना चैव कार्षकाणि प्रदापयेत् ।
क्षीरेण सह दातव्या नार्याश्च पुरुषस्य च ॥ ६६ ॥
दिनत्रयं तु भुंजीत शालितन्दुलदुग्धकम् ।
भुक्तं तु लभते गर्भं नारीणां नाऽत्र संशयः ॥६७॥

भावार्थ–हींग, शतवीरा (श्वेतदूर्वा), अनार, सेंधालवण, त्रिकुटा (सोंठि, मिर्च, पीपरि), सौंफ, नागकेशर, शतावरी, ॥ ६५ ॥ महुआ, चमेली, इन सबको एक २ कर्ष लेके दुग्धके साथ स्त्री और पुरुषको देवै ॥ ६६ ॥ तीनदिन यह औषध खावै ऊपरसे चांवल, दूग्धका पथ्य लेवै तो इसके योगसे स्त्रियोंके गर्भ होवै इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥

अन्यच्च ।

अर्कमूलं प्रियंगुं च कुसुम्भं नागकेशरम् ।
बला चातिबला छागीक्षीरं पीतं दिनत्रयम् ॥ ६८ ॥
विशोधयन्ति योनिं च ततो दद्यान्महौषधम् ।
उत्पलं तगरं कुष्ठं यष्टीमधु सचन्दनम् ॥ ६९ ॥
अजाक्षीरेण पिष्टानि दापयेत्पंचवासरम् ।

लक्ष्मणा गोपयोयुक्ता तस्यै पाने प्रदापयेत् ॥७०॥
तेन सा लभते पुत्रं लक्षणाढ्यं सुपंडितम् ।

भावार्थ–आककी जड़, कांगनी, कुसुम, नागकेशर, खरैंटी, तालमखाना, ये सब बकरीके दूधमें तीनदिन पीवै ॥ ६८ ॥ और योनि शुद्ध होजानेपर सोंठ, कमल, तगर, कूठ, मौरेठी, चन्दन, ॥ ६९ ॥ इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर, पांचदिन देवै और गोदुग्धके साथ लक्ष्मणा उसको देवै ॥ ७० ॥ इस योगसे स्त्री सुंदर पंडितके लक्षणोंसे युक्त पुत्रको प्राप्त होवै ॥

तथान्यच्च ।

गतरक्ते भगे शुद्धे सक्षीरा लक्ष्मणा तथा ॥७१॥
नस्ये पाने प्रदातव्या लभते सुतमंगना ।
श्वेतार्कक्षुद्रिणी श्वेता श्वेता च गिरिकर्णिका७२।
लक्ष्मणावन्ध्यककोंटी देयं गोक्षीरसंयुतम् ।
नस्ये पाने कृते गर्भं लभते रतिसंगमात् ॥७३॥

भावार्थ–जब रक्त निकलजावै और योनि शुद्ध होजावै तब दुग्ध और लक्ष्मणा ॥ ७१ ॥ स्त्रीको सूँघने और पीनेको देवै तो पुत्र उत्पन्न होवै, तथा सफेद आक, सपेद कटाई, और सपेद कनेर ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणा, बाँझकाकोरी, इनको गौके दूधके साथ सूँघने और पीनेको देवै तो स्त्री रति करनेसे गर्भको धारण करै ॥ ७३ ॥

गर्भस्तंभन ।

पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका ।
मधुच्छागीपयः पीत्वा किंवा श्वेताद्रिकर्णिका ।७४।

ललना शर्करा पाठा कन्दश्च मधुनान्वितः ।
भक्षितो वारयत्येव पतन्तं गर्भमंजसा ॥ ७५ ॥

भाषार्थ–कुम्हारके हाथकी मिट्टी, शहत, बकरीका दूध, पीनेसे गिरताहुआ गर्भ रुकजाता है, अथवा श्वेत कनेर ॥७४॥ केशर, मिश्री, पाढ़, कंद, यह औषध शहतमें मिलाय, खानेसे गिरताहुआ गर्भ रुकजाता है ॥ ७५ ॥

तथा च ।

समभागं सितायुक्तं शालितन्दुलचूर्णकम् ।
उदुम्बरशिफाक्काथे पीतं गर्भं सुरक्षति ॥ ७६ ॥

भाषार्थ–साठी चावलका चून और मिश्री, दोनोंको समान भाग लेकर, गूलरकी जड़के काढ़ाके साथ पीवै तो गर्भ सुरक्षित होता है ॥ ७६ ॥

सुखप्रसवोपाय ।

मातुलुंगस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ७७ ॥
तुषाम्बुपरिघृष्टेन कन्देन परिलेपयेत् ।
लांगुल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमाप्नोति गर्भिणी ॥ ७८ ॥

भाषार्थ–बिजौराकी जड़, महुआ, शहत, ये सब घीके साथ पीवै तो स्त्री सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न करती है ॥ ७७ ॥ चाँवलके जलके साथ कुँभेरनकी जड़को पीसकर चरणोंपर लेपकरै तो गर्भिणी शीघ्र पुत्र जनती है ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां वीर्यस्तम्भनादिकौतूहलनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

बालतंत्र ।

बालतंत्रं प्रवक्ष्यामि समासाद्रविणोदितम् ।
पूजाद्रव्यं दिशोभागं मंत्रं तद्ग्राह्यलक्षणम् ॥ १ ॥

भाषार्थ– अब बालतंत्रको संक्षेपसे वर्णन करूँगा. बालरक्षणार्थ पूजा और पूजनका द्रव्य, दिशाविभाग, मंत्र, तथा उसके ग्राह्यका लक्षण अर्थात् जो पूतना आदि बालकको पीडा देती है उसका लक्षण भी वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

प्रथमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
नन्दानाम्नी समाख्याता योगिनी तस्य लक्षणम् ॥२॥
द्वितीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
सुनन्दायोगिनी नाम प्रथमं जायते ज्वरः ॥ ३ ॥
संकोचो हस्तपादानामक्षिरोगोतिछर्दनम् ।
सभयत्वं कृशत्वं च तद्ग्रस्ते इति लक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ–पहले दिन, महीना, और वर्षमें नन्दानाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है उसका लक्षण ॥ २ ॥ और दूसरे दिन, मास, वर्षमें सुनन्दानाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है, इन दोनोंका लक्षण यह है कि प्रथम ज्वर होता है ॥ ३ ॥ और हाँथ, पाँवोंमें संकोच, नेत्रोंमें रोग, वमन, ये विकार होते हैं और बालक रोता है, दुबला हो जाता है, ये लक्षण उसके ग्रसनेसे होते हैं ॥ ४ ॥

तृतीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
पूतनायोगिनी नाम गात्रभंगो ज्वरोऽरुचिः ॥ ५ ॥

ललना शर्करा पाठा कन्दश्च मधुनान्वितः ।
भक्षितो वारयत्येव पतन्तं गर्भमंजसा ॥ ७५ ॥

भाषार्थ–कुम्हारके हाथकी मिट्टी, शहत, बकरीका दूध, पीनेसे गिरताहुआ गर्भ रुकजाता है, अथवा श्वेत कनेर ॥७४॥ केशर, मिश्री, पाढ़, कंद, यह औषध शहतमें मिलाय, खानेसे गिरताहुआ गर्भ रुकजाता है ॥ ७५ ॥

तथा च ।

समभागं सितायुक्तं शालितन्दुलचूर्णकम् ।
उदुम्बरशिफाक्काथे पीतं गर्भं सुरक्षति ॥ ७६ ॥

भाषार्थ–साठी चावलका चून और मिश्री, दोनोंको समान भाग लेकर, गूलरकी जड़के काढ़ाके साथ पीवै तो गर्भ सुरक्षित होता है ॥ ७६ ॥

सुखप्रसवोपाय ।

मातुलुंगस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ७७ ॥
तुषाम्बुपरिघृष्टेन कन्देन परिलेपयेत् ।
लांगुल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमाप्नोति गर्भिणी ॥ ७८ ॥

भाषार्थ–बिजौराकी जड़, महुआ, शहत, ये सब घीके साथ पीवै तो स्त्री सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न करती है ॥ ७७ ॥ चौंवलके जलके साथ कुँभेरनकी जड़को पीसकर चरणोंपर लेप करै तो गर्भिणी शीघ्र पुत्र जनती है ॥ ७८ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां वीर्यस्तम्भनादिकौतूहलनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

बालतंत्र ।

बालतंत्रं प्रवक्ष्यामि समासाद्रविणोदितम् ।
पूजाद्रव्यं दिशोभागं मंत्रं तद्ग्राह्यलक्षणम् ॥ १ ॥

भाषार्थ– अब बालतंत्रको संक्षेपसे वर्णन करूँगा. बालरक्षणार्थ पूजा और पूजनका द्रव्य, दिशाविभाग, मंत्र, तथा उसके ग्राह्यका लक्षण अर्थात् जो पूतना आदि बालकको पीडा देती है उसका लक्षण भी वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

प्रथमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
नन्दानाम्नी समाख्याता योगिनी तस्य लक्षणम् ॥२॥
द्वितीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
सुनन्दायोगिनी नाम प्रथमं जायते ज्वरः ॥ ३ ॥
संकोचो हस्तपादानामक्षिरोगोतिछर्दनम् ।
सभयत्वं कृशत्वं च तद्ग्रस्ते इति लक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ–पहले दिन, महीना, और वर्षमें नन्दानाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है उसका लक्षण ॥ २ ॥ और दूसरे दिन, मास, वर्षमें सुनन्दानाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है, इन दोनोंका लक्षण यह है कि प्रथम ज्वर होता है ॥ ३ ॥ और हाँथ, पाँवोंमें संकोच, नेत्रोंमें रोग, वमन, ये विकार होते हैं और बालक रोता है, दुबला हो जाता है, ये लक्षण उसके ग्रसनेसे होते हैं ॥ ४ ॥

तृतीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
पूतनायोगिनी नाम गात्रभंगो ज्वरोऽरुचिः ॥ ५ ॥

प्रलापं कंधराशोथश्छर्दिरित्यादिलक्षणम् ।
अपराह्ले च वारुण्यां पंचरात्रिं बलिं क्षिपेत् ॥ ६ ॥
चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
बिडाली नाम तद्ग्रस्ते चक्षुःशूलं ज्वरोऽरुचिः॥७॥
गात्रस्फोटनमित्यादि विवर्णेन बलिं क्षिपेत् ।

भाषार्थ–तीसरे दिवस, मास, और वर्षमें पूतना नाम योगिनी बालकको ग्रसती है, जिससे बालकको गात्रभंग, ज्वर, अरुचि ॥ ५ ॥ प्रलाप, सूजन, छर्दि आदि होते हैं. यह लक्षण हैं. इस योगिनीके निमित्त पाँच रात्रि पश्चिम दिशामें दुपहर-उपरांत बलि देवै ॥ ६ ॥ चौथे दिवस, मास, और वर्षमें बिडाली नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है. उसके ग्रसनेसे नेत्रपीडा, ज्वर, अरुचि, ॥ ७ ॥ अंगोंका फूटना आदि इसके निमित्त बलि देवै ॥

पंचमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ ८ ॥
पूतनामातृका नाम योगिनी तस्य लक्षणम् ।
अथ षष्ठे दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ ९ ॥
योगिनी शकुनी नाम कासश्वासोऽरुचिर्ज्वरः ।
हस्तपादादिसंकोचश्चक्षुःपीडेति लक्षणम् ॥ १० ॥
पंचरात्रं बलिं तस्यै वारुण्यां दिशि निक्षिपेत् ।
सप्तमे दिवसे मासे वर्षे शुष्का शिवा शिशुम् ॥११॥
गृह्णाति रोदनं कंपो ज्वरशोषादिलक्षणम् ।
पश्चिमायां दिशि पंच बलौ दत्ते शिशुः सुखी॥१२॥

भाषार्थ–पाँचवें दिवस, मास, और वर्षमें पूतनानाम मातृका बालकको ग्रहण करती है ॥ ८ ॥ छठे दिवस, महीना, और छठे वर्षमें शकुनी नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है ॥ ९ ॥ उसमें बालकको, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, और हाथपाँव आदि संकोच (सुकड़न) नेत्रपीडा, होती है. उसकी शांतिके अर्थ पाँच रात्रि पश्चिम दिशामें बलिदान देवै ॥ १० ॥ और सातवें दिन, महीना, और वर्षमें शुष्कानाम शिवा (योगिनी) बालकको ग्रहण करती है ॥ ११ ॥ उसके ग्रहण करनेसे, रोदन, कंप, ज्वर, सूजन, आदि लक्षणोंसे बालक पीडित होता है. इसके निमित्त पश्चिम दिशामें बलि देवै पाँचवार, तो बालक सुखी होवै ॥ १२ ॥

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति जृंभिका ।
तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं जायते ज्वरः ॥१३॥
शिरःपीडाक्षिरोगश्च चक्षुरुत्पाटचेष्टितम् ।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् १४
नवमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
अचिंतायोगिनी नाम गात्रभंगः शिरोक्षिरुक्१५
छर्दिः प्रलाप इत्यादि तद्गृहीतस्य लक्षणम् ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् ॥१६॥
दशमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
नाम्ना कापालिकी ख्याता योगिनी तस्य लक्षणम्
॥१७॥ रोदनं कम्पनं छर्दिर्ज्वरो दुर्बलताक्षिरुक् ।
पूर्वां दिशं समाश्रित्य पंचरात्रं बलिं क्षिपेत्॥१८॥

प्रलापं कंधराशोथश्छर्दिरित्यादिलक्षणम् ।
अपराह्ने च वारुण्यां पंचरात्रिं बलिं क्षिपेत् ॥ ६ ॥
चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
बिडाली नाम तद्ग्रस्ते चक्षुःशूलं ज्वरोऽरुचिः॥७॥
गात्रस्फोटनमित्यादि विवर्णेन बलिं क्षिपेत् ।

भाषार्थ—तीसरे दिवस, मास, और वर्षमें पूतना नाम योगिनी बालकको ग्रसती है, जिससे बालकको गात्रभंग, ज्वर, अरुचि ॥ ५ ॥ प्रलाप, सूजन, छर्दि आदि होते हैं. यह लक्षण हैं. इस योगिनीके निमित्त पाँच रात्रि पश्चिम दिशामें दुपहर-उपरांत बलि देवै ॥ ६ ॥ चौथे दिवस, मास, और वर्षमें बिडाली नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है. उसके ग्रसनेसे नेत्रपीडा, ज्वर, अरुचि, ॥ ७ ॥ अंगोंका फूटना आदि इसके निमित्त बलि देवै ॥

पंचमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ ८ ॥
पूतनामातृका नाम योगिनी तस्य लक्षणम् ।
अथ षष्ठे दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ ९ ॥
योगिनी शकुनी नाम कासश्वासोऽरुचिर्ज्वरः ।
हस्तपादादिसंकोचश्चक्षुःपीडेति लक्षणम् ॥ १० ॥
पंचरात्रं बलिं तस्यै वारुण्यां दिशि निक्षिपेत् ।
सप्तमे दिवसे मासे वर्षे शुष्का शिवा शिशुम् ॥११॥
गृह्णाति रोदनं कंपो ज्वरशोषादिलक्षणम् ।
पश्चिमायां दिशि पंच बलौ दत्ते शिशुः सुखी॥१२॥

भाषार्थ—पाँचवें दिवस, मास, और वर्षमें पूतनानाम मातृका बालकको ग्रहण करती है ॥ ८ ॥ छठे दिवस, महीना, और छठे वर्षमें शकुनी नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है ॥ ९ ॥ उसमें बालकको, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, और हाथपाँव आदि संकोच (सुकड़न) नेत्रपीडा, होती है. उसकी शांतिके अर्थ पाँच रात्रि पश्चिम दिशामें बलिदान देवै ॥ १० ॥ और सातवें दिन, महीना, और वर्षमें शुष्कानाम शिवा (योगिनी) बालकको ग्रहण करती है ॥ ११ ॥ उसके ग्रहण करनेसे, रोदन, कंप, ज्वर, सूजन, आदि लक्षणोंसे बालक पीडित होता है. इसके निमित्त पश्चिम दिशामें बलि देवै पाँचवा र, तो बालक सुखी होवै ॥ १२ ॥

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति जृंभिका ।
तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं जायते ज्वरः ॥१३॥
शिरःपीडाक्षिरोगश्च चक्षुरुत्पाटचेष्टितम् ।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् १४
नवमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
अचिंतायोगिनी नाम गात्रभंगः शिरोक्षिरुक् १५
छर्दिः प्रलाप इत्यादि तद्गृहीतस्य लक्षणम् ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् ॥१६॥
दशमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
नाम्ना कापालिकी ख्याता योगिनी तस्य लक्षणम्
॥१७॥ रोदनं कम्पनं छर्दिर्ज्वरो दुर्बलताक्षिरुक् ।
पूर्वां दिशं समाश्रित्य पंचरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥१८॥

भाषार्थ-आठवें दिवस, मास, वर्षमें जृंभिका नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है उसके ग्रहणमात्रसे प्रथम बालकको ज्वर होता है ॥ १३ ॥ और शिरपीडा, नेत्ररोग, आंखोंके उखड़नेकीसी चेष्टा, होती है. उसकी शांतिके अर्थ दक्षिण दिशामें जाकर बलि देवै ॥ १४ ॥ नवें दिवस, मास, वर्षमें बालकको अचिंतानाम योगिनी पकड़ती है, जिससे गात्रभंग, शिर और नेत्रोंमें रोग ॥ १५ ॥ छर्दि, बकवाय आदि लक्षण होते हैं. उसकी शांतिके अर्थ उत्तर दिशामें जाकर बलिदान देवै ॥ १६ ॥ दशवें दिवस, महीना, और वर्षमें बालकको ग्रहण करती है सो कापालिकी नामसे प्रसिद्ध योगिनीका लक्षण यह है कि ॥१७॥ रोदन, कंपन, छर्दि (वमन), ज्वर, दुर्बलता, नेत्ररोग, ये रोग होते हैं उसकी शांतिके अर्थ पूर्वदिशामें पाँच रात्रि बलि देवै १८

एकादशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति लिप्सिता ।
गात्रकम्पो ज्वरस्तीव्रस्तद्गृहीतस्य लक्षणम्१९
भानुसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
पीतलीयोगिनी नाम रोदनं वेदनाज्वरः २०
निद्रा क्षीणस्वरः पीतो वमनाहारशून्यता ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत्२१
कामसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम्।
भद्रकाली ज्वरो निद्रा वामहस्तस्य कंपनम्
॥२२॥ वेदनारुचिनिःश्वासाः कायः पीतो
विचेष्टितम् । पूर्वां दिशं समाश्रित्य बलिं तस्यै
प्रदापयेत् ॥ २३ ॥

भाषार्थ-ग्यारहवें दिवस, महीना, और वर्षमें लिप्सिता नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है. उसका लक्षण यह है, कि बालकका शरीर काँपने लगता है और तीव्र ज्वर होता है ॥ १९ ॥ बारहवें दिवस, मास और वर्षमें बालकको पीतली नाम योगिनी ग्रहण करती है जिससे बालक रोता है और वेदना, ज्वर ॥२०॥ निद्रा, क्षीणतासे बोलना, पीला रंग, वमन, क्षुदाहीन, इसकी शांतिके अर्थ उत्तर दिशामें जाकर, सात रात्रितक बलि देवै ॥ २१ ॥ तेरहवें दिवस, महीना और वर्षमें भद्रकाली नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है, जिससे बालकको ज्वर, निद्रा, बायें हाथका काँपना ॥ २२ ॥ वेदना, अरुचि, निश्वास, पीला रंग, चेष्टाका बिगड़ना, ये रोग होते हैं. इसकी शांतिके अर्थ पूर्व दिशामें बलि देवै ॥ २३ ॥

पुरन्दरदिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
तारा हि योगिनी नाम ज्वरः शोषोऽरुचिर्भृशम्२४॥
चक्षुःपीडेंगितं तस्यै पश्चिमे बलिमाहरेत् ।
पक्षे च दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ २५ ॥
योगिनी शर्वरी नाम श्वासः कासोऽरुचिर्ज्वरः ।
तद्ग्रस्ते चिह्नमित्यादि दक्षिणस्यां बलिं क्षिपेत्॥२६॥
विकारदिवसे मासे वर्षे गृह्णाति योगिनी ।
कुमारी नयनोद्वेगो ज्वरशोषादिचेष्टितम् ॥ २७ ॥
नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत् ।
बालं च स्नापयेत्पश्चाच्छान्तितोयेन मंत्रवित् ॥२८॥

भाषार्थ-आठवें दिवस, मास, वर्षमें जृंभिका नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है उसके ग्रहणमात्रसे प्रथम बालकको ज्वर होता है ॥ १३ ॥ और शिरपीडा, नेत्ररोग, आंखोंके उखड़नेकीसी चेष्टा, होती है. उसकी शांतिके अर्थ दक्षिण दिशामें जाकर बलि देवै ॥ १४ ॥ नवें दिवस, मास, वर्षमें बालकको अचिंतानाम योगिनी पकड़ती है, जिससे गात्रभंग, शिर और नेत्रोंमें रोग ॥ १५ ॥ छर्दि, बकवाय आदि लक्षण होते हैं. उसकी शांतिके अर्थ उत्तर दिशामें जाकर बलिदान देवै ॥ १६ ॥ दशवें दिवस, महीना, और वर्षमें बालकको ग्रहण करती है सो कापालिकी नामसे प्रसिद्ध योगिनीका लक्षण यह है कि ॥१७॥ रोदन, कंपन, छर्दि (वमन), ज्वर, दुर्बलता, नेत्ररोग, ये रोग होते हैं उसकी शांतिके अर्थ पूर्वदिशामें पाँच रात्रि बलि देवै १८

एकादशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति लिप्सिता ।
गात्रकम्पो ज्वरस्तीव्रस्तद्गृहीतस्य लक्षणम् १९
भानुसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
पीतलीयोगिनी नाम रोदनं वेदनाज्वरः २०
निद्रा क्षीणस्वरः पीतो वमनाहारशून्यता ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत् २१
कामसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
भद्रकाली ज्वरो निद्रा वामहस्तस्य कंपनम्
॥२२॥ वेदनारुचिनिःश्वासाः कायः पीतो
विचेष्टितम् । पूर्वां दिशं समाश्रित्य बलिं तस्यै
प्रदापयेत् ॥ २३ ॥

भाषार्थ-ग्यारहवें दिवस, महीना, और वर्षमें लिप्सिता नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है. उसका लक्षण यह है, कि बालकका शरीर काँपने लगता है और तीव्र ज्वर होता है ॥ १९ ॥ बारहवें दिवस, मास और वर्षमें बालकको पीतली नाम योगिनी ग्रहण करती है जिससे बालक रोता है और वेदना, ज्वर ॥२०॥ निद्रा, क्षीणतासे बोलना, पीला रंग, वमन, क्षुदाहीन, इसकी शांतिके अर्थ उत्तर दिशामें जाकर, सात रात्रितक बलि देवै ॥ २१ ॥ तेरहवें दिवस, महीना और वर्षमें भद्रकाली नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है, जिससे बालकको ज्वर, निद्रा, बायें हाथका काँपना ॥ २२ ॥ वेदना, अरुचि, निश्वास, पीला रंग, चेष्टाका बिगड़ना, ये रोग होते हैं. इसकी शांतिके अर्थ पूर्व दिशामें बलि देवै ॥ २३ ॥

पुरन्दरदिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
तारा हि योगिनी नाम ज्वरः शोषोऽरुचिर्भृशम् २४॥
चक्षुःपीडेंगितं तस्यै पश्चिमे बलिमाहरेत् ।
पक्षे च दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ २५ ॥
योगिनी शर्वरी नाम श्वासः कासोऽरुचिर्ज्वरः ।
तद्ग्रस्ते चिह्नमित्यादि दक्षिणस्यां बलिं क्षिपेत् ॥२६॥
विकारदिवसे मासे वर्षे गृह्णाति योगिनी ।
कुमारी नयनोद्वेगो ज्वरशोषादिचेष्टितम् ॥ २७ ॥
नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत् ।
बालं च स्नापयेत्पश्चाच्छान्तितोयेन मंत्रवित् ॥२८॥

भाषार्थ-चौदहवें दिन, महीना, और वर्षमें तारा नाम योगिनी बालकको पकड़ती है जिससे ज्वर, सूजन, अरुचि, ॥ २४ ॥ नेत्रपीडा होती है. उसकी शांतिके अर्थ पश्चिम दिशामें बलि देवै. और पंद्रहवें दिवस, मास और वर्षमें शर्वरी नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है ॥ २५ ॥ जिसके पकड़नेसे बालकको श्वास, खाँसी, अरुचि, ज्वर, आदि रोग हो जाते हैं तिसके अर्थ दक्षिण दिशामें बलि देवै ॥ २६ ॥ सोलहवें दिवस, महीना और वर्षमें कुमारी नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है, जिससे बालकके नेत्र घूमने लगते हैं; ज्वर, सूजन, आदि रोग होते हैं; और चेष्टा बदलजाती है ॥ २७ ॥ तिसकी शांतिके अर्थ नैर्ऋत दिशामें जाकर, सात रात्रिपर्यन्त बलि देवै, और बलि देनेके पश्चात् बालक शांतिके जलसे मंत्रपूर्वक स्नान करावै ॥ २८ ॥

नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम्।
कृत्वा पूजा च कर्तव्या धूपपुष्पाक्षतादिभिः॥ २९॥
वटका लड्डुकापूपा अग्रभक्तं गुडं दधि।
चातुर्वर्ण्यपताकाश्च प्रदीपाः पुष्पचंदनम् ॥ ३० ॥
पूजयेत्सर्वरोगानामपराह्णे यथा बलिः।
सर्वत्र नामभेदेन बलिदानं प्रजायते ॥ ३१ ॥
ॐ नमो भगवति अमुकीदेवि बालकं मुंच बलिं गृहाण स्वाहा। सर्वत्र बलिसमर्पणे मंत्रोऽयम् ॥ ३२ ॥

भाषार्थ-नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी लाकर, देवीकी मूर्ति बनाके धूप, फूल, अक्षत आदिसे पूजन पूर्वोक्त दिशामें करै ॥ २९ ॥ फिर बड़े, लड्डू, मालपुआ, भात, गुड़, दही और चार रंगकी पताका (झंडी) यह चढ़ावै, दीपदान करै, पुष्प और चंदन चढ़ावै ॥ ३० ॥ सब पूजन करके दो प्रहर उपरांत दिनमें बलिप्रदान चढ़ावै, और सब योगिनियोंके नामभेदसे बलिदान करै अर्थात् जिस योगिनीका पूजन करै उसका नाम उच्चारण करै ॥ ३१ ॥ और "ॐ नमो भगवति अमुकी देवि बालकं मुंच बलिं गृहाण स्वाहा" सब योगिनियोंके बलिदानमें यही मंत्र है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां बालतंत्रकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय ॥ ११ ॥

कालज्ञान।

अथ कालस्य विज्ञानं प्रवक्ष्यामि यथासुखम्।
जीवितं मरणं योगी यतो जानाति निश्चयात् ॥१॥

भाषार्थ-अब कालज्ञानको यथासुख वर्णन करता हूँ; जिससे योगी निश्चयपूर्वक जीवन मरणको जानलेता है ॥ १ ॥

कालग्रहस्य यस्येदं दंष्ट्रासंपुटके जगत्।
अद्यैव वा प्रभाते वा सोऽवश्यं भक्षयिष्यति॥ २ ॥
रसं रसायनं योगं कालं ज्ञात्वा समाचरेत्।
यस्माज्ज्ञानं विना व्यर्थं तस्मात्तत्कथ्यतेऽधुना ॥३॥

भाषार्थ-जिस कालकी दाढ़ोंमें यह सम्पूर्ण जगत् है, सो काल आज या कल अवश्य भक्षण करेगा ॥ २ ॥ इस प्रकार कालको जान कर, रस, रसायन और योग करै. क्यों उसके

भाषार्थ-चौदहवें दिन, महीना, और वर्षमें तारा नाम योगिनी बालकको पकड़ती है जिससे ज्वर, सूजन, अरुचि, ॥ २४ ॥ नेत्रपीडा होती है. उसकी शांतिके अर्थ पश्चिम दिशामें बलि देवै. और पंद्रहवें दिवस, मास और वर्षमें शर्वरी नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है ॥ २५ ॥ जिसके पकड़नेसे बालकको श्वास, खाँसी, अरुचि, ज्वर, आदि रोग हो जाते हैं तिसके अर्थ दक्षिण दिशामें बलि देवै ॥ २६ ॥ सोलहवें दिवस, महीना और वर्षमें कुमारी नाम योगिनी बालकको ग्रहण करती है, जिससे बालकके नेत्र घूमने लगते हैं; ज्वर, सूजन, आदि रोग होते हैं; और चेष्टा बदलजाती है ॥ २७ ॥ तिसकी शांतिके अर्थ नैर्ऋत दिशामें जाकर, सात रात्रिपर्यन्त बलि देवै, और बलि देनेके पश्चात् बालक शांतिके जलसे मंत्रपूर्वक स्नान करावै ॥ २८ ॥

नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम्।
कृत्वा पूजा च कर्तव्या धूपपुष्पाक्षतादिभिः ॥ २९ ॥
वटका लड्डुकापूपा अग्रभक्तं गुडं दधि।
चातुर्वर्ण्यपताकाश्च प्रदीपाः पुष्पचंदनम् ॥ ३० ॥
पूजयेत्सर्वरोगानामपराह्णे यथा बलिः।
सर्वत्र नामभेदेन बलिदानं प्रजायते ॥ ३१ ॥
ॐ नमो भगवति अमुकीदेवि बालकं मुंच बलिं गृहाण स्वाहा। सर्वत्र बलिसमर्पणे मंत्रोऽयम् ॥ ३२ ॥

भाषार्थ-नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी लाकर, देवीकी मूर्तिं बनाके धूप, फूल, अक्षत आदिसे पूजन पूर्वोक्त दिशामें करै ॥ २९ ॥ फिर बड़े, लड्डू, मालपुआ, भात, गुड़, दही और चार रंगकी पताका (झंडी) यह चढ़ावै, दीपदान करै, पुष्प और चंदन चढ़ावै ॥ ३० ॥ सब पूजन करके दो प्रहर उपरांत दिनमें बलिप्रदान चढ़ावै, और सब योगिनियोंके नामभेदसे बलिदान करै अर्थात् जिस योगिनीका पूजन करै उसका नाम उच्चारण करै ॥ ३१ ॥ और "**ॐ नमो भगवति अमुकी देवि बालकं मुंच बलिं गृहाण स्वाहा**" सब योगिनियोंके बलिदानमें यही मंत्र है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुन्दरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां बालतंत्रकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय ॥ ११ ॥

कालज्ञान।

अथ कालस्य विज्ञानं प्रवक्ष्यामि यथासुखम्।
जीवितं मरणं योगी यतो जानाति निश्चयात् ॥१॥

भाषार्थ-अब कालज्ञानको यथासुख वर्णन करता हूँ; जिससे योगी निश्चयपूर्वक जीवन मरणको जानलेता है ॥ १ ॥

कालग्रहस्य यस्येदं दंष्ट्रासंपुटके जगत्।
अद्यैव वा प्रभाते वा सोऽवश्यं भक्षयिष्यति ॥ २ ॥
रसं रसायनं योगं कालं ज्ञात्वा समाचरेत्।
यस्माज्ज्ञानं विना व्यर्थं तस्मात्तत्कथ्यतेऽधुना ॥३॥

भाषार्थ-जिस कालकी दाढ़ोंमें यह सम्पूर्ण जगत् है, सो काल आज या कल अवश्य भक्षण करेगा ॥ २ ॥ इस प्रकार कालको जान कर, रस, रसायन और योग करै. क्यों उसके

आनेविना सब व्यर्थ है. इसकारण इस समय कालज्ञान वर्णन किया जाता है ॥ ३ ॥

दूतो रक्तकषायकृष्णवसनो दन्तीजरामर्दितस्तै-
लाभ्यक्तशरीरकायुधकरो दीनोऽश्रुपूर्णाननः ।
भस्माङ्गारकपालपांशुमुशलः सूर्यास्तसूर्योदये
यः सूच्या स्वरसंस्थितो गदवतां कालाय स
स्यादसौ ॥ ४ ॥

भाषार्थ–जो वैद्यको बुलानेके निमित्त जानेवाले दूतके वस्त्र रक्तवर्ण, गेरुआ रंगके, अथवा काले हों, बड़े व टेढे दांत हों, बूढ़ा हो, तथा उसके शरीरमें तेल लगा हो, हाथमें कोई हथियार लिये हो, दीन हो, नेत्रोंमें आँसू भरे हों, भस्म लगाये हो, कपाल, पांशु, मुशल, लिये हो, सूर्यास्त वा सूर्योदयके समयमें दक्षिणस्वर दूतका चलता हो, अथवा रोगीका हो, तो उस रोगीकी मृत्यु होवै ॥ ४ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिः सन्निपातस्य लक्षणम् ॥५॥

भाषार्थ–जिस रोगीका चित्त अकस्मात् बिगड़जाय और अकस्मात् अच्छा हो जाय, अकस्मात् (एकायक) इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हो अर्थात् इन्द्रियाँ चलायमान हो जायँ तो यह सन्निपातके लक्षण जानना ॥ ५ ॥

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्रारिष्टं समासेन व्यासं तत्र निबोध मे ॥ ६ ॥

दुष्टशब्देन रम्यन्ते साधुशब्देन कुप्यति ।
यश्चाकस्मान्न शृणुते तं गतायुं समादिशेत् ॥७॥

भाषार्थ–जिसका शरीर शीतल हो और प्रकृति (स्वभाव) बिगड़ जावै, उसके अरिष्टको संक्षेपसे वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ जो रोगी दुष्टवचनसे प्रसन्न हो और अच्छे वचनसे कोपयुक्त हो, जो अकस्मात् नहीं सुनै अर्थात् बहिरा होजाय, उसको थोड़ी उमरवाला कहिये ॥ ७ ॥

यो वा गन्धं न गृह्णाति दीपे शान्ते च मानवः ।
दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानि च पश्यति ॥८॥
चन्द्रं सूर्यप्रभं पश्येत्सूर्यं वा चन्द्रवर्चसम् ।
तडिद्वातोषितान्मेघान् निर्मले गगने चरान् ॥ ९ ॥
विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् ।
पश्चान्नीलं मूर्तिमन्तमन्तरिक्षं च पश्यति ॥ १० ॥
यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ।
संजातः संशयो यस्य तं वदन्ति गतायुषम् ॥११॥

भाषार्थ–अथवा जिस मनुष्यको दीपकी शान्ति होनेपर गन्ध न आवै और दिनके समय आकाशमें नक्षत्रोंको देखै ॥८॥ तथा चन्द्रमाको सूर्यसमान, सूर्यको चन्द्रसमान देखै, निर्मल आकाशमें बिजली, और मेघोंको तथा वायुको देखै ॥ ९ ॥ और विमान, यान, महल, देखै और अन्तरिक्षमें नीली मूर्ति देखै ॥ १० ॥ और जिसको गरम वस्तु शीतल, तथा शीतल (ठंढी) वस्तु गरम ग्रहण करनेमें मालूम हो, तथा जिसको संशय उत्पन्न

आनेविना सब व्यर्थ है. इसकारण इस समय कालज्ञान वर्णन किया जाता है ॥ ३ ॥

दूतो रक्तकषायकृष्णवसनो दन्तीजरामर्दितस्तै-
लाभ्यक्तशरीरकायुधकरो दीनोऽश्रुपूर्णाननः ।
भस्माङ्गारकपालपांशुमुशलः सूर्यास्तसूर्योदये
यः सूच्या स्वरसंस्थितो गदवतां कालाय स
स्यादसौ ॥ ४ ॥

भाषार्थ–जो वैद्यको बुलानेके निमित्त जानेवाले दूतके वस्त्र रक्तवर्ण, गेरुआ रंगके, अथवा काले हों, बड़े व टेढे दांत हों, बूढा हो, तथा उसके शरीरमें तेल लगा हो, हाथमें कोई हथियार लिये हो, दीन हो, नेत्रोंमें आँसू भरे हों, भस्म लगाये हो, कपाल, पांशु, मुशल, लिये हो, सूर्यास्त वा सूर्योदयके समयमें दक्षिणस्वर दूतका चलता हो, अथवा रोगीका हो, तो उस रोगीकी मृत्यु होवै ॥ ४ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिः सन्निपातस्य लक्षणम् ॥५॥

भाषार्थ–जिस रोगीका चित्त अकस्मात् विगड़जाय और अकस्मात् अच्छा हो जाय, अकस्मात् (एकायक) इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हो अर्थात् इन्द्रियाँ चलायमान हो जायँ तो यह सन्निपातके लक्षण जानना ॥ ५ ॥

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्रारिष्टं समासेन व्यासं तत्र निबोध मे ॥ ६ ॥

दुष्टशब्देन रम्यन्ते साधुशब्देन कुप्यति ।
यश्चाकस्मान्न शृणुते तं गतायुं समादिशेत् ॥७॥

भाषार्थ–जिसका शरीर शीतल हो और प्रकृति (स्वभाव) बिगड़ जावै, उसके अरिष्टको संक्षेपसे वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ जो रोगी दुष्टवचनसे प्रसन्न हो और अच्छे वचनसे कोपयुक्त हो, जो अकस्मात् नहीं सुनै अर्थात् बहिरा होजाय, उसको थोड़ी उमरवाला कहिये ॥ ७ ॥

यो वा गन्धं न गृह्णाति दीपे शान्ते च मानवः ।
दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानि च पश्यति ॥८॥
चन्द्रं सूर्यप्रभं पश्येत्सूर्यं वा चन्द्रवर्चसम् ।
तडिद्वातोषितान्मेघान् निर्मले गगने चरान् ॥ ९ ॥
विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् ।
पश्चान्नीलं मूर्तिमन्तमन्तरिक्षं च पश्यति ॥ १० ॥
यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ।
संजातः संशयो यस्य तं वदन्ति गतायुषम् ॥११॥

भाषार्थ–अथवा जिस मनुष्यको दीपकी शान्ति होनेपर गन्ध न आवै और दिनके समय आकाशमें नक्षत्रोंको देखै ॥८॥ तथा चन्द्रमाको सूर्यसमान, सूर्यको चन्द्रसमान देखै, निर्मल आकाशमें बिजली, और मेघोंको तथा वायुको देखै ॥ ९ ॥ और विमान, यान, महल, देखै और अन्तरिक्षमें नीली मूर्ति देखै ॥ १० ॥ और जिसको गरम वस्तु शीतल, तथा शीतल (ठंढी) वस्तु गरम ग्रहण करनेमें मालूम हो, तथा जिसको संशय उत्पन्न

होगया हो उसको थोड़ी आयुवाला कहते हैं, अर्थात् वह थोड़ेही कालमें मरजावै ॥ ११ ॥

विपरीतेन गृह्णाति भावानन्याँश्च यो नरः ।
धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥१२॥
प्रदीप्तमिव लोकं च योऽवलुप्तमिवांभसा ।
भूमिमष्टादशाकारां लेखाभिर्यस्तु पश्यति ॥१३॥
ज्योत्स्नादर्शे हि तोयेषु छायां यश्च न पश्यति ।
पश्यत्येकांगहीनं च वैकृतं चापि पश्यति ॥१४॥
श्वकाककंकगृध्राणां प्रयातं यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां विकृतामपि यो नरः ॥१५॥
ह्रीश्रियौ यस्य नश्येतां तेज ओजः स्मृतिस्तथा ।
अकस्माज्जृम्भते यश्च स परासुरसंशयम् ॥१६॥

भाषार्थ–जिस मनुष्यको औरोंकी चेष्टा व भाव विपरीत (उलटे) मालूम हों, वा औरोंसे उसका चेष्टा भाव विपरीत हो जावै तथा विना नेत्ररोगके पृथिवीको धुवाँ, कुहर और वस्त्रसे ढकी देखै ॥ १२ ॥ तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगतको फुकता हुआ देखै, तथा जलमें डूबताहुआ देखै, तथा भूमिको अठारह रेखाओंसे देखै ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य धूप, चाँदनी आदि प्रकाश दर्पण और जलमें अपनी छायाको नहीं देखै, अथवा देखै तो एक अंगहीन, और बुरी सूरत देखै ॥ १४ ॥ तथा जो कुत्ता, कौआ, चील, गिद्ध, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सर्प इनके स्वरूप विकृत (भयंकर) देखै ॥१५॥ तथा जिस मनुष्यकी,

लज्जा, लक्ष्मी, तथा तेज, बल, नाश हो जायँ, और अकस्मात् जँभाई लेने लगै, उसकी मृत्यु निस्सन्देह जानना ॥ १६ ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं यथोत्तरः ।
उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥१७॥
कुटिला स्फुटिता वापि सुप्ता वा यस्य नासिका ।
अवस्फूर्जति मग्ना वा स परासुरसंशयम् ॥ १८ ॥

भाषार्थ–जिसका नीचेका होठ नीचेको गिर पड़ै और ऊपरका होठ ऊपरको चिपटजावै अथवा दोनो होठ जामुनके समान काले हो जावैं उस मनुष्यका जीना दुर्लभ जानना ॥ १७ ॥ जिसकी नाक टेढ़ी, फटीसी. और शून्य हो जाय, अथवा भीतरको बैठजावै, वह मनुष्य निस्सन्देह मरजाता है ॥ १८ ॥

धारा बिन्दुसमा यस्य पतते च महीतले ।
सप्ताहाज्जायते मृत्युः कालज्ञानेन कथ्यते ॥ १९ ॥
कर्णहीनं यदात्मानं पश्यत्यात्मा कथंचन ।
न स जीवति लोकेऽस्मिन् कालेन कवलीकृतः ॥२०॥

भाषार्थ–जिसके पसीनाके बिन्दु पृथिवीपर मेघकी धाराके समान गिरैं उसकी मृत्यु सात दिनमें हो जावै. यह कालज्ञानसे कहा गया है ॥१९॥ तथा जो मनुष्य अपनेको विना कानकादेखै, वह इस संसारमें नहीं जीता है. उसे कालसे ग्रसित जानौ ॥२०॥

रात्रौ दाहो भवेद्यस्य दिवा शीतं च जायते ।
कफपूरितकंठस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २१ ॥
चरणौ शीतलौ यस्य शीतलं नाभिमंडलम् ।
शिरस्तापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २२ ॥

होगया हो उसको थोड़ी आयुवाला कहते हैं, अर्थात् वह थोड़ेही कालमें मरजावै ॥ ११ ॥

विपरीतेन गृह्णाति भावानन्याँश्च यो नरः ।
धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥१२॥
प्रदीप्तमिव लोकं च योऽवलुप्तमिवांभसा ।
भूमिमष्टादशाकारां लेखाभिर्यस्तु पश्यति ॥१३॥
ज्योत्स्नादर्शे हि तोयेषु छायां यश्च न पश्यति ।
पश्यत्येकांगहीनं च वैकृतं चापि पश्यति ॥१४॥
श्वकाककंकगृध्राणां प्रयातं यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां विकृतामपि यो नरः ॥१५॥
ह्रीश्रियौ यस्य नश्येतां तेज ओजः स्मृतिस्तथा ।
अकस्माज्जृम्भते यश्च स परासुरसंशयम् ॥१६॥

भाषार्थ–जिस मनुष्यको औरोंकी चेष्टा व भाव विपरीत (उलटे) मालूम हों, वा औरोंसे उसका चेष्टा भाव विपरीत हो जावै तथा विना नेत्ररोगके पृथिवीको धुवाँ, कुहर और वस्त्रसे ढकी देखै ॥ १२ ॥ तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगतको फुकता हुआ देखै, तथा जलमें डूबताहुआ देखै, तथा भूमिको अठारह रेखाओंसे देखै ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य धूप, चाँदनी आदि प्रकाश दर्पण और जलमें अपनी छायाको नहीं देखै, अथवा देखै तो एक अंगहीन, और बुरी सूरत देखै ॥ १४ ॥ तथा जो कुत्ता, कौआ, चील, गिद्ध, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सर्प इनके स्वरूप विकृत (भयंकर) देखै ॥१५॥ तथा जिस मनुष्यकी,

लज्जा, लक्ष्मी, तथा तेज, बल, नाश हो जायँ, और अकस्मात् जँभाई लेने लगै, उसकी मृत्यु निस्सन्देह जानना ॥ १६ ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं यथोत्तरः ।
उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥१७॥
कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ।
अवस्फूर्जति मग्ना वा स परासुरसंशयम् ॥ १८ ॥

भाषार्थ–जिसका नीचेका होठ नीचेको गिर पड़ै और ऊपरका होठ ऊपरको चिपटजावै अथवा दोनो होठ जामुनके समान काले हो जावैं उस मनुष्यका जीना दुर्लभ जानना ॥ १७ ॥ जिसकी नाक टेढ़ी, फटीसी, और शून्य हो जाय, अथवा भीतरको बैठजावै, वह मनुष्य निस्सन्देह मरजाता है ॥ १८ ॥

धारा बिन्दुसमा यस्य पतते च महीतले ।
सप्ताहाज्जायते मृत्युः कालज्ञानेन कथ्यते ॥ १९ ॥
कर्णहीनं यदात्मानं पश्यत्यात्मा कथंचन ।
न स जीवति लोकेऽस्मिन् कालेन कवलीकृतः ॥२०॥

भाषार्थ–जिसके पसीनाके बिन्दु पृथिवीपर मेघकी धाराके समान गिरैं उसकी मृत्यु सात दिनमें हो जावै, यह कालज्ञानसे कहा गया है ॥१९॥ तथा जो मनुष्य अपनेको विना कानकादेखै, वह इस संसारमें नहीं जीता है, उसे कालसे ग्रसित जानौ ॥२०॥

रात्रौ दाहो भवेद्यस्य दिवा शीतं च जायते ।
कफपूरितकंठस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २१ ॥
चरणौ शीतलौ यस्य शीतलं नाभिमंडलम् ।
शिरस्तापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २२ ॥

भाषार्थ–जिस मनुष्यके रात्रिमें दाह हो और दिनमें शीत (जाड़ा) लगै, कंठ कफसे पूरित हो जावै उसकी निस्सन्देह मृत्यु जानना ॥ २१ ॥ तथा जिसके दोनौं चरण शीतळ हो जावैं और नाभिमंडळ (तोंदीके चारो ओर) शीतळ होवै, तथा जिसका शिर गरम होवै उसके मृत्युमें संदेह नहीं जानना २२

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः ।
सदा दाहो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २३ ॥

भाषार्थ–जिसकी हुंकार (नासिकावायु) शीतळ होवै, तथा फूत्कार (मुखवायु) अग्निसमान (गरम) होय, और जिसके सदा दाह होवै उसकी भी निस्सन्देह मृत्यु जानना ॥ २३ ॥

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
हीनायुषो न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥२४॥
अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
विष्णुस्तु भ्रूद्वयोर्मध्ये भ्रूद्वयं मातृमण्डलम् ॥२५॥

भाषार्थ–अरुंधती, ध्रुव, और विष्णुके तीन पद (श्रवण नक्षत्रके तीन तारे) और चौथे मातृमंडल (कृत्तिकाके ६ तारे) को हीन आयुवाले नहीं देखते हैं अर्थात् जिनको न देखै उनकी हीनआयु जानना ॥ २४ ॥ कालज्ञानमें अरुंधती जिह्वाको भी कहते हैं, और नासिकाका अग्रभाग सोई ध्रुवका तारा है, दोनौं भौंहके मध्यभागको विष्णुपद और दोनौं भौंहको मातृमंडल ऐसा भी कहते हैं ॥ २५ ॥

अरश्मिबिंबं सूर्यस्य वह्नेश्चैवांशुवर्जितम् ।
दृष्ट्वैकादशमासांस्तु नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥ २६ ॥

वातं मूत्रं पुरीषं यः सुवर्णं रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासं न जीवति ॥ २७ ॥
क्वचित्पश्यति यो दीप्तं स्वर्णवत्काननं नरः ।
विरूपाणि च भूतानि नवमासं न जीवति ॥ २८ ॥

भाषार्थ–जो मनुष्य सूर्यको किरणरहित और अग्निको तेजरहित देखै वह ११ माससे अधिक नहीं जीवै ॥२६॥ तथा जो मनुष्य वायु, मूत्र, बिष्ठा, सुवर्ण, चाँदीको प्रत्यक्ष अथवा स्वप्नमें देखै तो दशमास भी नहीं जीवै ॥ २७ ॥ तथा जो मनुष्य सुवर्णके सदृश प्रदीप्त बन देखै और प्राणियोंके स्वरूप विकराळ देखै वह नौ ९ मास नहीं जीवै ॥ २८ ॥

स्थूलाङ्गोऽपि कृशः कृशोऽपि सहसा स्थूलत्वमालम्बते श्यामो वा कनकप्रभो यदि भवेद्गौरोऽपि कृष्णच्छविः । धीरो धीरतयार्थधर्मनिपुणः शान्तोपकारी पुमान् इत्येवं प्रकृतेस्तु शान्तचलनं मास्यष्टमे मृत्युदम् ॥ २९ ॥

भाषार्थ–जो स्थूल (मोटा) अंगवाला मनुष्य अकस्मात् दुर्बळ हो जावै, और दुर्बळ मोटा हो जावै, और श्यामवर्ण मनुष्य सुवर्णसमान कांतिवाळा हो जाय, तथा गोरा मनुष्य श्यामवर्ण हो जावै, और धैर्यवान् मनुष्यका धैर्य जाता है, तथा अर्थ और धर्ममें निपुण मनुष्यका उपकार शांत होजावै, इसप्रकार मनुष्यकी प्रकृति बदल जावै तो वह मनुष्य आठ महीनोंमें मृत्यु पावैगा ऐसा जानना ॥ २९ ॥

भाषार्थ-जिस मनुष्यके रात्रिमें दाह हो और दिनमें शीत (जाड़ा) लगै, कंठ कफसे पूरित हो जावै उसकी निस्सन्देह मृत्यु जानना ॥ २१ ॥ तथा जिसके दोनौं चरण शीतल हो जावैं और नाभिमंडल (तोंदीके चारो ओर) शीतल होवै, तथा जिसका शिर गरम होवै उसके मृत्युमें संदेह नहीं जानना २२

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः ।
सदा दाहो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २३ ॥

भाषार्थ-जिसकी हुंकार (नासिकावायु) शीतल होवै, तथा फूत्कार (मुखवायु) अग्निसमान (गरम) होय, और जिसके सदा दाह होवै उसकी भी निस्सन्देह मृत्यु जानना ॥ २३ ॥

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
हीनायुषो न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥२४॥
अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
विष्णुस्तु भ्रूद्वयोर्मध्ये भ्रूद्वयं मातृमण्डलम् ॥२५॥

भाषार्थ-अरुंधती, ध्रुव, और विष्णुके तीन पद (श्रवण नक्षत्रके तीन तारे) और चौथे मातृमंडल (कृत्तिकाके ६ तारे) को हीन आयुवाले नहीं देखते हैं अर्थात् जिनको न देखै उनकी हीनआयु जानना ॥ २४ ॥ कालज्ञानमें अरुंधती जिह्वाको भी कहते हैं, और नासिकाका अग्रभाग सोई ध्रुवका तारा है, दोनौं भौंहके मध्यभागको विष्णुपद और दोनौं भौंहको मातृमंडल ऐसा भी कहते हैं ॥ २५ ॥

अरश्मिबिंबं सूर्यस्य वह्नेश्चैवांशुवर्जितम् ।
दृष्ट्वैकादशमासांस्तु नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥ २६ ॥

वातं मूत्रं पुरीषं यः सुवर्णं रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासं न जीवति ॥ २७ ॥
क्वचित्पश्यति यो दीप्तं स्वर्णवत्काननं नरः ।
विरूपाणि च भूतानि नवमासं न जीवति ॥ २८ ॥

भाषार्थ-जो मनुष्य सूर्यको किरणरहित और अग्निको तेजरहित देखै वह ११ माससे अधिक नहीं जीवै ॥२६॥ तथा जो मनुष्य वायु, मूत्र, विष्ठा, सुवर्ण, चाँदीको प्रत्यक्ष अथवा स्वप्नमें देखै तो दशमास भी नहीं जीवै ॥ २७ ॥ तथा जो मनुष्य सुवर्णके सदृश प्रदीप्त बन देखै और प्राणियोंके स्वरूप विकराल देखै वह नौ ९ मास नहीं जीवै ॥ २८ ॥

स्थूलाङ्गोऽपि कृशः कृशोऽपि सहसा स्थूलत्वमालम्बते श्यामो वा कनकप्रभो यदि भवेद्गौरोऽपि कृष्णच्छविः । धीरो धीरतयार्थधर्मनिपुणः शान्तोपकारी पुमान् इत्येवं प्रकृतेस्तु शान्तचलनं मास्यष्टमे मृत्युदम् ॥ २९ ॥

भाषार्थ-जो स्थूल (मोटा) अंगवाला मनुष्य अकस्मात् दुर्बल हो जावै, और दुर्बल मोटा हो जावै, और श्यामवर्ण मनुष्य सुवर्णसमान कांतिवाला हो जाय, तथा गोरा मनुष्य श्यामवर्ण हो जावै, और धैर्यवान् मनुष्यका धैर्य जाता है, तथा अर्थ और धर्ममें निपुण मनुष्यका उपकार शांत होजावै, इसप्रकार मनुष्यकी प्रकृति बदल जावै तो वह मनुष्य आठ महीनोंमें मृत्यु पावैगा ऐसा जानना ॥ २९ ॥

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वामूलं समूलं रुधिरं च कृष्णम् । वृद्धिं नरः कामपि यन्न दृष्ट्वा जीवेन्मनुष्यः स हि सप्तमासान् ॥ ३० ॥

भाषार्थ–जिस मनुष्यकी हथेलीमें और जिह्वाके मूलमें पीडा होवै, तथा जिसका रुधिर काला हो जावै, तथा जो किसीकी भी वृद्धि न देख सकै वह मनुष्य सात महीनातक जीवै ३०

मध्याङ्गुलीनां त्रितयं विरक्तं रोगं विना शुध्यति यस्य कण्ठः । मुहुर्मुहुः प्रस्रवणं च जाड्यं षष्ठे च मासे प्रलयं प्रयाति ॥ ३१ ॥

भाषार्थ–जिस मनुष्यकी बीचकी तीन अंगुली फीके रंगकी होजावें, तथा रोगके विना जिसका कंठ सूख जावै और बारंवार प्रस्रवण और जड़ता होवै. वह रोगी छे महीनेमें मृत्यु पावै ॥ ३१ ॥

यस्य न स्फुरणं किंचिद्विद्यते यस्य कर्मणि ।
सोऽवश्यं पंचमे मासि स्कन्धारूढो गमिष्यति ॥३२॥
यस्य न स्फुरते ज्योतिः पीडिते नयनद्वये ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ–तथा जिस मनुष्यको किसी काममें फुरती न होवै वह अवश्य पांचवें महीनामें स्कंधारूढ होकर जावेगा अर्थात् मर जावैगा ॥ ३२ ॥ और जिस मनुष्यके नेत्रोंकी ज्योति फड़कै, तथा जिसके दोनों नेत्रोंमें पीडा हो, उसकी चौथे महीनामें निश्चय करके मृत्यु कहिये ॥ ३३ ॥

स्पन्दते वृषणो यस्य न किंचिदपि पीडितः ।
तृतीये मासि सोऽवश्यं यमलोके गमिष्यति ॥३४॥ तारा दिवा चन्द्रप्रभं निशांते यो विद्युतं पश्यति चैव श्वभ्रे । इन्द्रायुधं वा स्वयमेव रात्रौ मासद्वये तस्य वदन्ति नाशम् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ–जिसके वृषण (अंडकोश) किसी प्रकारकी पीडाके विना फड़कते हों वह तीसरे महीनामें अवश्य यमलोकको जावैगा ॥ ३४ ॥ तथा जो मनुष्य दिनमें नक्षत्र, और प्रातः दिन निकलने पर चन्द्रमाकीसी प्रभा (कांति) तथा निर्मल आकाशमें बिजली देखै, अथवा रात्रिमें इन्द्रधनुष देखै उसकी दो महीनामें मृत्यु होवै ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं ॥ ३५ ॥

यस्य जानुगतं मर्म न किंचिदपि चेष्टितम् ।
मासांते मरणं तस्य न केनाऽपि विलंब्यते ॥ ३६ ॥
कनिष्ठांगुलिपर्व स्यात्कृष्णं च मध्यमं यदा ।
गतायुः प्रोच्यते पुंसामष्टादशदिनावधिः ॥ ३७ ॥

भाषार्थ–जिनके जानुगत मर्मके छूनेसे उसको कुछ भी चेष्टा न होवै अर्थात् जान न सकै, तिसका मरण महीनाभरमें होवै, विलंब नहीं होवै ॥३६॥ जिस मनुष्यके हाथकी छोटी अंगुलीके बीचका पर्व जो कृष्णवर्ण होजाय उस मनुष्यकी आयु १८ दिन तककी कहिये अर्थात् १८ दिन जीवै उपरांत मर जावै ॥ ३७ ॥

घृते तैले जले वापि दर्पणे यस्य दृश्यते ।
शिरोरहितमात्मानं पक्षमेकं स जीवति ॥ ३८ ॥

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वामूलं समूलं रुधिरं च कृष्णम् । वृद्धिं नरः कामपि यन्न दृष्ट्वा जीवेन्मनुष्यः स हि सप्तमासान् ॥ ३० ॥

भाषार्थ-जिस मनुष्यकी हथेलीमें और जिह्वाके मूलमें पीडा होवै, तथा जिसका रुधिर काला हो जावै, तथा जो किसीकी भी वृद्धि न देख सकै वह मनुष्य सात महीनातक जीवै ३०

मध्याङ्गुलीनां त्रितयं विरक्तं रोगं विना शुष्यति यस्य कण्ठः । मुहुर्मुहुः प्रस्रवणं च जाड्यं षष्ठे च मासे प्रलयं प्रयाति ॥ ३१ ॥

भाषार्थ-जिस मनुष्यकी बीचकी तीन अंगुली फीके रंगकी होजावें, तथा रोगके विना जिसका कंठ सूख जावै और वारंवार प्रस्रवण और जड़ता होवै. वह रोगी छे महीनेमें मृत्यु पावै ॥ ३१ ॥

यस्य न स्फुरणं किंचिद्विद्यते यस्य कर्मणि ।
सोऽवश्यं पंचमे मासि स्कन्धारूढो गमिष्यति ॥३२॥
यस्य न स्फुरते ज्योतिः पीडिते नयनद्वये ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ-तथा जिस मनुष्यको किसी काममें फुरती न होवै वह अवश्य पांचवें महीनामें स्कंधारूढ होकर जावेगा अर्थात् मर जावैगा ॥ ३२ ॥ और जिस मनुष्यके नेत्रोंकी ज्योति फड़कै, तथा जिसके दोनों नेत्रोंमें पीडा हो, उसकी चौथे महीनामें निश्चय करके मृत्यु कहिये ॥ ३३ ॥

स्पन्दते वृषणो यस्य न किंचिदपि पीडितः । तृतीये मासि सोऽवश्यं यमलोके गमिष्यति ॥३४॥ तारा दिवा चन्द्रप्रभं निशांते यो विद्युतं पश्यति चैव श्वभ्रे । इन्द्रायुधं वा स्वयमेव रात्रौ मासद्वये तस्य वदन्ति नाशम् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ-जिसके वृषण (अंडकोश) किसी प्रकारकी पीडाके विना फड़कते हों वह तीसरे महीनामें अवश्य यमलोकको जावैगा ॥ ३४ ॥ तथा जो मनुष्य दिनमें नक्षत्र, और प्रातः दिन निकलने पर चन्द्रमाकीसी प्रभा (कांति) तथा निर्मल आकाशमें बिजली देखै, अथवा रात्रिमें इन्द्रधनुष देखै उसकी दो महीनामें मृत्यु होवै ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं ॥ ३५ ॥

यस्य जानुगतं मर्म न किंचिदपि चेष्टितम् ।
मासांते मरणं तस्य न केनाऽपि विलंब्यते ॥ ३६ ॥
कनिष्ठांगुलिपर्व स्यात्कृष्णं च मध्यमं यदा ।
गतायुः प्रोच्यते पुंसामष्टादशदिनावधिः ॥ ३७ ॥

भाषार्थ-जिनके जानुगत मर्मके छूनेसे उसको कुछ भी चेष्टा न होवै अर्थात् जान न सकै, तिसका मरण महीनाभरमें होवै, विलंब नहीं होवै ॥३६॥ जिस मनुष्यके हाथकी छोटी अंगुलीके बीचका पर्व जो कृष्णवर्ण होजाय उस मनुष्यकी आयु १८ दिन तककी कहिये अर्थात् १८ दिन जीवै उपरांत मर जावै ॥ ३७ ॥

घृते तैले जले वापि दर्पणे यस्य दृश्यते ।
शिरोरहितमात्मानं पक्षमेकं स जीवति ॥ ३८ ॥

शैत्यं दध्यन्नपानानि यस्य तापकराणि च ।
शीतरश्मिं भवेच्चारुहासं चाथ सुनिर्मलम् ॥३९॥
न वेत्ति वै चारु हितं न चोष्णं वेत्ति यो नरः ।
कालज्ञानेन संप्रोक्तं पक्षमेकं स जीवति ॥ ४० ॥

भाषार्थ–जो मनुष्य अपनेको घीमें, तेलमें, जलमें अथवा दर्पणमें शिरके विना देखै वह पन्द्रह दिन जीवै उपरांत मर जावै ॥ ३८ ॥ तथा जिसको शीतल (ठंढे) पदार्थ, दही, अन्न, आदि ताप करैं अर्थात् गरमी करैं अथवा चंद्रमा, और चारुहास (अच्छेप्रकार हँसी) वा निर्मळ पदार्थ अच्छे न लगैं ॥ ३९ ॥ तथा जिसको हितकी बात अच्छी न लगै वा जो मनुष्य गरमी न जानै अर्थात् उसे गरमी न लगै वह १५ दिन जीवै यह कालज्ञानकरके कहागया है ॥ ४० ॥

स्नानमात्रस्य यस्यैते त्रयः शुष्यन्ति तत्क्षणात् ।
हृदयं हस्तपादौ च दशरात्रं स जीवति ॥ ४१ ॥
नासाग्रं रसनाग्रं च चक्षुश्चैवोष्ठसंपुटम् ।
यो न पश्येत्पुरा दृष्टं सप्तरात्रं स जीवति ॥४२॥

भाषार्थ–जिस मनुष्यके स्नान करनेसे, हृदय, हाथ, पांव, ये तीनौं उसी समय सूख जावैं वह मनुष्य दश रात्रितक जीवै ॥ ४१ ॥ तथा जो मनुष्य अपनी नासिकाका अग्रभाग, जिह्वाका अग्रभाग, नेत्र और होठोंका संपुट नहीं दीखै वह सातदिन तक जीवै, उपरांत मर जावै ॥ ४२ ॥

स्वरूपं परनेत्रेषु पुत्तिकां यो न पश्यति ।
यदा हि पङ्कदृष्टिश्च तदा मृत्युरदूरतः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ–तथा जो मनुष्य पराये नेत्रोंकी पुतलीमें अपने रूपको न देखै, तथा प्रथम नहीं देख पड़ता था फिर देखने लगै तो उसकी मृत्यु शीघ्र जानना ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां कालज्ञानकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय ॥ १२ ॥

छायापुरुषलक्षण ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥ १ ॥
कालो दूरस्थितस्यापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वक्ष्यामि समासेन यथोक्तं शंभुना पुरा ॥ २ ॥

भाषार्थ–अब मैं छायापुरुषके लक्षण वर्णन करता हूँ, जिसके जाननेमात्रसे मनुष्य भूत, भविष्य, वर्तमानका जाननेवाला होता है ॥ १ ॥ दूरस्थित काल जिस उपायसे दृष्टिगोचर होवै, उसको मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ. जिस प्रकार प्रथम शिवजीने कहा है ॥ २ ॥

एकांते विजने गत्वा कृत्वादित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षेत निजां छायां कंठदेशे समाहितः ॥ ३ ॥
ततश्चाकाशमीक्षेत ततः पश्यति शंकरम् ।
ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततो वै दृश्यते शुभम् ॥ ४ ॥

शैत्यं दध्यन्नपानानि यस्य तापकराणि च ।
शीतरश्मि भवेच्चारुहासं चाथ सुनिर्मलम् ॥३९॥
न वेत्ति वै चारु हितं न चोष्णं वेत्ति यो नरः ।
कालज्ञानेन संप्रोक्तं पक्षमेकं स जीवति ॥ ४० ॥

भाषार्थ–जो मनुष्य अपनेको घीमें, तेलमें, जलमें अथवा दर्पणमें शिरके विना देखै वह पन्द्रह दिन जीवै उपरांत मर जावै ॥ ३८ ॥ तथा जिसको शीतल (ठंढे) पदार्थ, दही, अन्न, आदि ताप करैं अर्थात् गरमी करैं अथवा चंद्रमा, और चारुहास (अच्छेप्रकार हँसी) वा निर्मळ पदार्थ अच्छे न लगैं ॥ ३९ ॥ तथा जिसको हितकी बात अच्छी न लगै वा जो मनुष्य गरमी न जानै अर्थात् उसे गरमी न लगै वह १५ दिन जीवै यह कालज्ञानकरके कहागया है ॥ ४० ॥

स्नानमात्रस्य यस्यैते त्रयः शुष्यन्ति तत्क्षणात् ।
हृदयं हस्तपादौ च दशरात्रं स जीवति ॥ ४१ ॥
नासाग्रं रसनाग्रं च चक्षुश्चैवोष्ठसंपुटम् ।
यो न पश्येत्पुरा दृष्टं सप्तरात्रं स जीवति ॥४२॥

भाषार्थ–जिस मनुष्यके स्नान करनेसे, हृदय, हाथ, पांव, ये तीनौं उसी समय सूख जावैं वह मनुष्य दश रात्रितक जीवै ॥ ४१ ॥ तथा जो मनुष्य अपनी नासिकाका अग्रभाग, जिह्वाका अग्रभाग, नेत्र और होठोंका संपुट नहीं दीखै वह सातदिन तक जीवै, उपरांत मर जावै ॥ ४२ ॥

स्वरूपं परनेत्रेषु पुत्तिकां यो न पश्यति ।
यदा हि पद्दृष्टिश्च तदा मृत्युरदूरतः ॥ ४३ ॥

भाषार्थ–तथा जो मनुष्य पराये नेत्रोंकी पुतलीमें अपने रूपको न देखै, तथा प्रथम नहीं देख पड़ता था फिर देखने लगै तो उसकी मृत्यु शीघ्र जानना ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्पण्डितनारायणप्रसादमुकुंदरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां कालज्ञानकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय ॥ १२ ॥

छायापुरुषलक्षण ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥ १ ॥
कालो दूरस्थितस्यापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वक्ष्यामि समासेन यथोक्तं शंभुना पुरा ॥ २ ॥

भाषार्थ–अब मैं छायापुरुषके लक्षण वर्णन करता हूँ, जिसके जाननेमात्रसे मनुष्य भूत, भविष्य, वर्तमानका जाननेवाला होता है ॥ १ ॥ दूरस्थित काल जिस उपायसे दृष्टिगोचर होवै, उसको मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ. जिस प्रकार प्रथम शिवजीने कहा है ॥ २ ॥

एकांते विजने गत्वा कृत्वादित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षेत निजां छायां कंठदेशे समाहितः ॥ ३ ॥
ततश्चाकाशमीक्षेत ततः पश्यति शंकरम् ।
ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततो वै दृश्यते शुभम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ-छायासे कालज्ञानका परीक्षक मनुष्य एकांत निर्जनस्थानमें जाकर समान भूमिमें खड़ा होकर सूर्यको अपने पिछाड़ी करके सीधा खड़ा होवै फिर अपनी छायाके कंठदेशमें सावधान होकर देखै और परीक्षा करै ॥ ३ ॥ (फिर बराबर २ घड़ीतक अपनी छायाको देखा करै) उपरांत उस छायापरसे दृष्टिको उठाकर आकाशकी ओर देखै तो साक्षात् शिवजीका दर्शन होवैगा, परंतु जिस समय छाया देखनेको खड़ा होवै तब 'ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः' इस मंत्रको १०८ बार पढ़करके आकाशकी ओर देखै, तब शंकरका दर्शन होवैगा ४ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

भाषार्थ-इस पूर्वोक्त प्रकारसे शुद्धस्फटिकमणिके समान अनेक रूप धारण करनेवाले शिवको देखै, और छे महीना अभ्यास करनेसे समस्त प्राणीमात्रका अधिपति होवै ॥ ५ ॥

वर्षद्वयेन हे नाथ कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः ।
त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति स योगी नाऽत्र संशयः ॥ ६ ॥
सतताभ्यासयोगेन नास्ति किंचन दुर्लभम् ।

भाषार्थ-तथा दो वर्ष इस क्रियाके साधन करनेसे योगी स्वयं कर्ता हर्ता और त्रिकालका जाननेवाला परम आनन्दयुक्त होवै इसमें संशय नहीं ॥ ६ ॥ और निरन्तर इस अभ्यासके योगसे कुछभी दुर्लभ नहीं है अर्थात् इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो साधकको प्राप्त न होवै ॥

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले ॥ ७ ॥
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नाऽत्र संशयः ।

पीते व्याधिभयं रक्तो नीलो हत्यां विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥
नानावर्णे स्वरूपेऽस्मिन्नुद्वेगो जायते महान् ।

भाषार्थ-यदि वह योगी आकाशमें उस छायापुरुषका वर्ण काले रंगका देखै, ॥ ७ ॥ तो वह योगी निस्सन्देह छः महीनामें मृत्यु पावै, यदि पीलेरंगका देखै तो रोग हो, लाल देखै तो भय होवै, नीलवर्ण देखै तो हत्या लगै, ॥ ८ ॥ तथा नानाप्रकारके रंगकी छाया दीखै तो चित्तमें घोर उद्वेग होवै ॥

पादे गुल्फे च जठरे विनष्टे मृत्युमादिशेत् ॥ ९ ॥
अर्धवर्षेण वर्षेण क्रमाद्वर्षद्वयेन च ।
विनष्टे दक्षिणे बाहौ स्वबन्धुर्म्रियते ध्रुवम् ॥ १० ॥
वामबाहौ तथा भार्या विनश्यति न संशयः ।
शिरोदक्षिणबाहुभ्यां विनाशो मृत्युमादिशेत् ॥ ११ ॥

भाषार्थ-छायापुरुषके पांव, गुल्फ और पेट न दीखनेसे क्रमपूर्वक छे महीना, १ वर्ष और २ वर्षमें मृत्यु होवै, अर्थात् पैर न दीखनेसे ६ महीनामें, टकना न दीखनेसे १ वर्षमें, पेट न दीखनेसे २ वर्षमें मृत्यु होवै तथा दक्षिणभुजाके न दीखनेसे बंधुका मरण होता है ॥ ९ ॥ १० ॥ तथा वामभुजाके न देखनेसे निस्सन्देह स्त्रीकी मृत्यु होती है, शिर और दक्षिणभुजाके न दीखनेसे मृत्यु होती है ॥ ११ ॥

अशिरो मासमरणं विना जंघे दिवा नव ॥
अष्टभिः स्कन्धनाशेन छायालुप्तेन तत्क्षणात् ॥ १२ ॥

भाषार्थ-जो शिररहित कबन्ध दीखै तो १ महीनेमें मृत्यु पावै, तथा विना जांघ दीखनेसे ९ दिनमें, कंधा न दीखनेसे आठ

भाषार्थ–छायासे कालज्ञानका परीक्षक मनुष्य एकांत निर्जनस्थानमें जाकर समान भूमिमें खड़ा होकर सूर्यको अपने पिछाड़ी करके सीधा खड़ा होवै फिर अपनी छायाके कंठदेशमें सावधान होकर देखै और परीक्षा करै ॥ ३ ॥ (फिर बराबर २ घड़ीतक अपनी छायाको देखा करै) उपरांत उस छायापरसे दृष्टिको उठाकर आकाशकी ओर देखै तो साक्षात् शिवजीका दर्शन होवैगा, परंतु जिस समय छाया देखनेको खड़ा होवै तब 'ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः' इस मंत्रको १०८ बार पढ़करके आकाशकी ओर देखै, तब शंकरका दर्शन होवैगा ४ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

भाषार्थ–इस पूर्वोक्त प्रकारसे शुद्धस्फटिकमणिके समान अनेक रूप धारण करनेवाले शिवको देखै, और छे महीना अभ्यास करनेसे समस्त प्राणीमात्रका अधिरति होवै ॥ ५ ॥

वर्षद्वयेन हे नाथ कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः ।
त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति स योगी नाऽत्र संशयः ॥ ६ ॥
सतताभ्यासयोगेन नास्ति किंचन दुर्लभम् ।

भाषार्थ–तथा दो वर्ष इस क्रियाके साधन करनेसे योगी स्वयं कर्ता हर्ता और त्रिकालका जाननेवाला परम आनन्दयुक्त होवै इसमें संशय नहीं ॥ ६ ॥ और निरन्तर इस अभ्यासके योगसे कुछभी दुर्लभ नहीं है अर्थात् इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो साधकको प्राप्त न होवै ॥

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले ॥ ७ ॥
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नाऽत्र संशयः ।

पीते व्याधिभयं रक्ते नीलो हत्यां विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥
नानावर्णे स्वरूपेऽस्मिन्नुद्वेगो जायते महान् ।

भाषार्थ–यदि वह योगी आकाशमें उस छायापुरुषका वर्ण काले रंगका देखै, ॥ ७ ॥ तो वह योगी निस्सन्देह छःमहीनामें मृत्यु पावै, यदि पीलेरंगका देखै तो रोग हो, लाल देखै तो भय होवै, नीलवर्ण देखै तो हत्या लगै, ॥ ८ ॥ तथा नानाप्रकारके रंगकी छाया दीखै तो चित्तमें घोर उद्वेग होवै ॥

पादे गुल्फे च जठरे विनष्टे मृत्युमादिशेत् ॥ ९ ॥
अर्धवर्षेण वर्षेण क्रमाद्वर्षद्वयेन च ।
विनष्टे दक्षिणे बाहौ स्वबन्धुर्म्रियते ध्रुवम् ॥ १० ॥
वामबाहौ तथा भार्या विनश्यति न संशयः ।
शिरोदक्षिणबाहुभ्यां विनाशो मृत्युमादिशेत् ॥ ११ ॥

भाषार्थ–छायापुरुषके पांव, गुल्फ और पेट न दीखनेसे क्रमपूर्वक छे महीना, १ वर्ष और २ वर्षमें मृत्यु होवै, अर्थात् पैर न दीखनेसे ६ महीनामें, टकना न दीखनेसे १ वर्षमें, पेट न दीखनेसे २ वर्षमें मृत्यु होवै तथा दक्षिणभुजाके न दीखनेसे बंधुका मरण होता है ॥ ९ ॥ १० ॥ तथा वामभुजाके न देखनेसे निस्सन्देह स्त्रीकी मृत्यु होती है, शिर और दक्षिणभुजाके न दीखनेसे मृत्यु होती है ॥ ११ ॥

अशिरो मासमरणं विना जंघे दिवा नव ॥
अष्टभिः स्कन्धनाशेन छायालुप्तेन तत्क्षणात् ॥ १२ ॥

भाषार्थ–जो शिररहित कबन्ध दीखै तो १ महीनेमें मृत्यु पावै, तथा विना जांघ दीखनेसे ९ दिनमें, कंधा न दीखनेसे आठ

दिनमें, और छाया लुप्त हो जानेसे तत्काल मृत्यु होवै. यह छायापुरुषका ज्ञान योगीजनको शीघ्र होता है. अन्यको कठिनतासे भी दुर्लभ है ॥ १२ ॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन वा ।
जपेन ज्ञानयोगेन जायते कालबन्धनम् ॥ १३ ॥
रसायनं च पूर्वोक्तं गुटिकामृतजीवनी ।
नरैः सेव्या यथोक्तं च परं कालस्य वंचनम् ॥१४॥

भावार्थ—तीर्थस्नानसे, दानसे, तपसे, पुण्य करनेसे, जपसे वा ज्ञानयोगसे कालका बन्धन होता है ॥ १३ ॥ पूर्वमें रसायन, मृतसंजीवनी गुटिका, आदि जो कुछ कहा है सो मनुष्योंकरके सेवन करना चाहिये, जिससे कालकी गतिसे बचै, कालकी गति बलवान् है ॥ १४ ॥

रक्षणीयमतो देहं यतो धर्मादिसाधनम् ।
शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलाश्रयाः ॥ १५ ॥
वैद्यनाथतनूजेन शालिनाथेन धीमता ।
शास्त्रमालोक्य चाकृष्य रचिता रसमंजरी ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्वैद्यनाथतनयशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्लोकसंख्या ॥ ८७२ ॥

भावार्थ—इस कारण इस देहकी रक्षा करनी चाहिये. क्योंकि यह शरीर ही धर्म आदिका साधन करनेवाला है. धातु और मलके आश्रयसे तीनों दोष कोप करके शरीरको नाश कर देते

हैं, इस कारण अवश्य शरीरकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १५ ॥ श्रीवैद्यनाथजीके पुत्र पंडित शालिनाथजीने अनेक वैद्यक शास्त्रसंबंधी ग्रंथोंको देखकर और उनका सार ग्रहण करके यह रसमंजरी रचना की ॥

रामबाणांकचन्द्रेऽब्दे माधवस्यासिते दले ।
नारायणेन लिखिता समाप्ता रसमंजरी ॥ १ ॥

इति श्रीमन्मिश्रकुलाग्रगण्यपण्डितशोभारामात्मज-पंडितनारायणप्रसादमुकुन्दरामकृतायां रसमंजरीभाषाटीकायां छायापुरुषलक्षणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समाप्तेयं रसमंजरी ।

दिनमें, और छाया लुप्त हो जानेसे तत्काल मृत्यु होवै. यह छायापुरुषका ज्ञान योगीजनको शीघ्र होता है. अन्यको कठिनतासे भी दुर्लभ है ॥ १२ ॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन वा ।
जपेन ज्ञानयोगेन जायते कालबन्धनम् ॥ १३ ॥
रसायनं च पूर्वोक्तं गुटिकामृतजीवनी ।
नरैः सेव्या यथोक्तं च परं कालस्य वंचनम् ॥१४॥

भावार्थ–तीर्थस्नानसे, दानसे, तपसे, पुण्य करनेसे, जपसे वा ज्ञानयोगसे कालका बन्धन होता है ॥ १३ ॥ पूर्वमें रसायन, मृतसंजीवनी गुटिका, आदि जो कुछ कहा है सो मनुष्योंकरके सेवन करना चाहिये, जिससे कालकी गतिसे बचै, कालकी गति बलवान् है ॥ १४ ॥

रक्षणीयमतो देहं यतो धर्मादिसाधनम् ।
शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलाश्रयाः ॥ १५ ॥
वैद्यनाथतनूजेन शालिनाथेन धीमता ।
शास्त्रमालोक्य चाकृष्य रचिता रसमंजरी ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्वैद्यनाथतनयशालिनाथविरचितायां
रसमंजर्यां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
श्लोकसंख्या ॥ ८७२ ॥

भावार्थ–इस कारण इस देहकी रक्षा करनी चाहिये. क्योंकि यह शरीर ही धर्म आदिका साधन करनेवाला है. धातु और मलके आश्रयसे तीनों दोष कोप करके शरीरको नाश कर देते

हैं, इस कारण अवश्य शरीरकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १५ ॥ श्रीवैद्यनाथजीके पुत्र पंडित शालिनाथजीने अनेक वैद्यक शास्त्रसंबंधी ग्रंथोंको देखकर और उनका सार ग्रहण करके यह रसमंजरी रचना की ॥

रामबाणांकचन्द्रेऽब्दे माधवस्यासिते दले ।
नारायणेन लिखिता समाप्ता रसमंजरी ॥ १ ॥

इति श्रीमन्मिश्रकुलाग्रगण्यपण्डितशोभारामात्मज-
पंडितनारायणप्रसादमुकुन्दरामकृतायां रस-
मंजरीभाषाटीकायां छायापुरुषलक्षणं
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
समाप्तेयं रसमंजरी ।

टीकाकारकीप्रार्थना।

अशुद्धंयत्किंचित्प्रविलिखितमत्राल्पकुधिया
बुधैस्तत्संशोध्यं परमकृपया द्रोहरहितैः।
यतो याचे सर्वानखिलगुणविज्ञान्सुविबुधान्
कृपां यूयं दद्ध्वंपदकमलसेवानुशरणः॥ १॥

भावार्थ–यहां इस पुस्तकमें हमारी अल्पबुद्धि करके लिखाहुआ जो कुछ अशुद्ध रह गया हो सो विद्वज्जन द्रोहरहित होकर अपनी परम दयालुतासे कृपापूर्वक शुद्ध करलेवै इसीसे सम्पूर्ण गुणोंके ज्ञाता समस्त बुधजनोंके चरणकमलोंकी सेवामें मैं शरण हूँ. आपलोग हमारेपर कृपा करैं यह हमारी याचना है॥ १॥

समर्पण।

लक्ष्मीपुरे बरेल्यां च नारायणमुकुंदयोः।
ताभ्यां हरिप्रसादाय सटीकेयं समर्पिता॥ २॥

भावार्थ–लखीमपुर और बरेलीमें संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष पं०नारायणप्रसाद मुकुंदराम इन दोनोंने बंबईमें हरिप्रसाद भगीरथजीके अर्थ यह सटीक रसमंजरी समर्पण की॥ २॥

टीकाकारकीप्रार्थना।

अशुद्धंयत्किंचित्प्रविलिखितमत्राल्पकुधिया
बुधैस्तत्संशोध्यं परमकृपया द्रोहरहितैः।
यतो याचे सर्वानखिलगुणविज्ञान्सुविबुधान्
कृपां यूयं दद्ध्वंपदकमलसेवानुशरणः॥ १॥

भाषार्थ–यहां इस पुस्तकमें हमारी अल्पबुद्धि करके लिखा-हुआ जो कुछ अशुद्ध रह गया हो सो विद्वज्जन द्रोहरहित होकर अपनी परम दयालुतासे कृपापूर्वक शुद्ध करलेवै इसीसे सम्पूर्ण गुणोंके ज्ञाता समस्त बुधजनोंके चरणकमलोंकी सेवामें मैं शरण हूँ. आपलोग हमारेपर कृपा करैं यह हमारी याचना है॥ १॥

समर्पण।

लक्ष्मीपुरे बरेल्यां च नारायणमुकुंदयोः।
ताभ्यां हरिप्रसादाय सटीकेयं समर्पिता॥ २॥

भाषार्थ–लखीमपुर और बरेलीमें संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष पं०नारायणप्रसाद मुकुंदराम इन दोनोंने बंबईमें हरिप्रसाद भगीरथजीके अर्थ यह सटीक रसमंजरी समर्पण की॥ २॥

END